

प्रेम-देशके पथिकका प्रणय-गीत

– प्रियतमसे संवाद

श्रीमती सावित्रीदेवी फोगलाकी हस्तलिपिमें

प्रेम-देशके पथिकका प्रणय-गीत
– प्रियतमसे संवाद

महाभावनिमग्न श्रीराधाबाबाद्वारा अनुभूत प्रियतम-काव्य
श्रीमती सावित्रीदेवी फोगलाकी हस्तलिपिमें

श्रीराधामाधव सेवा संस्थान, गोरखपुर

प्रकाशक :
महामंत्री
श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान
पो० गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३००६

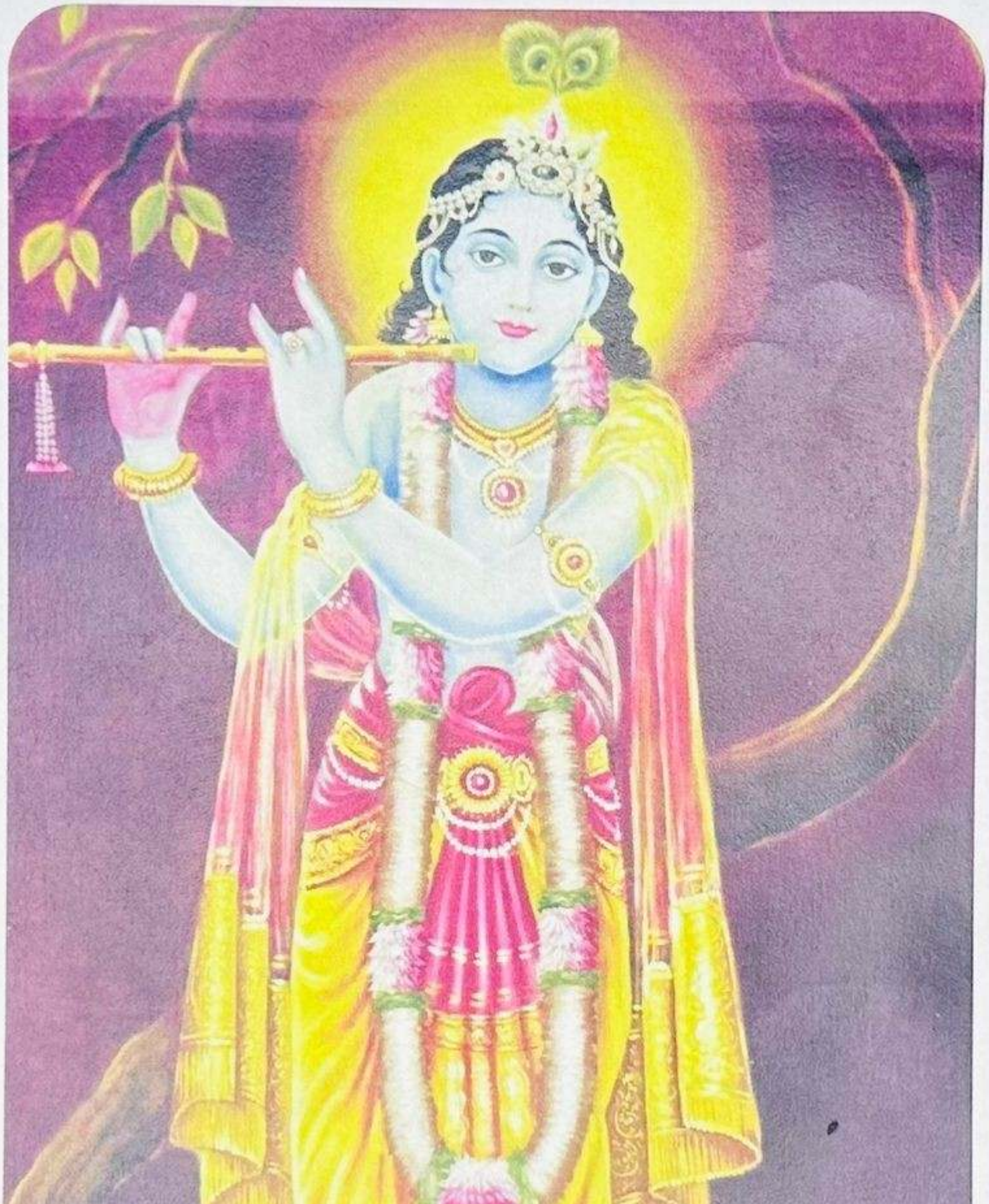
संकलन एवं समायोजन :
ऋत्विक मिश्र
अनुराधा झुनझुनवाला
लक्ष्मी पालड़ीवाल

प्रकाशन तिथि :
मार्गशीर्ष शुक्ल ७, सं० २०८२ वि०
(२७ नवम्बर २०२५ ई०)

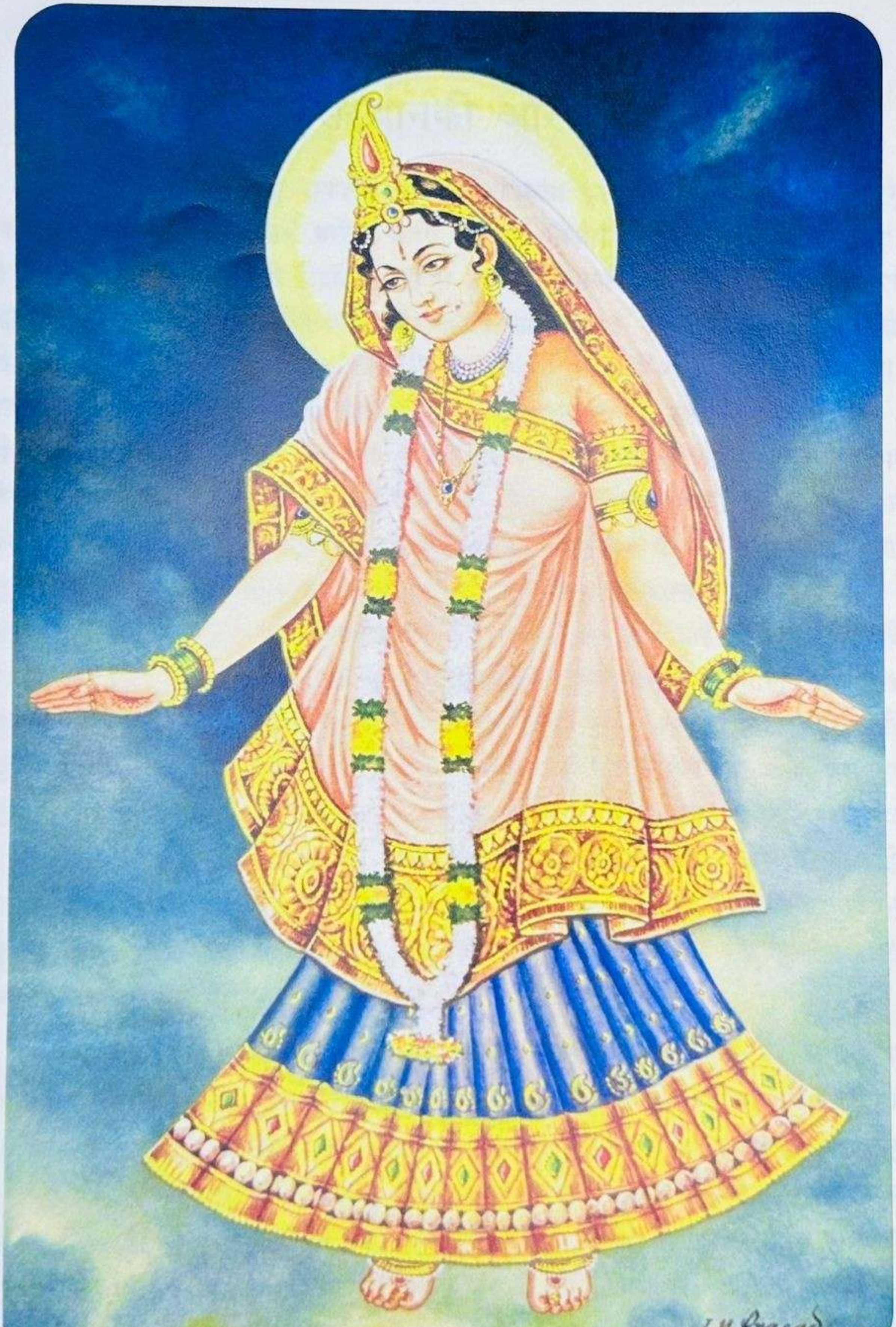
(पूज्या श्रीमती सावित्रीदेवी फोगलाका ९६ वाँ जन्मदिवस)

MRP : 500 only

प्राप्ति स्थान :
श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान
पो० गीतावाटिका, गोरखपुर - २७३००६
मो० : ९९३६३-००६७२, ९३३५१-९२३४०



श्रीराधाभावद्युति-संवलित-तनु श्रीकृष्णचंद्र



श्रीकृष्णसुखैकतात्पर्यमयी श्रीराधारानी

॥ श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ॥

संस्थानकी ओरसे

परमपूज्य श्रीराधाबाबाके भावजीवनकी इस श्रुतिरूपा कृति प्रियतम-काव्यको उसके मूल रूपमें विश्वरूप प्रभुकी अर्चनामें प्रस्तुत करते हुए हमें निश्चय ही कृतकृत्यताकी अनुभूति हो रही है। इस श्रुतिरूपा काव्यके उद्गाता ऋषि थे पूज्य श्रीराधाबाबा, और श्रोता थे उनके अशेष श्रद्धास्पद पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार। यह ग्यारह सौ ग्यारह छन्दोंका ग्यारह शतकोंमें विभाजित काव्य पूज्य बाबा द्वारा लिखा नहीं गया, यह तो मात्र अवतरित हुआ था – छन्दोंके रूपमें पूज्य बाबाके अन्तःकरणमें और उनके द्वारा ही इसे सुनाया गया था पूज्य श्री भाईजीको। कालान्तरमें राधाभावद्युति-वलित-तनु श्रीकृष्णचन्द्रकी इच्छासे ही पूज्य बाबाने अपने सर्वथा अप्राकृतिक भावजीवनके इस परम विलक्षण, अभूतपूर्व काव्यको प्रकट किया तथा इसकी अभिव्यक्तिका एकमात्र माध्यम निर्धारित कर दिया पू० अ० सौ० श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला (सुपुत्री परमपूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) को। प्रियतम-काव्यको लिपिबद्ध किया था पूज्या बाईने ही। परमपूज्य बाबाने स्वयं बोल-बोलकर पू० अ० सौ० बाई (श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला) को यह पूरा काव्य लिखवाया था। इस रसश्रुतिके रूपमें तरङ्गित श्रीराधामाधवके वैदग्ध्य, अनुराग, वात्सल्य, कृपा, लावण्य, सौन्दर्य और माधुर्य (केलिरस) – की ऊर्मियोंको विश्वप्रकृतिमें प्रवाहित करनेका श्रेय पूज्या बाईको ही है। पूज्य बाबाको पानी पिलाने जब बाई जातीं, उस समय वस्त्रोंमें छिपाकर छोटी पतलीसी कॉपी साथ ले जाती थीं। पूज्य बाबा महाभावावेशमें बोलते जाते और बाई यन्त्रवत् लिखती चली जातीं। पूज्य बाबाके अत्यधिक भावाविष्ट रहनेके कारण बाईको एक-एक छन्द लिखनेके लिये घण्टों प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। कई बार तो लगातार पाँच-छः घण्टे बैठनेके बाद भी बाबा एक भी शब्द बोल नहीं पाते थे। पूज्या बाईके इस परमोज्ज्वल तप-त्यागके परिणामस्वरूप ही मूर्तरूप ग्रहण कर सका यह प्रियतम-काव्य।

इसमें कहीं कोई संशय नहीं कि इस श्रुतिकाव्यके नायक-नायिका – प्रिया-प्रियतम व्रजेन्द्रनन्दन नीलसुन्दर एवं वृषभानुनन्दिनी बाला राधा सर्वथा अप्राकृत हैं। इन प्रिया-प्रियतमके माता-पिता, पितामह, ताऊ-चाचा, भाई-बहिन, सखा एवं सखीगण, इनके पितृकुल, मातृकुल एवं श्वसुरालयके सभी पात्र, उनके देहादि मायाके कार्य पञ्चमहाभूतोंमें निर्मित माया-आवरणरूप कदापि-कदापि नहीं हैं। इस रसश्रुतिमें वर्णित लीलाएँ अप्राकृत हैं, जो अप्राकृत क्षेत्र – वृन्दाकानन, श्रीसुन्दरीवनके निकुञ्जों एवं व्रजके ग्रामोंमें घटित हुई हैं एवं निश्चय ही अप्राकृत मन-बुद्धि एवं शरीरधारी अप्राकृत चिन्मय पात्रोंकी लीलाएँ हैं।

वस्तुतः श्रीकृष्णकी यह गोपीभावकी लीला एवं उसका सब प्रकरण सर्वथा अनिर्वचनीय

वस्तु है। भगवान् श्रीराधामाधवके इस परम विलक्षण, अशेष वैचित्र्यमयी लीला-तत्त्वको स्वयं पूज्य श्रीभाईजीने आख्यायित किया है इस रूपमें –

"श्रीकृष्ण ही ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं, भगवान् हैं। वे सच्चिदानन्द, स्वप्रकाश और अद्वय ज्ञानस्वरूप हैं। वे सर्वमय हैं, सर्वातीत हैं। वे सर्वज्ञ सर्वविद्, अनन्त, विभु हैं। वे सर्वलोकमहेश्वर, सर्वशक्तिमान् हैं। वे अनन्त शक्तियोंके परमाधार और एकाधार हैं। वे सगुण, निर्गुण, निराकार और साकार हैं। वे ब्रह्मकी प्रतिष्ठा हैं, वे ही आश्रयतत्त्व हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं – **'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।'** वे ही द्विभुज मुरलीमनोहर श्यामसुन्दर नराकृति परब्रह्म, लीलामय, लीलापुरुषोत्तम, भुवनमोहन – श्रीविग्रह हैं। वे अचिन्त्यानन्त विरुद्ध-धर्माश्रय और अपार करुणामय हैं। वे साक्षात् मन्मथ-मन्मथ हैं। वे आनन्द-चिन्मय-रस – समुद्र, रसस्वरूप, आस्वाद्य और आस्वादक, रसिकशेखर हैं। वे अपने असमोर्ध्व नित्य परिवर्द्धनशील सौन्दर्य-माधुर्यके द्वारा विश्वविमोहन – सर्वचित्ताकर्षक हैं, सर्वचित्तहर हैं, यहाँ तक कि अपने स्वरूप-सौन्दर्यको देखकर स्वयं ही मुग्ध हो जाते हैं –

विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम्।

(श्रीमद्भागवत ३.२.१२)

अपने ही इस नित्य सौन्दर्य-माधुर्य-रसका समास्वादन करनेके लिये वे स्वयं अपनी आह्लादिनी शक्तिको अथवा आनन्दस्वरूपको सदा-सर्वदा श्रीराधारूपमें अभिव्यक्त किये हुए हैं। श्रीराधारानी भगवान् श्रीकृष्णकी ही स्वरूपाशक्ति हैं। वे श्रीकृष्णकी ही अभिन्न स्वरूपा हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण श्रीराधाके अभिन्न स्वरूप हैं। इनकी यह रसमधुर लीला सत्य और नित्य है। वस्तुतः लीला तथा लीलामय भी अभिन्न ही हैं। तत्त्व और लीला एक ही स्वरूपकी दो दिशाएँ हैं। तत्त्वमें जो अव्यक्त है, वही लीलामें परिस्फुट है। तत्त्वमें जो बीज है, वही लीलामें विशाल विशद वृक्ष है। दूसरे शब्दोंमें, तत्त्व लीलारूप अक्षय सरोवरका एक जलबिन्दु है। लीला तत्त्वका प्रकट विग्रहरूप है, तत्त्वकी समग्रता ही लीला है। लीलाका निगूढ़ रहस्य ही तत्त्व है। एक ही परम नित्यानन्द रसब्रह्म-तत्त्व नित्य अखण्ड रहकर ही आस्वाद्य और आस्वादक रूपसे, दो रूपोंमें अभिव्यक्त होकर लीलायमान है – एक व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और दूसरी वृषभानुदुलारी श्रीराधा। श्रीकृष्ण रसमय हैं और श्रीराधा भावमयी हैं।

रतिकी दृष्टिसे श्रीराधारानी मूर्तिमान् अधिरूढ़ महाभावरूपा या मधुरारतिकी सजीव प्रतिमा हैं। मदीया रति यानि "श्रीकृष्ण मेरे हैं" – यह भाव ही गोपी भाव है। इसी भावकी चरम परिणति महाभावस्वरूपिणी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधारानी हैं। मदीया रतिकी इस चरम और परम पूर्णतम परिणतिमें शक्तिमान् श्रीकृष्ण निज स्वरूपाशक्ति श्रीराधारानीके प्रति सोल्लास आत्मसमर्पण करते हैं

– **'देहि पदपल्लवमुदारम्।'** कायव्यूहा-शक्तिरूपिणी व्रजदेवियोंके सहित शक्ति और शक्तिमान्का यह नित्य मधुर लीलाविलास ही नित्य महारास है। इस मधुरातिमधुर अनन्त विचित्र महारासकी आत्मा, अखिल आनन्द-चिन्मय-रसामृतरूपिणी श्रीराधारानी हैं।

श्रीराधाभावकी साधना जगत्के कामराज्यकी वस्तु तो है ही नहीं, उसकी अत्यन्त विरोधिनी है। श्रीराधारानीके स्वरूपतत्त्वका अध्ययन और राधाभावका साधन कामके कलुषको सदाके लिये धो डालनेवाला है। इतना होनेपर भी यह शुष्क नहीं है, नीरस नहीं है, चित्तमें खिन्नता उत्पन्न करनेवाला नहीं है, निदारुण निर्वेदजनक नहीं है। यह रसमय है, आनन्दमय है, छविमय है, मधुरिमामय है और मोक्षतिरस्कारी दिव्य भगवद्भावको प्राप्त करानेवाला है। इसमें आत्यन्तिक विषय-विराग है, पर वह भी एक मधुर राग है। प्रेमी साधक इस रागके रसिक होते हैं। महात्मा गोकर्णजीने इसी ओर संकेत करते हुए – **'वैराग्यरागरसिको भव'** कहा है। कामरूप अन्धकारका प्रभाव वहींतक है जहाँतक दिव्य गोपीभाव या राधाभावका निर्मल भास्कर उदय नहीं होता। राधाभावके परमोज्ज्वल रस-साम्राज्यमें कलङ्की कामका प्रवेश ही नहीं है। अतुलनीय सौन्दर्य-माधुर्यराशि, रोम-रोम मधुर श्रीकृष्ण जब अपने स्वरूप-सौन्दर्यको देखकर विस्मृत और विमुग्ध होते हैं, उस समय उस मुग्धतासे उनकी रक्षा करनेकी सामर्थ्य श्रीराधारानीमें ही है।

श्रीराधा पूर्णतमा शक्ति हैं, श्रीकृष्ण परिपूर्णतम शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान्में भेद तथा अभेद दोनों ही नित्य वर्तमान हैं। अभेदरूप तत्त्वतः श्रीराधा और श्रीकृष्ण – अनादि, अनन्त, नित्य एक हैं और प्रेमानन्दमयी दिव्यलीलाके रसास्वादनार्थ अनादिकालसे ही नित्य दो स्वरूपोंमें विराजित हैं। श्रीराधाका मादनाख्य महाभावरूप प्रेम अत्यन्त गौरवमय होनेपर भी मदीयतामय मधुर स्नेहसे आर्विभूत होनेके कारण सर्वथा ऐश्वर्य-गन्ध-शून्य है। वह न तो अपनेमें गौरवकी कल्पना करता है, न गौरवकी कामना ही। सर्वोपरि होनेपर भी वह अहंकारादिदोष-लेश-शून्य है। यह मादनाख्य महाभाव ही श्रीराधा प्रेमका एक विशिष्ट रूप है...।"

इन छन्दोंके माध्यमसे वही महाभावोदधि उच्छलित हो रहा है। कदाचित् इनका चिन्तन, स्मरण, पठन हमारे लिये भी उस भूमिकाका निर्माण कर दे, जहाँ स्व-विनिमय-स्वरूप विलास हिलोरें लेने लगता है और लहरें अपने आपमें, अपने आपके प्रति ही नाचने लगती हैं। परन्तु यह उसीके लिये सम्भव है, जो अन्य अभिसंधियोंसे सर्वथा शून्य होकर साधनामें ही अपने मन-प्राणको तन्मय कर देनेको जुट पड़ता है और फिर वहीं, जहाँ वह है, जिस परिस्थितिमें है, भगवत्कृपाके प्रकाशकी प्रतीक्षा करता रहता है। यह होनेपर ही सम्भव है – एक भी पद-विन्यास पावन प्रेमदेशकी ओर...।

कुंजबिहारी पालड़ीवाल

महामंत्री, श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान

इनका काष्ठ-मौन "रस-समुद्र" में निमज्जन है

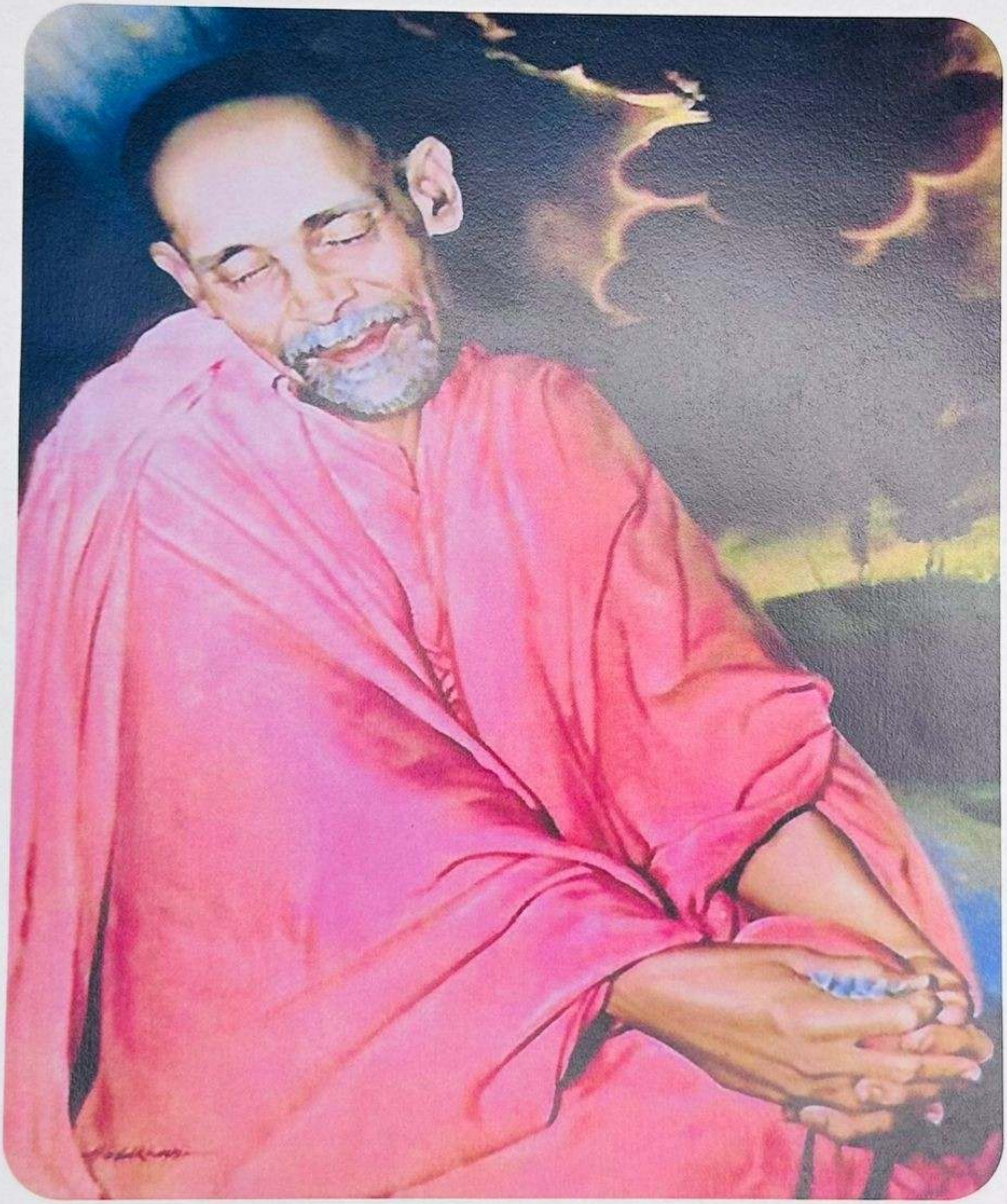
एक होता है रस-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। दोनों मार्गोंमें तत्त्वज्ञान अपेक्षित है। रस-मार्गका सिद्ध पुरुष तत्त्वज्ञानसे रहित नहीं होता, और तत्त्वज्ञानीमें तत्त्वज्ञान रहता ही है, रस चाहे न हो। ...... (बाबा) का काष्ठमौन केवल तत्त्वज्ञानमें स्थितिजनित पंचम भूमिकावाला नहीं, क्रियाके अभावके स्वरूपवाला नहीं, अपितु रस-समुद्रके लहरानेके स्वरूपवाला है।

(बाबा) के जो अन्तरंग जीवनके सम्पर्कमें आये हैं, उनको मालूम है कि महाभावकी जो अगले स्तरकी चीज है, जिसकी रूप-रेखा शायद गोस्वामी प्रभृत रस-मर्मज्ञों तकने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई, इनके अनुभवमें आयी। ...... इस प्रकारसे इनका काष्ठ-मौन असलमें इनका रस-समुद्रमें निमज्जन है। ...... साधनाके क्षेत्रमें यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व एक-दूसरेके अ-प्रतिद्वन्द्वी होकर एक साथ, एक रूपमें रहते हों। ये रहे हैं पहले। ऐसा नारदादिमें था, भगवान शंकराचार्यमें भी ऐसा माना जाता है, लेकिन ये उदाहरण विरल होते हैं।

– पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार



नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार



महाभावनिमगन श्रीराधा बाबा

प्रेम-देशके पथिकका प्रणय-गीत
– प्रियतमसे संवाद

अनुक्रमणिका

प्रथम शतक

द्वितीय शतक

तृतीय शतक
पूर्वराग

चतुर्थ शतक

पंचम शतक

महर्षि दुर्वासा द्वारा श्रीराधाको वरदानकी प्राप्ति

षष्ठम शतक

श्रीकृष्णका पूर्वराग

सप्तम शतक

श्रीराधाकिशोरी-द्वारा स्वप्नमें परकीया-महाभावरसकी अनुभूति

अष्टम शतक

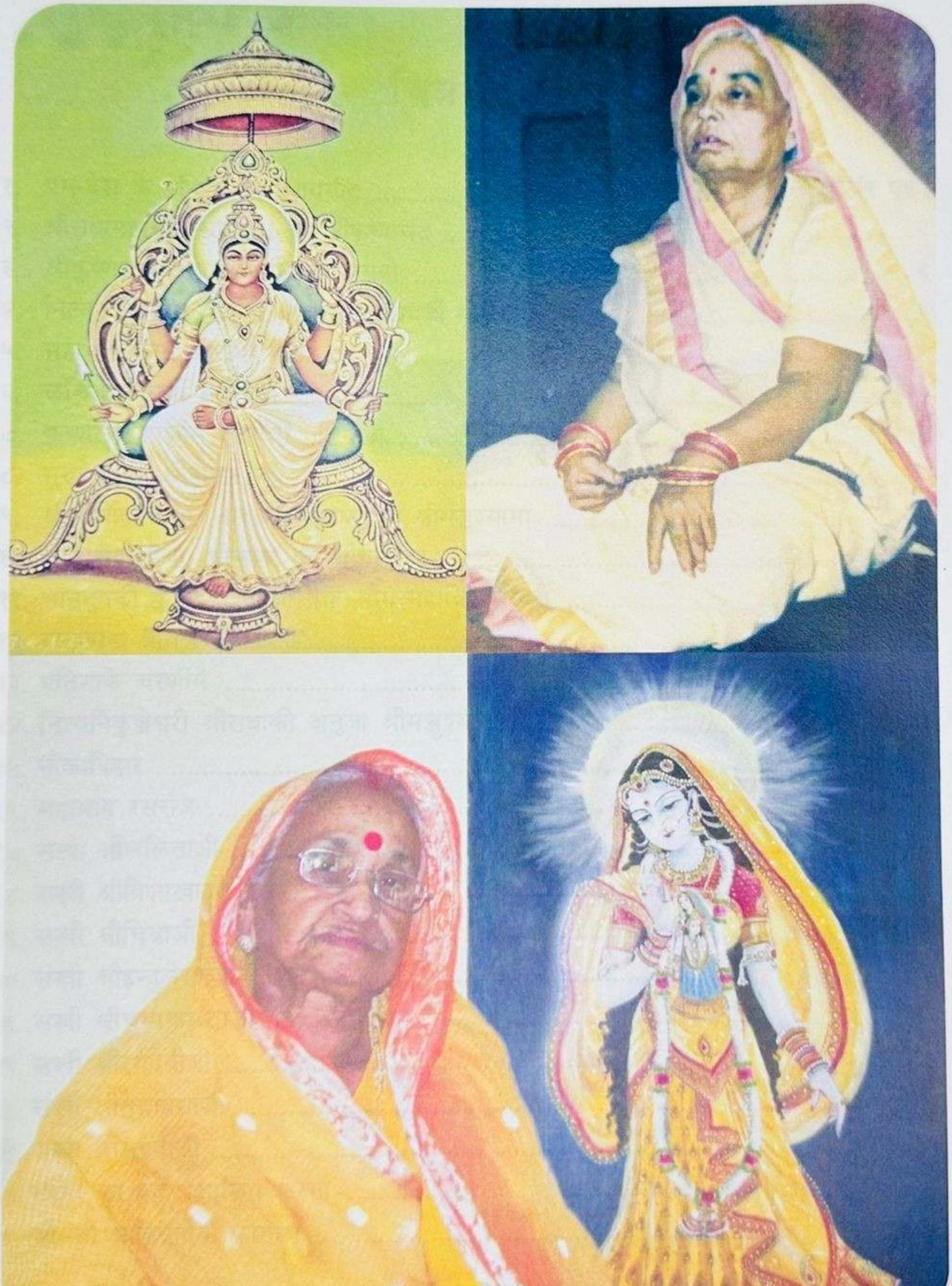
नवम शतक

दशम शतक

एकादश शतक

परिशिष्ट

चित्र सूची



॥ शतक प्रारम्भ ॥

ललिताम्बामयीं ध्येयां रामदत्तापदाभिधाम् ।
आत्मस्वरूपिणीं साध्वीं वन्देऽहं धर्ममातरम् ॥१॥ राधा

कृष्णास्वरूपिणीं वन्दे हनुमद्गुप्तसन्ततिम् ।
नित्यां धर्मस्वसारं वै मञ्जुश्यामां सहोदराम् ॥२॥ कृष्णा

इन धुँधली आँखों से सब कुछ मैं देख नहीं पाती, प्रियतम!
सपना-सा विश्व बने तुमको मैं प्यार न दे पायी, प्रियतम!
था खेल मनोहर वह, जिसमें गुरुदेव बने तुम थे, प्रियतम!
करने बैठी हूँ अब पूजा प्राणों में व्यथा लिये, प्रियतम ॥१॥

हूँ वही, जिसे कहकर 'मेरे प्राणों की रानी,' हे प्रियतम!
थे पकड़ लिये वे हाथ, लगी मेंहदी जिनमें थी, हे प्रियतम!
पर भग्न हुआ-सा था गृह वह, जिसमें रहती बाला, प्रियतम!
थी तम से परिपूरित रजनी, जब तुम आये थे, हे प्रियतम ॥२॥

दीपक तक नहीं वहाँ था, कुछ कण थे रज के बिखरे, प्रियतम!
गोबर-मिट्टी से यद्यपि थी अवनी लीपी-पोती, प्रियतम!
थे सब कपाट टूटे गवाक्ष के तथा द्वार के भी, प्रियतम!
वह पवन धूलि भरकर दुकूल में लाया करता था, प्रियतम ॥३॥

उस कच्चे घर में रहकर भी निर्मल थी वह बाला, प्रियतम!
था सका नहीं छू उसे एक कण बाहर से आया, प्रियतम!
थी छिपी शक्ति उसमें सहस्र पावक-पुञ्जों की, हे प्रियतम!
सामर्थ्य नहीं थी कहीं किसी में, जो दूषित कर दे, प्रियतम ॥४॥

उस पथ से जो जाते, पाते पर देख भग्न गृह ही, प्रियतम!
अवकाश कहाँ किसको था, जो भीतर जाकर देखे, प्रियतम!
है मात्र खण्डहर ही, प्रायः सबके मनमें आता, प्रियतम!
वे थे राही, था लगा ध्यान उनका पथ पर अपने, प्रियतम ॥५॥

दल तथाकथित राजाओं का, ऋषियों का, मुनियों का, प्रियतम!
कुछ सिद्धों का भी आता था एवं गन्धर्वों का, प्रियतम !
पड़ती उसपर जो दृष्टि कहीं उनकी पैनी-सी, हे प्रियतम!
वह भवन वस्तु बनता विराग अथवा विनोद की ही, प्रियतम ॥६॥



था खेल मनोहर वह, जिसमें गुरुदेव बने तुम थे, प्रियतम!

कुछ थे विहङ्ग उसमें अवश्य, पर थे वे सब सोये, प्रियतम!
थे नीड़ सभी के भिन्न-भिन्न, सहचरी साथ में थी, प्रियतम!
उनका था वह संसार अलग, वे थे भूले उसमें, प्रियतम!
है कौन यहाँ बाला बसती, वे क्या कैसे जानें, प्रियतम ।।७।।

वह रात नहीं थी चार पहर वाली, जो मिट जाती, प्रियतम!
हैं सब कहते अनादि उसको, जो पण्डित सच्चे हैं, प्रियतम!
होता है उसका अन्त उसी के जीवन में, बस, हे प्रियतम!
जो रूप अनिर्वचनीय तथा अद्‌भुत अचिन्त्य देखे, प्रियतम।।८।।

इसलिये विहङ्गम सोये थे, पर थी जगती बाला, प्रियतम!
थी नींद नहीं आयी क्षणभर भी जीवन में उसके, प्रियतम!
झरती रहती आँखें, ज्वाला हृत्तल में थी जलती, प्रियतम!
था पास नहीं कोई उसके, जो अश्रु पोंछ दे, हे प्रियतम।।९।।

रहते कुञ्चित् काले हरदम थे केश खुले उसके, प्रियतम!
भीगा रहता परिधान नील नयनों की धारा से, प्रियतम!
उन जीर्ण हुए वातायन के रन्ध्रों से लगकर, हे प्रियतम!
देखा करती थी निर्निमेष लोचन से अम्बर को, प्रियतम।।१०।।

भ्रम होता सहसा उसे कभी, रवि उदित हो चुका, हे प्रियतम!
सुनने लगती कलरव खग का, भ्रमरों का गुञ्जन, हे प्रियतम!
स्वर-चातक का 'पी कहाँ' तथा कोयल की 'कू-कू', हे प्रियतम!
श्रवणों में आकर लग जाती, होने प्रतीति दिन की, प्रियतम।।११।।

आशा की बेलि हरी होती, वे आयें आज कहीं, प्रियतम!
मिलने का फिर अनुभव करती, रस-सरिता में बहती, प्रियतम!
उठता वह बोल पह रुआ खग इतने में धीरे से, प्रियतम!
जगकर उस सपने से बाला रोने लगती थी, हे प्रियतम ।।१२।।

थी राजा की पुत्री बाला, स्वर्णिम दिन थे देखे, प्रियतम!
माता उसकी थी रानी, वह दृग पुतरी थी जिसकी, प्रियतम!
उसकी थी एक बहिन छोटी, प्राणों की छाया थी, प्रियतम!
उसका था एक बड़ा भाई, प्राणों का सहचर था, प्रियतम॥१३॥

अगणित सहेलियाँ थीं उसकी, प्राणों की धारा थी, प्रियतम!
दासी-दासोंका था समूह, थी प्राण बनी उनके, प्रियतम!
अगणित कुटुम्बिजन थे उसके प्राणों की ऊर्मि हुए, प्रियतम!
पशु-पक्षी तक के प्राणों में वह थी निवास करती, प्रियतम॥१४॥

उद्यानों में, आरामों में बिहगी-सी थी फिरती, प्रियतम!
महलों में चञ्चल चपला-सी हँसकर खेला करती, प्रियतम!
अपलक सब देखा करते थे क्रीड़ा-शैशव उसकी, प्रियतम!
न्योछावर जो न हुआ उसपर, था नहीं कहीं कोई, प्रियतम॥१५॥

है बात एक दिन की, जब वह थी वर्ष सात की, हे प्रियतम!
मन में आया, जाऊँ वनमें मैं पुष्प चयन करने, प्रियतम!
उत्तरकी ओर मनोहर था वन एक विशाल घना, प्रियतम!
कल-कल निनादिनी के तटपर शोभा का आकर, हे प्रियतम॥१६॥

रहते थे मानो सदा वहीं ऋतुराज-शरद दोनों, प्रियतम!
पर था निषेध उस कानन में सबके जाने का, हे प्रियतम!
अनुमति राजा की लेकर ही कोई जाता था, हे प्रियतम!
नृपको अपनी कुलदेवी के दर्शन होते उसमें, प्रियतम॥१७॥

अतएव पूर्णिमा जब आती तिथि तथा अमावस की, प्रियतम!
थी उस वन की देती फेरी जो प्रजा राज की थी, प्रियतम!
उनमें जिसकी अतिशय निष्ठा देवी की होती थी, प्रियतम!
उसको दर्शन हो जाता था प्रत्यक्ष दिव्य उनका, प्रियतम॥१८॥



श्रीकीर्तिदा मैया, श्री श्रीदाम, श्रीराधा एवं श्रीमंजुश्यामा (छन्द १३)

अतुलित पवित्रता का अनुभव तो सबको ही होता, प्रियतम !
सब आ-आकर अपनी-अपनी बातें कहते वे थे, प्रियतम !
नृपतनया ने थी सुनी नहीं उनसे वन की गाथा, प्रियतम !
उत्कण्ठित अतः हुई वह थी जाने के लिये वहाँ, प्रियतम ॥१९॥

वह जननी से आकर बोली पीयूष भरे स्वर में, प्रियतम !
'कुछ फूल बीन लाऊँ मैं री ! उस वन से' और हँसी, प्रियतम !
भर आँखें रानी की आयीं, सुनकर फिर जब देखी, प्रियतम !
कैशोरवयस की लाली-सी नवमुख पर पुत्री के, प्रियतम ॥२०॥

लोचन के आगे नाच उठी रानी के जीवन की, प्रियतम !
घटना प्राचीन नवीन वधू थी बनी वहीं आयीं, प्रियतम !
वह थी सुहाग की रात, मौन थे आर्यपुत्र बैठे, प्रियतम !
वे थीं बैठी, था झुका हुआ सिर उनके चरणों में, प्रियतम ॥२१॥

जीवनसङ्गिनी अलौकिक थी सुन्दरी मिली, फिर था, प्रियतम !
दोनों में ही नवयौवन का उन्मेष; किंतु दोनों, प्रियतम !
हो गये विरत उन विषयों के उन्मादी भोगों से, प्रियतम !
जागा अन्तस्तल में सहसा ज्योतिर्मय भाव, अहो ! प्रियतम ॥२२॥

हम दोनों अभी इसी क्षण से हो चुके समर्पित हैं, प्रियतम !
जो कृपामयी त्रिभुवनजननी हैं, उनके श्रीपद में, प्रियतम !
किङ्करी और किङ्कर हम हैं दोनों विक्रीत हुए, प्रियतम !
केवल उनकी ही सेवा अब जीवन पर्यन्त करें, प्रियतम ॥२३॥

उनका आदेश भले जब हो, तब एक पुत्र बस, हो, प्रियतम !
जो परम्परा का नृपकुल की निर्वाह वीर कर दे, प्रियतम !
पश्चात् सदा के लिये लीन हम हों श्री-पद-नख में, प्रियतम !
आदर्श रखें हम, जिसे प्रजा अपनाकर सुखी बने, प्रियतम ॥२४॥

इस निश्चय को लेकर उनने कुछ मास बिताये थे, प्रियतम!
आयी जब रात सदाशिव की उस बार शिशिर ऋतु में, प्रियतम!
आदर से दम्पति ने ली थी दीक्षा सद्गुरु ऋषि से, प्रियतम!
निगमागमसम्मत ली शिक्षा आराधन-पद्धति की, प्रियतम ॥२५॥

हरिशयनी निशा मनोहर थी, अर्चन आरम्भ हुआ, प्रियतम!
थी त्रिपुरसुन्दरी की प्रतिमा प्रासाद-कक्ष में ही, प्रियतम!
अद्भुत सुवर्ण से विरचित थी, फिर था प्रभाव ऐसा, प्रियतम!
हो जाता नमित स्वतः सबका सिर मन्दिर-परिसर में, प्रियतम ॥२६॥

हो कहीं चित्त की वृत्ति, किंतु आते ही सीमा में, प्रियतम!
चाहे कोई कैसा भी हो, भावित होता सहसा, प्रियतम!
विस्मृत सब कुछ होकर समाधि मानो लग जाती थी, प्रियतम!
प्रहरी ही होश कराता यह कहकर 'दर्शन कर लो,' प्रियतम ॥२७॥

लेकर अञ्जलि में पुष्प, तथा पङ्किल लोचन से, हे प्रियतम!
जाकर जब अर्पित कर देता अपने को श्रीपद में, प्रियतम!
होता था भान तभी उसको अग्रिम कर्तव्यों का, प्रियतम!
वे अहो! न जाने कब से थीं राजित देवी कुल की, प्रियतम ॥२८॥

युवराज रूप में ही जब थे वे वर्तमान राजा, प्रियतम!
ऋषितुल्य पितृचरणों की ले अनुमति ली थी उनने, प्रियतम!
अपने ऊपर सँभाल पूरी देवी की सेवा की, प्रियतम!
उसके पहले भूदेवों के द्वारा अर्चन होता, प्रियतम ॥२९॥

श्रद्धापूरित मन से यद्यपि युवराज पूछते थे, प्रियतम!
भूदेवों से कुलदेवी का इतिवृत्त पुराना, हे प्रियतम!
हँसकर पर वे कह देते थे, 'हे वत्स बाट देखो, प्रियतम!
वे जगजननी बतलायेंगी जो बतलाना होगा,' प्रियतम ॥३०॥

फिर सभी व्यवस्था सेवा की क्रमशः भूदेवों ने, प्रियतम!
अतिशय विनम्र युवराज कुशल मतिमान धीर को ही, प्रियतम!
दी सौंप, और मङ्गलमय कर सिर पर रखकर उसके, प्रियतम!
'तेरी जय हो!' कहकर सहसा अन्तर्हित सभी हुए, प्रियतम॥३१॥

तब से हो गये वर्ष सत्तर, नौ मास और दिन दो, प्रियतम!
अविराम भाव-संवलित हुए, नृपने की थी अर्चा, प्रियतम!
सम्बोधन 'सहधर्मिणि' का भी अक्षरशः सत्य घटा, प्रियतम!
रानी के जीवन में भी, है तुलना न कहीं जिसकी, प्रियतम॥३२॥

अब पुनः वही हरिशयनी की रजनी थी उजियारी, प्रियतम!
सर्वथा निरभ्र गगन था, सब हँसते-से थे तारे, प्रियतम!
अन्तरसत्वा थी रानी फिर मन्त्री की पत्नी भी, प्रियतम!
थीं हुई त्रिपुरसुन्दरी तुष्ट बहुकाल-अर्चना से, प्रियतम॥३३॥

नौ मास और कुछ दिन पहले इस देवशयन से ही, प्रियतम!
प्रत्यक्ष महादेवी का था दर्शन-सौभाग्य मिला, प्रियतम!
रानी को, फिर समानशीला मन्त्री की दारा को, प्रियतम!
थीं हँसी महामाया एवं कह गयी स्वयं यह थीं, प्रियतम॥३४॥

'आये वह राजपुत्र, इससे पहले गृह मन्त्री का,' प्रियतम!
'मेरी क्रीड़ा की भूमि बने, आरम्भ करूँ मैं ही,' प्रियतम!
'जो प्रथम कृत्य रङ्गस्थल का है नटी किया करती,' प्रियतम!
'फिर हो लीला होती है जो चिन्मयी कदाचित् ही,' प्रियतम॥३५॥

उत्सव था आज नृपतिपुर में अवनीशभवन में भी, प्रियतम!
थी देर घड़ी आधी की ही होने में मध्यनिशा, प्रियतम!
नीराजन लिये खड़े नृप थे, रानी थीं पास खड़ी, प्रियतम!
थीं महात्रिपुरसुन्दरी अहो! सचमुच अलसायी-सी, प्रियतम॥३६॥

दौड़ी आयी थी कहने यह दासी मन्दिर में ही, प्रियतम !
हैं प्रसव-वेदना-सी अनुभव कर रहीं सचिव-गृहणी, प्रियतम !
श्री-प्रतिमा के दृग-कमल अहो ! क्षणभर के लिये हिले, प्रियतम !
सङ्केत मिला था रानी को जाने के लिये वहीं, प्रियतम ॥३७॥

छूकर वे श्रीपदनख को थीं चल पड़ीं तुरन्त तथा, प्रियतम !
पहुँची उस सदन कक्ष में थीं जैसे, बस, भान हुआ, प्रियतम !
है ज्योति अंशुमाली की सच फैली सर्वत्र वहाँ, प्रियतम !
दासी की आँखें बन्द हुईं, भीतर वह जा न सकी, प्रियतम ॥३८॥

मीलितनयना ध्यानस्थ हुई मन्त्री की जाया की, प्रियतम !
गोदी में प्रगट जगन्माता हो गयी अचानक थीं, प्रियतम !
अप्रतिम सुन्दरी नवजाता कन्या का वेष लिये, प्रियतम !
केवल रानी ही देख सकीं अद्‌भुत उस घटना को, प्रियतम ॥३९॥

क्षणभर में फिर उसपर निर्मल आवरण एक आया, प्रियतम !
वे नाल आदि वस्तुएँ सभी निर्मित हो गयीं वहाँ, प्रियतम !
रो उठी बालिका भी वह अब इस भाँति उधर मानो, प्रियतम !
नारायण निद्रित हुए, इधर वे नारायणी जगीं, प्रियतम ॥४०॥

कन्या के मुखमण्डल पर थी मोहनता श्री-सी ही, प्रियतम !
अङ्गों में भी वैसी ही थी दुःसह-सी प्रभा भरी, प्रियतम !
रोना उसका उस समय अहो ! श्रुति-मधुर तन्त्र रव था, प्रियतम !
दर्शक आनन्दविमूढ़ हुए, खिल उठी प्रकृति सारी, प्रियतम ॥४१॥

आयी श्रावण कृष्णा की थी फिर तीज वार बुध था, प्रियतम !
रवि के अस्ताचल जाने में घटिका थी पाँच बची, प्रियतम !
नादित धौंसे के शुभ रव से प्रासाद हुआ सहसा, प्रियतम !
नृप-तनय-जन्म का मंगलमय संवाद मिला सबको, प्रियतम ॥४२॥

नृप बालक के गोरे मुख की शोभा किस भाँति कहूँ, प्रियतम!
देखी जिनने, बोले न कभी, बोले वे, लख न सके, प्रियतम!
दो भुजा और नीलिमा मात्र आवृत कर माया से, प्रियतम!
सचमुच वे मधुसूदन ही थे आये शिशु-वेष धरे, प्रियतम ॥४३॥

दो पर्वत की द्रोणी में थी फैली जो राजपुरी, प्रियतम!
बाइस दिन तक कण-कण में था उसके कम्पन सुख का, प्रियतम!
रत्नों की ज्योति रात में थी इङ्गित करती, मानो, प्रियतम!
नृपतनय-अमात्यसुता के शुभ निर्मल भावी यश का, प्रियतम ॥४४॥

महरानी और सचिवगृहणी, दोनों सहोदरा थीं, प्रियतम!
थी चाह बहिन की, हो उत्सव, नृपसुत आ जाय तभी, प्रियतम!
नृप-कुल-देवी की भी रुचि थी ऐसी ही, इसीलिये, प्रियतम!
थी उत्समयी वह नित्य सुखद अँधियारी तीज बनी, प्रियतम ॥४५॥

बीता फिर वर्ष और आयी भादों शुक्ला षष्ठी, प्रियतम!
रविवासर था, थे भानु उदित दो घड़ी हुए पहले, प्रियतम!
रानी की एक बहिन जो थी मौसेरी नाते में, प्रियतम!
शारदा सही जो थी, उसको कन्या थी एक हुई, प्रियतम ॥४६॥

जो महात्रिपुरसुन्दरी अघटघटनापटीयसी हैं, प्रियतम!
चिन्मयी ज्योति उनकी ही थी कन्या बनकर आयी, प्रियतम!
होने वाली लीला जो थी, जिसमें थीं नटी बनी, प्रियतम!
वे स्वयं, सचिव के गृह उसका सम्विद्-पट उठा वहाँ, प्रियतम ॥४७॥

वह था संयोग, महारानी मिलने आयी थीं, हे प्रियतम!
भगिनी से, प्रेरित होकर ही कुलदेवी के द्वारा, प्रियतम!
गोदी में तेरह मास तथा सत्रह दिन का शिशु था, प्रियतम!
मङ्गलमय चरण पड़े जब थे उनके उस पत्तन में, प्रियतम ॥४८॥

रानीकी अनुजा भी उनके थी साथ लिये पुत्री, प्रियतम !
दोनोंके ही समक्ष अभिनव था दृश्य खुला पहला, प्रियतम !
क्रीड़ारत वे दोनों शिशु थे, हाथोंमें हाथ लिये, प्रियतम !
तीनों बहिनें बैठी प्रमुदित थीं देख रही उनको, प्रियतम ॥४९॥

इतनेमें ही मानो सहस्र उग उठे दिवाकर थे, प्रियतम !
रानीकी बहिन तीसरीके उर-उदर-लोचनोंमें, प्रियतम !
हो गयी प्रभा परिणत तुरन्त बालिका-रूपमें थी, प्रियतम !
फिर सरक अङ्कसे पड़ी और शिशुओंमें जा बैठी, प्रियतम ॥५०॥

सीमाविहीन अचरजमें थीं डूबी तीनों बहिनें, प्रियतम !
है स्वप्न-घटित घटना, अथवा हो रही सत्य यह है, प्रियतम !
बन गया असम्भव था निर्णय कर लेना वहाँ इसे, प्रियतम !
जड़िमा प्रत्येक रोममें थी तीनोंके भर आयी, प्रियतम ॥५१॥

यन्त्रित-से हुए, उधर शिशु वे थे खेल लगे करने, प्रियतम !
शाखा-चन्द्रमा-न्यायसे ही अभिराम दृश्य कह दूँ, प्रियतम !
दृग नचा-नचाकर तीनों ही क्रमशः माताओंके, प्रियतम !
कण्ठोंसे लगकर झूल उठे हँस-हँसकर मृदुल हँसी, प्रियतम ॥५२॥

'मेरी मैया है, अहो! नहीं, मेरी मैया यह है'; प्रियतम !
अप्रतिम मधुर वाणी यह थी तुतलायी गूँज उठी, प्रियतम !
केवल अलिन्दमें नहीं, भूत-भावी त्रिभुवन जनके, प्रियतम !
प्राणोंमें जो हैं जुड़े हुए तुम नित्य नीलघनसे, प्रियतम ॥५३॥

आखिर जब बात परस्पर यह तीनोंकी तीनों ही, प्रियतम !
मैया हैं, तीनों शिशुओंने ली मान फुल्ल दृगसे, प्रियतम !
मधुमय, अनन्त सुखमय, पावन कौतुक वह बदल गया, प्रियतम !
आँखें बदली माताओंकी सुन करके क्रन्दन-सा, प्रियतम ॥५४॥

वैसी ही माया फैल गयी, वैसी प्रतीति सबको, प्रियतम!
होने लग गयी, लोकमत ही मानो वह जन्मी थी, प्रियतम!
आनन्दसिन्धु उमड़ा, सब कुछ जन्मोचित कृत्य हुए, प्रियतम!
विस्मित वे किंतु तीन जननी रह-रहकर हो जातीं, प्रियतम॥५५॥

सुनो तक रानी वहीं रही परिवा के दिन सहसा, प्रियतम!
शङ्कित सब हुए, नगर न कहीं हो जाय नष्ट कल ही, प्रियतम!
नररूप बने मनुजादों का दल था आनेवाला, प्रियतम!
अतएव महारानी ने दी यह राय, 'सभी चल दो;' प्रियतम॥५६॥

'सर्वथा असम्भव है उनसे भिड़कर हम जयी बनें;' प्रियतम!
'है नगर निरापद केवल वह मेरा ही भूतल में;' प्रियतम!
'अनुकम्पा है जगदम्बा की, साहस न किसी में है;' प्रियतम!
'जो करें अनिष्ट वहाँ के लघु उन कीट-भृङ्ग का भी;' प्रियतम॥५७॥

'इसलिये तुरन्त वहीं लेकर सबको जाऊँगी मैं;' प्रियतम!
'आबाल-वृद्ध पशु-पक्षी तक कर दें प्रस्थान सभी;' प्रियतम!
'भय करें न तनिक, कहीं पथ में वे ध्वंस करें हमको;' प्रियतम!
'हैं सदय जगन्माता मुझपर, रक्षा कर लेंगी वे;' प्रियतम॥५८॥

गति एकमात्र थी यही चले वे प्रातः से पहले, प्रियतम!
सामान शकट में भर जितना सम्भव था भर लेना, प्रियतम!
लेंगे सम्भाल आकर फिर यदि सम्भव होगा आना, प्रियतम!
ऐसा निश्चय करके होकर निर्मोही जड़ धन से, प्रियतम॥५९॥

इस भाँति विदा करके सबको, सबके पीछे रानी, प्रियतम!
कहकर 'जय देवि दयामयि जय जगदम्बे, जय ललिते;' प्रियतम!
सुविशाल एक रथ में दोनों बहिनों को शिशुओं को, प्रियतम!
ले साथ चलीं निर्भय मानो भगवती जा रही हों, प्रियतम॥६०॥

वे अहो! न जाने कैसे थे पहुँचे सब-के-सब ही, प्रियतम!
केवल दो घड़ी लगी एवं दीखी वह राजपुरी, प्रियतम!
सन्मुख जैसे स्वागत सबका हँस-हँसकर थी करती, प्रियतम!
सीमापर खड़े महाराजा थे मङ्गलकलश लिये, प्रियतम ॥६१॥

विभुताका हुआ प्रकाश सत्य अद्भुत उस नृपपुर में, प्रियतम!
सुन्दर-से-सुन्दर पृथक-पृथक सबको आवास मिला, प्रियतम!
सपने में भी उन सबको जो सुख-सुविधा थी न मिली, प्रियतम!
वह मिली, वहाँ वे भूल गये पहले निवासथल को, प्रियतम ॥६२॥

अवसान वर्षका हुआ, पुनः आयी पाव सन्ऋतु थी, प्रियतम!
अष्टमी भाद्र शुक्ला की थी, रानी थी पीहर में, प्रियतम!
मध्याह्न हुआ था नहीं अभी, थी देर दण्ड दो की, प्रियतम!
थे अचक महाराजा पहुँचे अपने श्वसुरालय में, प्रियतम ॥६३॥

था उदर महारानी का फिर तेजोमय परम बना, प्रियतम!
हेमन्त-सम्पदा से जब थी भूषित यह धरा हुई, प्रियतम!
नौ मास पूर्व था मार्गशीर्ष, अष्टमी शुक्ल की थी, प्रियतम!
प्रातः की वेला थी, रानी देवी-मन्दिर में थीं, प्रियतम ॥६४॥

श्री-प्रतिमा के पद पर जो थी कुसुमावलि पड़ी उसे, प्रियतम!
कर में ले, हग से छुला-छुला अपसारित थीं करती, प्रियतम!
थे नहीं अभी राजा आये अर्चन के लिये वहाँ, प्रियतम!
कर रही अकेली रानी थीं पूजा की तैयारी, प्रियतम ॥६५॥

दीखा यह अकस्मात उनको, हँस पड़ीं महादेवी, प्रियतम!
फिर अहो! उरस्थल उनका था क्रमशः खुलता जाता, प्रियतम!
अञ्चल वह परदा-सा होकर बायें-दायें सरका, प्रियतम!
बन गया द्वार उससे निकली मनको हरने वाली, प्रियतम ॥६६॥

सुन्दरी अनिर्वचनीय एक कन्या गोरी-भोरी, प्रियतम!
रानी के कुन्तल की लट को कर में लेकर बोली, प्रियतम!
'री मैया!' अहा! सुधास्यन्दी स्वर था कितना मीठा, प्रियतम!
रानी में चेतनता न रही बाहर की किञ्चित् भी, प्रियतम ॥६७॥

भीतर की आँख किंतु उनकी थी देख रही घटना, प्रियतम!
देखी उनने जो थी, उसका सङ्केत भले कर दूँ, प्रियतम!
द्रुम एक परम रमणीय खड़ा पुष्पित कदम्ब का था, प्रियतम!
थी नित्य किशोरी एक, और था एक किशोर वहाँ, प्रियतम ॥६८॥

उन दोनों की ही ओर दृष्टि करके जगदम्बा थीं, प्रियतम!
कहतीं - हे सती! आज कर ले दर्शन मेरे उर का, प्रियतम!
सच्चिदानन्द, असमोर्ध्व और जो भगवत्ता का भी प्रियतम!
है सार-मूल मधुरिमा, यही नीली-पीली द्युति है, प्रियतम ॥६९॥

रसमय, सम्विद्, केवल, अद्वय, जो नील-पीतमय है, प्रियतम!
यह नित्य हृदय मेरा, जिसमें हूँ लीन हुई रहती, प्रियतम!
लीलारस पीता हुआ नित्य जो युगमरूप में है, प्रियतम!
रहकर दो, नित्य एक जो है, दृगविषय हुआ वह है, प्रियतम ॥७०॥

यह नित्यकिशोरी ही तुमसे बोली थी, 'री, मैया!', प्रियतम!
पीयेगी दूध सुधामय यह तेरे पयोधरों का, प्रियतम!
यह नित्य किशोर किंतु तेरी जो प्राणसखी वह है, प्रियतम!
उसका पी लेगा दूध, तभी आयेगी यह पीने, प्रियतम ॥७१॥

यह नित्य समाया रहता है उसके प्राणों में ही, प्रियतम!
यह नित्य समायी रहती है तेरे ही प्राणों में, प्रियतम!
तुम दोनों भूल गयी हो यह इनकी ही इच्छा से, प्रियतम!
अब याद करा देती हूँ मैं, जय हो तुम दोनों की! प्रियतम ॥७२॥

"दिव्यातिदिव्य सौरभ अनुपम तेरे इन केशों से," प्रियतम !
"हो रहा यहाँ प्रसरित अब है, आ चुके नृपति भी हैं।" प्रियतम !
"सङ्कल्प पवित्र और उनके मन में यह जाग उठा;" प्रियतम !
"सन्तति हो एक पुनः ऐसी सुरभित अलकों वाली," प्रियतम ॥७३॥

"अनुभूति किंतु अपनी यह तुम राजा से मत कहना," प्रियतम !
"रोने जब फूट-फूटकर वे रजनी में आज लगें;" प्रियतम !
"कहकर 'रानी हे! पतन हुआ, मेरा व्रत नष्ट हुआ;" प्रियतम !
"इतना-सा तब कहना जाकर 'जगजननी से पूछो।'" प्रियतम ॥७४॥

"दूँगी मैं बता दिखा बातें आगे की, पीछे की।" प्रियतम !
"प्रेरित मत किंतु, भला, करना, वे कहें पुनः उनको।" प्रियतम !
"सुख की प्रतिपल नवीन लहरें प्लावित तेरे, नृपके;" प्रियतम !
"प्राणों को नित्य करें सच है वाणी त्रिकाल मेरी;" प्रियतम ॥७५॥

इतने में दृश्य तिरोहित यह हो गया, जगीं रानी, प्रियतम !
अर्चन में योग न दे पायीं, उसदिन पगली-सी थीं, प्रियतम !
था प्रथम पहर जब बीत गया उसदिन की रजनी का, प्रियतम !
रानी-नृप शयन-भवन में थे हो भावमग्न बैठे, प्रियतम ॥७६॥

राजा के तनके कण-कण में ऐसी थी ज्योति भरी, प्रियतम !
वाणी क्या जिसे कहे, मन भी छू पाया नहीं कभी, प्रियतम !
थे नयन निमीलित-उन्मीलित रह-रहकर हो जाते, प्रियतम !
प्राणों में उनके सम्वेदन कैसा था, तुम जानो, प्रियतम ॥७७॥

दक्षिण कर रानी के उरपर, सिर पर कर वाम तथा, प्रियतम !
भावाभिभूत नृपने जैसे था रखा यत्नवत् ही, प्रियतम !
सङ्क्रमित उसी क्षण तेजपुञ्ज रानी के अङ्गों में, प्रियतम !
हो गया, तुरन्त सिमिटकर फिर उदरस्थल में जागा, प्रियतम ॥७८॥

संज्ञाविहीन अवनीश हुए रानी की गोदी में, प्रियतम!
थे पड़े तीस पल तक, जगकर वैसे ही फिर रोये, प्रियतम!
उन महिमामयी जगत्रय की जननी ने तब उनको, प्रियतम!
दिखला दी भूत-भविष्यत् की घटना, वे मुग्ध हुए, प्रियतम ॥७९॥

उसका ही था परिणाम, नृपति थे अकस्मात् आये, प्रियतम!
जाया-जन्मस्थल में स्वागत करने के लिये अहा! प्रियतम!
असमोर्ध्व महामहिमामय के प्राणों की देवी का, प्रियतम!
बेटी हो उनकी प्रगट अभी होनेवाली जो थीं, प्रियतम ॥८०॥

केवल नृप नहीं, धरा के जो मस्तक मणि मुनिगण थे, प्रियतम!
जो स्वर्लोकों के, भुवर्लोक, पन्नगतल तक के थे, प्रियतम!
प्रेरित हो अन्तर्यामी से दौड़े आये सब थे, प्रियतम!
जैसे थे प्रायः वैसे ही, कुछ रूप धरे भी थे, प्रियतम ॥८१॥

थे तपन गगन में चमक रहे, जन-सुखद अतीव बने, प्रियतम!
अवनी प्रतिपल ही थी धारण कर रही नयी सुषमा, प्रियतम!
वर्षाऋतु थी, पर सलिल वहाँ सर-सरित-निर्झरों का, प्रियतम!
हो चढ़ी हुई, था बना अतुल उज्ज्वलतम मोती-सा, प्रियतम ॥८२॥

शीतल-सुगन्ध-मन्थर समीर छू-छूकर के सबको, प्रियतम!
कानों में था कहता मानो, 'देखो! धीरे-धीरे', प्रियतम!
'रस लहर एक-से-एक बड़ी इस भावसिन्धु में है', प्रियतम!
'आनेवाली, तुम अवगाहन निरबाधि करते रहना।' प्रियतम ॥८३॥

थे अश्व किरणमाली-रथ के जब ठीक मध्य नभ में, प्रियतम!
आये, बस, उसी सन्धि पर थी आयी कन्या नृप की, प्रियतम!
मङ्गलमय परम जुड़े जब थे कालोचित योग सभी, प्रियतम!
रसराज और जब महाभाव दोनों थे एक हुए, प्रियतम ॥८४॥

कोई न चितेरा हुआ यहाँ, आगे न कभी होगा, प्रियतम!
जो चित्र सलोनी नृप की उस बेटी का सही लिखे, प्रियतम!
लोचन जिनके हों तुम मेरे प्राणाधिक के पद की, प्रियतम!
नख-चन्द्र-चन्द्रिका से भासित, वे देख भले ही लें, प्रियतम॥८५॥

दो बार अहो! वह मुख-शोभा, फिर वह उमङ्ग्धारा, प्रियतम!
प्राणों में जो थी उमड़ चली, देखी जिनने उनके, प्रियतम!
एवं उसका प्रकाश बाहर कैसे था हुआ वहाँ, प्रियतम!
निर्लज्ज हुई उस ओर, भला, किञ्चित् कह आयी हूँ, प्रियतम॥८६॥

अब तो इतना-सा कहूँ, अहा! उन दिव्य अतिथियों ने, प्रियतम!
रानी ने, बहिनों ने, अगणित चर-अचर लोचनों ने, प्रियतम!
कन्या को, रस के प्लावन को देखा, बस, देखा था, प्रियतम!
था काल मकर, रानी लौटीं पीहर से ले पुत्री, प्रियतम॥८७॥

अब गये पच्चीस महीने, शुभ दिन सात, अष्टमी से, प्रियतम!
प्रातः से लेकर जब नूतन होता प्रभात फिर था, प्रियतम!
उन आठों पहरों में प्रतिपल नृप-नगरों में जो थीं, प्रियतम!
भावों की नव तरङ्ग उठती, सम्भव है क्या कहना, प्रियतम॥८८॥

जो हो, इतने दिन की जब वह हो चुकी लाड़िली थी, प्रियतम!
थे महीपाल के प्राणोपम जो एक धर्म भाई, प्रियतम!
'गोपेश' अहो! जिनकी पदवी विख्यात भुवन में थी, प्रियतम!
हो रहा शरद् पूनों का था उत्सव उनके गृह में, प्रियतम॥८९॥

जिस दिन वह नृपति-तनूजा थी अवनीतल पर आयी, प्रियतम!
उसके ही पन्द्रह दिवस ठीक पहले उस रजनी में, प्रियतम!
उन गोपवर्य को महामहिम ऐसा था पुत्र हुआ, प्रियतम!
जो था अहीर-कुल-उजियारा, सबके दृग का तारा, प्रियतम॥९०॥



श्रीयशोदा मैया, श्रीकृष्ण एवं श्रीबलराम (छन्द ९०)

तब से उन धर्म भाइयों ने निश्चय था किया यही, प्रियतम!
"ये शरद्, बसन्त, सभी ऋतु में होते उत्सव जो हैं," प्रियतम!
"आगे अब हम सर्वदा करें दोनों कुल मिलकर ही," प्रियतम!
"वे भले वनस्थल में हों या नृपभवन किसी में हों," प्रियतम॥९१॥

इसलिये नृपति थे सपरिवार आये अहीरपुर में, प्रियतम!
आयी थी प्रजा और तो क्या, दस दिन वय का शिशु भी, प्रियतम!
मानो नृपपुर उठ आया था पूरा-का-पूरा ही, प्रियतम!
उन गोप-नगर-नर-नारी का उत्साह निराला था, प्रियतम॥९२॥

गोपेश और अवनीश अभी नारायण विग्रह का, प्रियतम!
चौंसठ उपचारों से अर्चन करके कृतकृत्य हुए, प्रियतम!
उद्दाम नृत्य के सहित अहो! थे नाम गान करते, प्रियतम!
स्वर में स्वर सभी मिलाकर थे वैसे ही पुरवासी, प्रियतम॥९३॥

बीती ही थी वह अर्धनिशा, पल पाँच हुए, बस, थे, प्रियतम!
गोपेशपुत्र को ले आयीं रानी की बहिन वहाँ, प्रियतम!
चञ्चल बालक वह उतर पड़ा जल्दी से गोदी से, प्रियतम!
भयहीन सदा वह था, झट से घुस पड़ा भीड़ में, हे प्रियतम॥९४॥

वह नृपतिपुत्र को 'श्रीभैया' सम्बोधित था करता, प्रियतम!
गोपेश-वसन को खींच चपल कर से, हँसकर बोला, प्रियतम!
"बाबा! भेजा है मैया ने मुझको, तुमसे कह दूँ," प्रियतम!
"श्रीभैया को है एक हुई छोटी फिर बहिन अभी," प्रियतम॥९५॥

उस बालक की वाणी में था टोना-सा भरा सदा, प्रियतम!
वह भाव-समाधि अहो! सबकी टूटी निमेष में ही, प्रियतम!
नारायण का वह शारदीय उत्सव उन नरपति की, प्रियतम!
कन्या की महाबधाई में परिणत हो गया वहाँ। प्रियतम॥९६॥

इस भाँति महारानी क्षण में मानो हों घटी अभी, प्रियतम!
इन उपर्युक्त घटनाओं को थीं देख गयी फिर से, प्रियतम!
'मैया! क्या है तू सोच रही,' कहकर जब पुत्री ने, प्रियतम!
उनके अञ्चल को खींचा था, टूटा तब सच, सपना, प्रियतम॥९७॥

पुत्री के अधर-कपोलों पर वत्सलता के रस से, प्रियतम!
शरित वह चिह्न अनेक बार अङ्कित कर फिर अपनी, प्रियतम!
छोटी बेटी को, सखियों को, जो वहाँ बड़ी की थीं; प्रियतम!
वैसे ही रस देकर, लेकर सबको थीं वे आयीं, प्रियतम॥९८॥

अर्चन-मन्दिर में राजा थे ध्यानस्थ हुए बैठे, प्रियतम।
रानी ने बतला दी उनको दुहिता की जो रुचि थी, प्रियतम!
झर-झरकर लगे नयन बहने, नरपाल निहाल हुए, प्रियतम!
मानसतल में वह बात जगी देवी की कही हुई, प्रियतम॥९९॥

'होकर जब सात वर्ष की यह हँसकर इच्छा कर ले,' प्रियतम!
'मेरे वन में आने की, तब समझो, यह खेलेगी;' प्रियतम!
'वह खेल अनन्तकाल तक जो त्रिभुवन थिर-जङ्गम को,' प्रियतम
'पावनतर, पावनतम कर-कर निधि नित्य बने सबकी;' प्रियतम॥१००॥

गद्गद थी गिरा, नृपति ने थी दी अनुमति जाने की, प्रियतम!
सबको भूषण परिधानों से रानी ने सजा दिया, प्रियतम!
वे चलीं तुरन्त उसी वन में प्रसरित सच हो जैसे, प्रियतम!
हो तरल पुराण नित्य कवि के नव मन की सुन्दरता, प्रियतम॥१०१॥

प्रथम शतक समाप्त

पूरब की शिखरावलि-मण्डित गिरि था सीमा रचता, प्रियतम!
कानन से जुड़ी प्रतीची में प्रसरित नीली सरिता, प्रियतम!
सुविशाल राजपथ उत्तर में द्रुमजालों से छाया, प्रियतम!
चलकर कोसों तक छू लेता उस शैल रत्नमय को, प्रियतम॥१०२॥

निर्झर झरकर पर्वत से लघु था स्रोत एक बहता, प्रियतम!
चञ्चल-सा सङ्गम था उसका श्यामा तरङ्गिणी से, प्रियतम!
उस वन के दक्षिण में रहकर कल-कल करता, हँसता, प्रियतम!
पावस में भी उसकी धारा मुक्ता बिखेरती थी, प्रियतम॥१०३॥

पगडंडी सभी दिशाओं में सीधी-टेढ़ी जाती, प्रियतम!
रमणीय तृणों से, गुल्मों से हो जाती लुप्त कहीं, प्रियतम!
सौरभ के दानी पुष्पों से लोभित होकर भौंरा, प्रियतम!
गा-गाकर था उड़ता, करता गुञ्जित अरण्य को, हे प्रियतम॥१०४॥

पक्षी-समूह का कलरव था सङ्केतदान करता, प्रियतम!
काननवासिनी तरुणियों को, रसपाठ पढ़ाता था, प्रियतम!
जीवन की धारा किधर मुड़े, भावी क्या है किसकी, प्रियतम!
सच्चा प्रतीक इसका वट था, आदर वे सब करतीं, प्रियतम॥१०५॥

उस वन के किसी चतुष्पद में हिंसा की वृत्ति न थी, प्रियतम!
दिन-रात परस्पर निर्भय वे सुख से घूमा करते, प्रियतम!
उनमें मुनियों की दृष्टि अहो! थी स्वतः उतर आयी, प्रियतम!
मानो एकात्म भाव मन में वे लिये हुए सब थे, प्रियतम॥१०६॥

जो दरी एक-से-एक बढ़ी शोभा में गिरि की थी, प्रियतम!
उसमें वे जब करने लगते विश्राम आँख मूँदे, प्रियतम!
उनकी नीरवता अचपलता सञ्चारित कर देती, प्रियतम!
पूरी अटवी के प्राणों में मुद्रा समाधि-जैसी, प्रियतम॥१०७॥

उस ओर शैल के कण-कणमें मानो चेतनता थी, प्रियतम !
वह खड़ा सतत देखा करता ऊँचा सिर किये हुए, प्रियतम !
क्या है उस वनमें, कहाँ किसे क्या आवश्यकता है, प्रियतम !
फिर वहीं खड़े रहकर ही वह सबको सँभाल लेता, प्रियतम ॥१०८॥

अक्षत तो एक ओर रहती वह वीरवधूटी भी, प्रियतम !
फिर भी था यथासमय देता सबको आहार, भला, प्रियतम !
जिसकी जिसपर चलती रुचि थी, उसके समीप रखता, प्रियतम !
उसका इच्छित फल और उसे सुख से वह भर देता, प्रियतम ॥१०९॥

वह करे प्रौढ़ जनगण का ही आदर, यह बात नहीं, प्रियतम !
शिशु तकको नीलम, लाल और पुखराज राशि देता, प्रियतम !
समता, धीरता, प्यार-वितरण निरुपम था शैल लिये, प्रियतम !
उसके दृग में ही आँख मिला जन का वह चित्र लिखूँ, प्रियतम ॥११०॥

ललिता कुञ्ज का वर्णन –

तरु से रूठी-सी लता जहाँ अवनी पर थी फूली, प्रियतम !
द्रुम कर-पल्लव से छू उसकी बाँहें, झुककर कहता, प्रियतम !
प्रेमिल आँखों का ही भ्रम है, थी छाया ही उरमें, प्रियतम !
इन शशि-सुमनावलि की झलमल रह-रहकर जो करती, प्रियतम ॥१११॥ A

यत्र उज्ज्वल सत्वमयी अमृता निम्बं समाश्लिष्य प्रसरति ॥११२॥ B

वटं शंखालु इत्याख्या वल्लरी ॥११३॥ D

करीराणां मूलदेशे श्यामाकतृणराशि: ॥११४॥ E

A – ललिता का विशुद्ध माधुर्यमय खण्डिताभावविभूषित रूप ।

B – ललिता का प्रच्छन्न रस सम्पुटित खण्डिता की छाया लिये महामाया रूप ।

D ललिता का प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिता की छाया लिये
जगज्जननी रूप

E ललिता का प्रच्छन्न रस-सम्पुटित खण्डिता की छाया लिये
योगमाया रूप

कामिनी प्रजापति की क्रीड़ा वनदेवी से कहती, प्रियतम !
रजनीगन्धा अपना अनुभव शुचि गन्धवाह से, हे प्रियतम !
थी बात कुमुदिनी बतलाती हिमकर से उस अलि की, प्रियतम !
जो मत्त हुआ बँधकर सुख से था सुप्त कोष में, हे प्रियतम ॥११५॥ G

सूर्यमुखी स्वात्मवृत्तं अंशुमालिनं प्रति विज्ञापयति ॥११६॥ AA

अमला प्रवाहिणी म्लान एक पति को थी खोज रही, प्रियतम !
जब मिला नहीं, तब वह दीना पीछे की ओर मुड़ी, प्रियतम !
पर दरी महीध्र की बोली 'री! यहाँ कृष्णवर्णा,' प्रियतम !
इती है तुमको जोह रही, जा मिली अतः उससे, प्रियतम ॥११७॥ BB

चन्दनादिनवतरु निर्मितनवनिकुञ्जावलि ॥११८॥ DD

पनसादिदशवृक्षैर्विरचितदशकुञ्जपङ्क्तिः ॥११९॥ GG

यत्र कालरूपो रविरपि कल्पद्रुमस्य छायायां प्रतिष्ठितायाः
देवी प्रतिमायाः पादपीठं उपाश्रितो वर्तते ॥१२०॥ A

तस्य उज्ज्वलनीलमणिवत् प्रकाशदानम् ॥१२१॥ BB
श्रीफलकुञ्जं प्रति प्रदक्षिणत्वाचरणं च ॥१२२॥ D

G- ललिता का जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्ति भावापन्न रूप ॥
AA- ललिता का तुर्यतत्वात्मक रूप ॥
BB- ललिता का गङ्गायमुनात्मक रूप ॥
DD ललिता का विशुद्ध रस सम्पुटित प्रच्छन्न नवदुर्गात्मक रूप
GG ललिता का विशुद्ध रस सम्पुटित प्रच्छन्न दशविद्यात्मक रूप
A ललिता का विशुद्ध रस सम्पुटित भगवती महात्रिपुरसुन्दरी रूप।
B ललिता की विशुद्ध रस सम्पुटित भगवत्ता ॥
D ललिता का विशुद्ध रसमय श्रीमातृत्व रूप

विशाखा कुञ्ज का वर्णन –

कुसुमित कचनार, अगस्त्य तथा सहिजन, अशोक के, हे प्रियतम!
गुच्छों-से ये सुन्दर उरोज भूषित थल-पद्मा के, प्रियतम!
धरणी के वक्षःस्थल पर था वट पारिजात लिखता, प्रियतम!
कुछ चित्र विचित्र मनोहर, विधुथा देख मुग्ध जिसको, प्रियतम ॥१२३॥

यत्र वृक्षाणां निसर्गतः एव वल्लीदासत्वाचरणम् ॥१२४॥

आम्रनिकुञ्जावलिः ॥१२५॥

बीजपूरकुञ्जपंक्तिः ॥१२६॥

कदली वनम् ॥१२७॥

दाड़िमनिकुञ्जावलिः ॥१२८॥

कन्दुक क्रीड़ास्थली ॥१२९॥

मणिमयविश्रामगृहं ॥१३०॥

चित्रा कुञ्जका वर्णन –

लजवन्ती करती थी छिपकर अभिसार तरणि रहते, प्रियतम!
मधुपावलि का उड़ना लखकर थी भ्रमित हुई उससे, प्रियतम!
हैं, एक नहीं, शतलक्ष बने मेरे प्राणाधिक ने, प्रियतम!
मूँदी उसने जब आँख, लगा, वे छोड़ गये मुझको, प्रियतम ॥१३१॥

शतपत्र वनम् ॥१३२॥

तुलसीकाननम् ॥१३३॥

दूर्वाक्षेत्रम् ॥१३४॥

पूगपङ्क्तिः ॥१३५॥

तालावलिः ॥१३६॥

खर्जूरश्रेणी: ॥१३७॥

कर्णिकारवनम् ॥१३८॥

इन्दुलेखा कुञ्ज का वर्णन-

उन कुन्द वदनि के गालों पर थे कण न ओस के वे, प्रियतम!
मैं अङ्ग सजाकर यह अपना ठगती हूँ अपने को, प्रियतम!
वे आयेंगे, है सपना ही, यह टूटेगा क्षण में, प्रियतम!
'है प्रेम दम्भ मेरा,' वह थी इस चिन्ता से रोती, प्रियतम॥१३९॥

आम्रातकावलि: ॥१४०॥

तिन्तड़ीवनम् ॥१४१॥

करौंदाइत्याख्या द्रुमा: ॥१४२॥

दमनकवनम् ॥१४३॥

वैजयन्तीकाननम् ॥१४४॥

शिंशपाश्रेणी: ॥१४५॥

उत्पलवनम् ॥१४६॥

चम्पकलता कुञ्ज का वर्णन-

चम्पा पीले फूलों की थी साड़ी पहने गाती, प्रियतम!
वह राग, सुना था नहीं वहाँ जो कभी किसी ने भी, प्रियतम!
मोहिनी शक्ति उसमें अवश्य कुछ भरी अनोखी थी, प्रियतम!
प्रणयी मिलिन्द था एक हुआ मिटकर विधान विधि का, प्रियतम॥१४७॥

मधुकपङ्क्ति: ॥१४८॥

गन्धराजवनम् ॥१४९॥

किंशुकश्रेणी ॥१५०॥

इङ्गुदनिकुञ्जावलिः ॥१५१॥

पाटलजम्बुद्रुमाः ॥१५२॥

मन्दारावलिः ॥१५३॥

बर्बरीवनम् ॥१५४॥

रङ्गदेवीकुञ्जका वर्णन -

थी रंग-बिरंगे वर्णों में मल्लिका खिली ऐसी, प्रियतम !
जो लुप्त बुद्धि कर देती थी नभ में उड़ते मुनि की, प्रियतम !
उनकी तो बात दूर, मोहित पालक बन था उनका, प्रियतम !
ऐसा कि आज तक हाल नहीं कोई बतला पाया, प्रियतम ॥१५५॥

शमीसमूहः ॥१५६॥

आमलकद्रुमाः ॥१५७॥

अर्कवनम् ॥१५८॥

नीपपङ्क्तिः ॥१५९॥

शिरीषश्रेणीः ॥१६०॥

कपित्थकुञ्जावलिः ॥१६१॥

जम्बीरवनम् ॥१६२॥

तुङ्गविद्या कुञ्ज का वर्णन–

मालती-लता सखों पर थी फूली इठलाती-सी, प्रियतम!
सुनकर समीर की साँय-साँय उत्कण्ठित थी होती, प्रियतम!
वे ही होंगे, प्यारा जब पर था नहीं दीखता, हे प्रियतम!
वह बात भूमकर यूथी से करती रह-रह कर थी, प्रियतम ॥१६३॥

अश्वत्थश्रेणी: ॥१६४॥

प्लक्षवनम् ॥१६५॥

तगरइत्यारव्यकुमा: ॥१६६॥

सालावलि: ॥१६७॥

देवदारुवनम् ॥१६८॥

भूर्जवनम् ॥१६९॥

जालकावलि: ॥१७०॥

सुदेवी कुञ्ज का वर्णन–

थी जपा खड़ी अवनत-मुख हो, आँखों में थी लाली, प्रियतम
था पास खड़ा नीला तमाल दीनता-व्यथा कहता, प्रियतम!
पुरवैया से परिचालित हो, वह पुनः-पुनः झुकता, प्रियतम!
जाती थी पश्चिम में पर, वह संध्या होते रोती, प्रियतम ॥१७१॥

उदुम्बरपङ्क्ति: ॥१७२॥

बदरीवनम् ॥१७३॥

वानीरनिकुञ्जावलि: ॥१७४॥

वेणुवनम् ॥१७५॥

अर्जुनसम्भूतः ॥१७६॥

यत्र अशेषोद्भिज्जजातीयप्राणिनां सन्निवेशः ॥१७७॥

यथावसरं यथास्थानं आविर्भावः तिरोभावश्च ॥१७८॥

राधाकुण्ड का वर्णन–

लहरें सर में धारा सी थीं क्रमशः उठती-गिरती, प्रियतम!
चञ्चल मराल होकर उन से भामिनी मराली से, प्रियतम!
कहता 'प्यारी! देखो, ये हैं दे रही पाद्य तुमको,' प्रियतम!
'फिर अर्घ्य-आचमन भी, पूजा स्वीकार करो इनकी,' प्रियतम ॥१७९॥

'अपने प्राणों के रस से ये तुमको नहलाती हैं;' प्रियतम!
'अपने प्राणों की सत्ता का परिधान धराती हैं;' प्रियतम!
'चारों कूलों के द्रुम से जो हैं गुच्छ सुमन आते;' प्रियतम!
'इनमें उनका ही आभूषण तुमको पहनाती हैं,' प्रियतम ॥१८०॥

'उर पर बिखरे पराग की हैं अर्पित सुगन्ध करती;' प्रियतम!
'उर पर विकसित सरोज लेकर ये फूल चढ़ाती हैं,' प्रियतम!
'अतिशय उमङ्ग की किरणों से आकर्षित हो, इनका;' प्रियतम!
'उर भाफ-सदृश उड़कर जो है बनता है धूप वही,' प्रियतम ॥१८१॥

'इनके भीतर दिन में जो है दिनकर की परछाँही;' प्रियतम!
'रजनी में तारक-शशधर की, वे ही हैं दीप भला;' प्रियतम!
'हृत्पद्मकर्णिका के भीतर उज्ज्वलरस-वर्ण लिये,' प्रियतम!
'जो वस्तु सुसञ्चित है, उससे नैवेद्य निवेदन है' प्रियतम ॥१८२॥

'उज्ज्वल जल लेकर पुनः अहो! आचमन कराती हैं,' प्रियतम!
'उन अरुण उत्पलों के दल से रचती तमोल ये हैं,' प्रियतम!
'उज्ज्वल रस नित्य उरस्थल का है तर्पणीय उनका,' प्रियतम!
'जो रागभरा स्वर है उरका, मधुरस्तव है इनका,' प्रियतम॥१८३॥

'अपने स्वरूप में नित्य अहो! ये सभी दिशाओं में,' प्रियतम!
'जो घूम रही हैं, इनका शत वह है प्रणाम ही तो,' प्रियतम!
'इनके रहस्यमय अर्चन के उपचार मनोहर हैं,' प्रियतम!
यों था प्रतिदिन वरदानायक मनुहार-गीत गाता, प्रियतम॥१८४॥

सुनकर यह गीत भामिनी थी उसकी विमुग्ध होती, प्रियतम!
देकर अपनी नीरव सम्मति नायक पर झुक पड़ती, प्रियतम!
दोनों ही कण्ठ मिलाकर थे लहरों में धँस पड़ते, प्रियतम!
आनन्दमत्त होकर लहरें कूलों से टकराती, प्रियतम॥१८५॥

भीतर-ही-भीतर उनके थे दोनों चलते रहते, प्रियतम!
ले टोह, नीर-विहगी-दल था ऊपर-ऊपर चलता, प्रियतम!
वह दाँव-पेंच दोनों दल में सुन्दर जो चल पड़ता, प्रियतम!
उसके चित्रण की तूली वह जा पड़ी नीलसर में, प्रियतम॥१८६॥

कृष्णकुण्ड का वर्णन -
था श्यामनीर से भरा एक गम्भीर सरोवर, हे प्रियतम!
पा सका न कोई थाह, थके करके प्रयास योगी, प्रियतम!
जो श्वास रोक सकते थे युग-युग तक बूड़े उसमें, प्रियतम!
वे भी हारे, निकले उदास, इतना अगाध जल था, प्रियतम॥१८७॥

वह पुञ्ज समग्र ईशता का जो, धर्म और यश का, प्रियतम!
श्री-ज्ञान-विराग-सत्य का है उसके कण-कण में था, प्रियतम!
उसके जल से वल्लरियाँ थीं वन की सींची जाती, प्रियतम!
लगते थे फूल और उनमें निरुपम सौरभ वाले, प्रियतम॥१८८॥

उसका जल छूते ही तनका सब रंग बदल जाता, प्रियतम!
पीनेवाली कण एक इतर सब राग भूल जाती, प्रियतम!
उसको निहारते ही आँखें होती थीं श्याममयी, प्रियतम!
जो भी फिर कहीं कभी दीखे, नीला-नीला लगता, प्रियतम॥१८९॥

जिसके कानों में भी उसकी चर्चा थी पड़ जाती, प्रियतम!
उसको उसके अतिरिक्त बात कोई न सुहाती थी, प्रियतम!
लेकर समीर सौरभ उसका जाता था जहाँ-जहाँ, प्रियतम!
सब जीव वहाँ के उसपर थे न्योछावर हो जाते, प्रियतम॥१९०॥

निर्माण पीतमणि से उसके चारों कूलों का था, प्रियतम!
प्रतिदिन जल बढ़ धारा बनकर था चार बार बहता, प्रियतम!
पहले उत्तर की ओर वेग उसका ऐसा होता, प्रियतम!
मानो श्रीफल की कुञ्जों को खण्डित कर छोड़ेगा प्रियतम॥१९१॥

पूरब में, अग्निकोण में फिर चलता प्रवाह जब था, प्रियतम!
होती उसकी गति यों, जैसे जाता हो सुख देने, प्रियतम!
कोई आयी हो दिन में ही करके अभिसार, उसे, प्रियतम!
या उधर बिलखती हो कोई प्रोषितपतिका, उसको प्रियतम॥१९२॥

दक्षिण में जब चलता, लगता, कोई मधुप-मधु पी, प्रियतम!
अपने तन का सब भान भुला, चल रहा भटकता हो, प्रियतम!
टकराकर उन-उन तरुओं से किञ्चित् रुक-सा जाता, प्रियतम!
अन्तरचेतनावृत्ति फिर भी पथ थी दिखला देती, प्रियतम॥१९३॥

पश्चिम में बढ़ते ही होता अतिशय बेहाल, भला, प्रियतम!
पीले मणियों की किरणें थीं उसको समझाती-सी, प्रियतम!
'मैं तो उरमें ही हूँ,' धीरज आता न किंतु तब भी, प्रियतम!
यों घूम-घूम वन में भरता पल-पल नव-नव सुषमा, प्रियतम॥१९४॥

सूर्यकुण्ड का वर्णन –

ये मूर्त हुए अन्यत्र वहाँ वे पुनः किरणमाली, प्रियतम !
हीरकमय विग्रह बनकर वे पूजित अरण्य जन से, प्रियतम !
मन्दिर के आगे कुण्ड एक था भरा हुआ जल से, प्रियतम !
विकसित-सरोज से बना रम्य रहता सब ऋतुओं में, प्रियतम ॥१९५॥

ऐसे कुछ कौशल से रचना मन्दिर की थी, जिससे, प्रियतम !
होतीं उपलब्ध सदा ऋतुएँ सब उसके कक्षों में, प्रियतम !
एवं कोई भी क्यों न, भला, कितना ही सजग रहे, प्रियतम !
आते ही कोई मोड़, उसे दिग्भ्रम हो ही जाता, प्रियतम ॥१९६॥

रवि-विग्रह की विशेषता यह सबको लक्षित होती, प्रियतम !
प्रतिदिन जबतक दिनकर नभ में ऊपर उठते रहते, प्रियतम !
तबतक पुखराजराशि उसके नख से झरती रहती, प्रियतम !
ज्यों ढले उधर वे, रत्न इधर पानी बनने लगते, प्रियतम ॥१९७॥

आराधन के भी समय तथा यह चमत्कार होता, प्रियतम !
अर्चक के प्राण-देह-मन थे तेजोमय बन जाते, प्रियतम !
सत्ता उतने क्षण बच रहती उस तुर्य नित्य रस की, प्रियतम !
पूजा जिसने-जिसने की थी, सबका अनुभव यह था, प्रियतम ॥१९८॥

जावटग्रामका वर्णन –

छोटा-सा ग्राम एक अद्भुत कासार-तीर पर था, प्रियतम !
थे रत्नजटित सब गृह उसमें बसनेवालों के, हे प्रियतम !
देवी के कृपापात्र वे थे, निर्भय थे सभी सदा, प्रियतम !
राजा-सा जीवन था उनका, पर शीलवान वे थे, प्रियतम ॥१९९॥

जो सिद्धि पवित्र तन्त्र एवं मन्त्रों से मिलती है, प्रियतम !
भूषित उससे प्रायः तरुणी थीं सभी गाँववाली, प्रियतम !
जीवनभर का यह किन्तु अहो ! उनके व्रत निश्चल था, प्रियतम !
मैं कभी स्वसुख के लिये नहीं उपयोग करूँ इसका, प्रियतम ॥२००॥

ऐसी थी प्रीति परस्पर जो, वे एक दूसरी के, प्रियतम!
सुख के निमित्त मर मिटने को प्रस्तुत हरदम रहतीं, प्रियतम!
सबके ही प्राण सभी में, सच, रहते थे स्यूत हुए, प्रियतम!
अन्यत्र न था वह सखीपना, है नहीं, न होगा ही! प्रियतम॥२०१॥

कानन की उन कुञ्जों में वे दिन में घूमा करतीं, प्रियतम!
नीली-सरिता-तट पर उनका रजनी-बिहार होता, प्रियतम!
ऐसी माया थी देवी की, कोई न जान पाता, प्रियतम!
है गाँव-सरोवर किधर कहाँ, वे नाम धरे क्या हैं, प्रियतम॥२०२॥

द्वितीय शतक समाप्त





भानुनृपकी कुलदेवी आद्याशक्ति श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी

श्री किशोरीका पूर्वराग

मन्थरगति से चलती, हँसती आयी नृपकी पुरी, प्रियतम !
सोने की पुतली-सी सब थीं चेरे सहचरियाँ, हे प्रियतम !
किरणें बिखेर सुन्दरता की, सब ओर खड़ी वह थी, प्रियतम !
वन के समक्ष उत्तर मुख हो, भोली चितवनवाली, प्रियतम ॥२०३॥

थे गाल-भाल पर रहे व्यक्त हो श्रमकण मोती-से, प्रियतम !
शीतल बयार झुर-झुर करती थी व्यस्त पोंछने में, प्रियतम !
मखमल-सी कोमल दूब हरी लहराती थी हिलती, प्रियतम !
मनुहार धरा मानो करती, 'री! नेक बैठ जा तू;' प्रियतम ॥२०४॥

थी त्वरा नृपतिकन्या में पर, कैसे विश्राम करे, प्रियतम !
आकर्षित था करता वह वन कमनीय दूर से ही, प्रियतम !
तितली सी उड़ती जा पहुँची भीतर वह सीमा के, प्रियतम !
मेंहदी की झाड़ी के पथ से उन सबको साथ लिये, प्रियतम ॥२०५॥

शुभ शकुन बताते खञ्जन को पहले उसने देखा, प्रियतम !
जो सबसे अधिक सयानी थी सखियों में, वह बोली, प्रियतम !
'अप्रतिम यहाँ कोई मङ्गल निश्चय होगा, सखि री;' प्रियतम !
मन में नृपकन्या के इससे उत्कण्ठा और बढ़ी, प्रियतम ॥२०६॥

इतने में उड़ आया कपोत अभिनन्दन करने, हे प्रियतम !
वह कण्ठ फुलाकर लगा नृत्य अपना दिखलाने, हे प्रियतम !
'पीहू' करके आया मयूर, उसने तानी छतरी, प्रियतम !
सुन्दर अत्यन्त एक शुक था, प्रणिपात किया उसने, प्रियतम ॥२०७॥

आया वह नीलकण्ठ, अपनी ग्रीवा नीची करके, प्रियतम !
मुख नृपदुहिता की ओर किये चल पड़ा गुड़क करके, प्रियतम !
आयी बट-तीतर की टोली, रचना कर मण्डल की, प्रियतम !
आगत उन सभी अतिथियों की करती प्रदक्षिणा थी, प्रियतम ॥२०८॥

वे रंग-बिरंगे कितने थे क्रमशः विहङ्ग आये, प्रियतम!
उनकी गणना करके कैसे, क्या बतलाऊँ तुमको, प्रियतम!
नानापन अहो! प्रकृति में जो है नित्य सृष्ट होता, प्रियतम!
मानो वह सभी विहग बनकर आया स्वागत करने, प्रियतम ॥२०९॥

हँस-हँसकर नृपतिनन्दिनी थी उनको निहार लेती, प्रियतम!
कहती सहेलियों से फिर थी, 'री! क्या दूँ मैं इनको', प्रियतम!
'जो प्यार लिये ये आये हैं, वह इनकी ही निधि है', प्रियतम!
'मेरा भी रोम-रोम इनपर है न्योछावर अब तो', प्रियतम ॥२१०॥

'भाषा मैं नहीं जानती हूँ इनकी, क्या बात करूँ', प्रियतम!
'कोई तुममें से भले मुझे बतलाओ तनिक कला,' प्रियतम!
इतना कहते ही कीर वहीं उड़कर सन्मुख आया, प्रियतम!
सुस्पष्ट मानवी-सी सुमधुर बोली में बोल उठा, प्रियतम ॥२११॥

'तुम कहो, राजनन्दिनि! जो भी चाहो कहना हमसे,' प्रियतम!
'हम तो निहाल सब होंगे ही, भर सुधा श्रवणपुट में,' प्रियतम!
'अविछिन्न काल से सुखमय यह वनवास हमारा है,' प्रियतम!
'कानों में भरा अमिय-रस यह सागर बन उमड़ेगा,' प्रियतम ॥२१२॥

विस्मय से कुछ पल नृपपुत्री अपलक चुपचाप रही, प्रियतम!
देखा फिर बड़ी सहेली को, अद्भुत उस तोते को, प्रियतम!
कुछ सोच सखी बोली, 'शुक है प्रतिपालित कहीं हुआ,' प्रियतम!
'अनुकरणशील यह जाति सदा खग की होती ही है,' प्रियतम ॥२१३॥

उत्तर से नृपति-तनूजा को सन्तोष न किंतु हुआ, प्रियतम!
बोली, 'री! फिर इसने कैसे मेरा परिचय जाना?' प्रियतम!
'तू पता लगा किसके घर यह है पला और इसकी,' प्रियतम!
'प्रतिभा स्वभावगत है या यह है रटी हुई विद्या,' प्रियतम ॥२१४॥

सहचरी सोचती रही, कीर फिरसे वह बोल उठा, प्रियतम !
अवनी को अरुण चञ्चु से छू, दृग चुमा-घुमा रससे, प्रियतम !
'हे राजकुमारी! नित्य दास-दासी हैं हम उनके ; प्रियतम !
'कालिमा-गौरपन निरुपम है निरवधि तनमें जिनके ; प्रियतम ॥२१५॥

'जब जितना हमें पढ़ाते हैं वे, तब उतना-सा ही ; प्रियतम !
'होता है ज्ञान उदय, हम तो हैं यन्त्र सभी उनके ; प्रियतम !
'यह देवि! पाँवड़ा बिछा हुआ दृग का है स्वागत में ; प्रियतम !
'हैं भाग बड़े हम सबके, जो तुम यहाँ पधारी हो ।' प्रियतम ॥२१६॥

अब रही न विस्मय की सीमा राजा की बेटी के, प्रियतम !
शुक को निहारकर पुनः-पुनः उत्तर की ओर बढ़ी, प्रियतम !
प्राकृतिक एक-से-एक बड़ा रमणीय दृश्य आता, प्रियतम !
आँखें उसकी टिक जाती थीं, रह-रहकर वह रुकती, प्रियतम ॥२१७॥

बाहर-बाहर से इस वन की जिनने दी थी फेरी, प्रियतम !
उनका वर्णन सुन्दरता का इसकी, शतगुणित हुआ, प्रियतम !
उस राजकुमारी के मनमें अब था पछतावा-सा, प्रियतम !
खेली मैं और-और वनमें, क्यों यहाँ नहीं आयी, प्रियतम ॥२१८॥

सुकुमारी अब वह थकी हुई दीखी सहचरियों को, प्रियतम !
चलती-चलती अविराम फँसी बातों में, शोभा में, प्रियतम !
कर सकीं उसे यद्यपि सखियाँ सम्मत कठिनाई से, प्रियतम !
आकर पर वह फिर बैठ गयी वट-तरु की छाया में, प्रियतम ॥२१९॥

था शुक भी साथ-साथ आया, डाली पर जा बैठा, प्रियतम !
बतलाने लगा रहस्यभरा वह मानचित्र वन का, प्रियतम !
क्या-क्या वस्तुएँ अवश्य यहाँ हैं दर्शनीय इसका, प्रियतम !
नृपपुत्री के समक्ष वर्णन आकर्षक कर बैठा, प्रियतम ॥२२०॥

सुन रही ध्यान देकर, वह थी प्रत्येक बात शुक की, प्रियतम!
सुनते-सुनते तोते के प्रति बढ़ गयी प्रीति उसकी, प्रियतम!
बोली, 'रे कीर! बैठ जा तू आकर समीप मेरे,' प्रियतम!
दोनों हाथों से छू-छूकर मैं प्यार करूँ तुझको, प्रियतम॥२२१॥

पड़ते न पलक पड़ते तोता बड़भागी उड़ आया, प्रियतम!
कर-पल्लव पर आसीन हुआ उस नृपतिनन्दिनी के, प्रियतम!
प्राणों के रस से वह उसको अभिषिक्त लगी करने, प्रियतम!
आँखें पल-पल शुक की मुँदतीं, मानो समाधि लगती, प्रियतम॥२२२॥

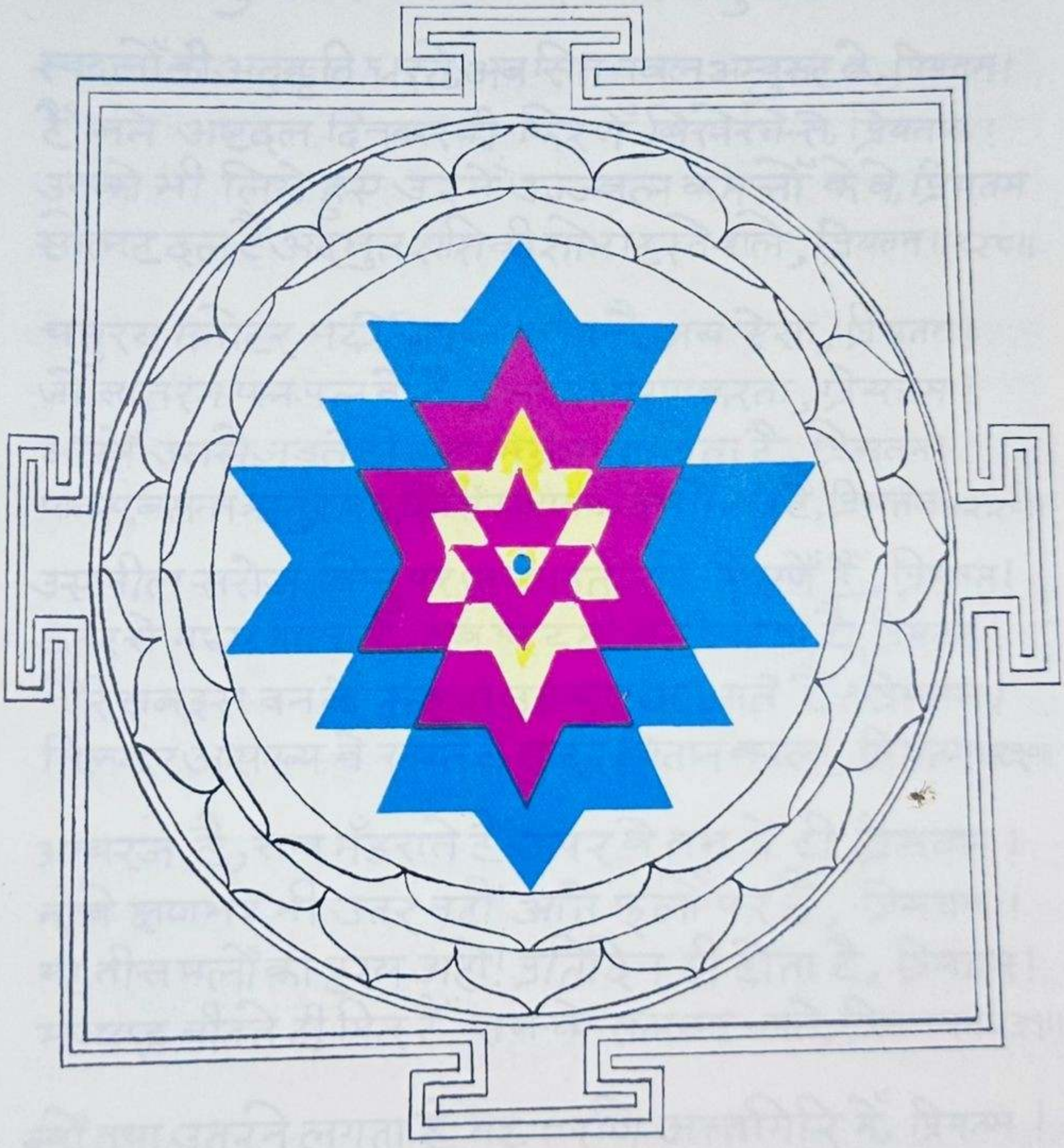
अनुजा सहोदरा दौड़ी, तरु था एक पास में ही, प्रियतम!
टप-टपकर चूते थे मीठे फल पके हुए उससे, प्रियतम!
अञ्जलि में भरकर ले आयी फल चार-पाँच पल में, प्रियतम!
दे दिया बहिन को, बहिन लगी रखने शुक के मुख में, प्रियतम॥२२३॥

इतना आदर पाकर बोला वह कीर नम्रता से, प्रियतम!
'हे देवि! चलो पथ दिखलाऊँ मैं इस वन का तुमको,' प्रियतम!
'कोने-कोने से परिचित हूँ, इसमें ही रमा हुआ,' प्रियतम!
'स्वीकार करो अतिशय नगण्य सेवा तुम यह मेरी,' प्रियतम॥२२४॥

'पहले, महीपनन्दिनि! चलकर इस वायुकोण-पथ से,' प्रियतम!
'देखो उस दिव्य-सरोवर को, अनुपम सुमिष्ट जल है,' प्रियतम!
'प्रत्यक्ष महामाया की है कुछ शक्ति भरी जल में,' प्रियतम!
'पीते ही आँख बदलकर हैं दर्शन विचित्र होते,' प्रियतम॥२२५॥

'फूले सरोज का चित्र नित्य है एक लिखा उसमें,' प्रियतम!
'है मध्यदेश में बिन्दु एक नीले अरविन्दों का,' प्रियतम!
'उसको पिङ्गल नीरज-निर्मित घेरे त्रिकोण फिर है,' प्रियतम!
'है अरुण कञ्ज का अष्टकोण डाले उस पर घेरा,' प्रियतम॥२२६॥

दिव्य सरोवरकी झाँकी



रसात्मक श्रीयंत्र (छन्द २२६-२२९)

पीतारुण अरविन्दों के हैं वो फिर दशकोण बने, प्रियतम!
क्रमशः आकृति में बड़े, सतत नव-नव शोभावाले, प्रियतम!
उनको घेरे है एक बड़ा श्यामल सरोरुहों का, प्रियतम!
नव नित्य चतुर्दशकोण अहो! सौरभ से भरा हुआ, प्रियतम॥२२७॥

स्वदलों की अनुकृति धरते, अब सित नवल अम्बुरुह के, प्रियतम!
हैं बने अष्टदल दिनकर की किरणें बिखेरते-से, प्रियतम!
उनको भी लिये हुए उर में उज्ज्वल कमलों के वे, प्रियतम
सोलह दल हैं अद्भुत शशि की शोभा हरनेवाले, प्रियतम॥२२८॥

चतुरस्र मनोहर पद्मों का विरचित है अब ऐसा, प्रियतम!
जो सात रंग पल-पल में है क्रमशः धारण करता, प्रियतम!
आँखें उससे जुड़ते ही यह विभ्रम-सा होता है, प्रियतम!
पावस, वसन्त ऋतु, शरद, शिशिर, आतप, हिम में क्या है, प्रियतम॥२२९॥

उस नील सरोज-बिन्दु पर जब पड़ती रवि-किरणें हैं, प्रियतम!
ऊपर से मध्य गगन से, तब घटती यह घटना है, प्रियतम!
भौंरे सब इस वन के तत्क्षण उड़कर आ जाते हैं, प्रियतम!
मिलकर असंख्य वे रचते हैं सुन्दर वितान काला, प्रियतम॥२३०॥

अचरज है, सब मँडराते हैं ऊपर वे नभ में ही, प्रियतम!
नीचे क्षणभर भी उतर नहीं आते फूलों पर हैं, प्रियतम!
यह तीस पलों का दृश्य अहो! प्रतिदिन ही होता है, प्रियतम!
मध्याह्न बीतते ही फिर हैं सब-के-सब उड़ जाते, प्रियतम॥२३१॥

ज्यों तथा उतरने लगता है यह तरणि अस्तगिरि में, प्रियतम!
'गूँ-गूँ' करता दक्षिण पथ से है एक मधुप आता, प्रियतम!
कुछ पल उन नलिनों की फेरी देकर ढल पड़ता है, प्रियतम!
पीले जलरुह के उर पर फिर रहता प्रभात तक है, प्रियतम॥२३२॥

'हे राजतनूजे! कह कहकर कैसे समझाऊँ मैं'; प्रियतम!
'कितना है चमत्कारकारी, प्रत्यक्ष इसे कर लो।' प्रियतम!
'देखो द्रुम-अवली कूलों की हिलती यह दीख रही'; प्रियतम!
'दो-ढाई सौ पद चलते ही तटपर पद रख दोगी।' प्रियतम ॥२३३॥

तोता इतना कहकर, उड़कर उस ओर लगा चलने, प्रियतम!
सखियों को लिये तुरंत चली अवनीशनन्दिनी भी, प्रियतम!
मिल गया पाँच पल में सर का तट अग्निकोणवाला, प्रियतम!
बातें सर्वथा सत्य निकली, जो कही कीर ने थीं, प्रियतम ॥२३४॥

कम हो या अधिक, किंतु सबको लग गयी प्यास अब थी, प्रियतम!
था भरा स्वच्छ जलसे पूरा कासार सामने ही, प्रियतम!
छू रहा नीर था पहली ही सीढ़ी के आधे को, प्रियतम!
अञ्जलि में जल भरकर सब वे पीने लग गयीं भला, प्रियतम ॥२३५॥

दो घूँट कण्ठ के भीतर, बस, जाते ही उन सबके, प्रियतम!
हो गये प्राण शीतल, सुख में तन का कण-कण डूबा, प्रियतम!
आँखों में भरी और अभिनव रसमयी खुमारी-सी, प्रियतम!
निस्पन्दगात्र होकर सब वे ढल पड़ीं वहीं क्षण में, प्रियतम ॥२३६॥

अनुभव अब राजनन्दिनी को होने लग गया वहाँ, प्रियतम!
मानो हूँ खड़ी अकेली मैं अनुजा को साथ लिये, प्रियतम!
बातें आगे-पीछे की थीं विस्मृत हो गयी सभी, प्रियतम!
आनन्दहिलोरों में बहकर सर को निहारती थी, प्रियतम ॥२३७॥

बोली, 'री! बहिन! घूमकर अब पूरे सर को देखें'; प्रियतम!
पश्चिम की ओर चली तट को पकड़े धीरे-धीरे, प्रियतम!
पद बीस-तीस ही चलने पर मिल गयी एक रमणी, प्रियतम!
गोरी, सुन्दरी अनोखी थी, यौवन से वह माती, प्रियतम ॥२३८॥

यह कहा तथा उस रमणी ने उन नृपदुहिताओं से, प्रियतम !
तुम चलो, पधारो मेरे घर, शशिमुखि ! न विलम्ब करो, प्रियतम !
अतिकाल हो चुका है, पहले किञ्चित् भोजन कर लो, प्रियतम !
मैं ही हूँ नित्य सेविका इस वन की अधिदेवी की, प्रियतम ॥२३९॥

फँसकर मीठे आकर्षण में दासी की वाणी के, प्रियतम !
पहुँची वे उसके घर पर जो पश्चिम सर-तट पर था, प्रियतम !
सुन्दर विशाल था, पर उसमें रखते ही दोनों को, प्रियतम !
ऐसा प्रतिभात हुआ, मानो अपना ही वह घर हो, प्रियतम ॥२४०॥

छोटी चञ्चला पहुँचते ही लग गयी खेल करने, प्रियतम !
गृह के जो प्रतिपालित सुन्दर पक्षी थे, उन सब से, प्रियतम !
वह बड़ी राजनन्दिनी किंतु चुपचाप सोचती थी, प्रियतम !
'आयी तो मैं अवश्य ही हूँ पहले भी कभी यहाँ।' प्रियतम ॥२४१॥

कोई मानो कानों में यह कह उठा, 'सदा जय हो !' प्रियतम !
'कानन की अहो ! स्वामिनी की रसमयी मुग्धता की;' प्रियतम !
'अपना वासस्थल यह उनका सच्चिदानन्दमय है,' प्रियतम !
'वे भूल रही हैं पर इसको, अपने को, मुझको भी।' प्रियतम ॥२४२॥

यह भान उसे होते ही वह अकचक-सी हुई उठी, प्रियतम !
स्वर था परिचित, पर किसका है, इस समय न जान सकी, प्रियतम !
सन्मुख वह हंस हंसिनी से कह रहा झूमकर था, प्रियतम !
'प्रियतमे ! कथा मैं कहता हूँ, तुम सुनो एक मन से।' प्रियतम ॥२४३॥

'है वन अनादि, इसमें पुष्पित जो वे अशोकतरु हैं;' प्रियतम !
'उत्तर में उनसे ही निर्मित जो वह निकुञ्जस्थल है,' प्रियतम !
'उसमें ही नित्य सनातन अज वे दम्पति रहते हैं;' प्रियतम !
'अतिशय ऊँचे हों भाग, तभी कोई ले देख भले।' प्रियतम ॥२४४॥

वल्लभे! कहूँ कैसे घटना कबकी वह थी या है, प्रियतम!
जब काल नहीं इस वन में है, शासन करनेवाला, प्रियतम!
है अहो! त्रिकाल सत्य, फिर है सच परे कालसे भी, प्रियतम!
इतना-सा ही सङ्केत गिरा उसका कर सकती है! प्रियतम॥२४५॥

वैसे ही तुम 'निकुञ्ज है वह,' ये शब्द भले सुन लो, प्रियतम!
पर 'देश' नाम से कथित नहीं कोई है वस्तु वहाँ, प्रियतम!
'है कहाँ, अहो!' फिर इसका है उत्तर इतना बनता, प्रियतम!
'वह अपनी ही महिमा में है परिनिष्ठित नित्य, भला!' प्रियतम॥२४६॥

अच्छा तो, प्राणाधिके! सुनो, दम्पति के जीवन में, प्रियतम!
कैसी थी प्रीति परस्पर की लहरें लेती रहती, प्रियतम!
दोनों ही एक दूसरे को रहते निहारते ही, प्रियतम!
फिर भी अतृप्ति रहती, मानो दर्शन का सुख न मिला, प्रियतम॥२४७॥

दोनों के प्राण एक होकर ऐसी गति धर लेते, प्रियतम!
होने लगती प्रतीति उनको, मानो मैं हूँ न अहो!, प्रियतम!
स्वीकार काल का वे करते कहने के लिये तभी, प्रियतम!
वह था उनका स्वरूप ही, फिर आरम्भ खेल होता, प्रियतम॥२४८॥

उनकी पलकें खुलतीं, सुस्मित अधरों पर भर आता, प्रियतम!
सुस्थिर वे नयन-पुतरियाँ भी चञ्चल कुछ हो जातीं, प्रियतम!
गलबाँही दिये हुए ही वे धीरे-धीरे उठते, प्रियतम!
चलते धीरे, सुख से धरणी जड़िमा धारण करती, प्रियतम॥२४९॥

आगे प्रवाह बढ़ता क्रमशः उन दोनों के रस का, प्रियतम!
वे अहो! कहाँ-से-कहाँ जुड़े उसमें बहते रहते, प्रियतम!
पीछे आने का प्रश्न नहीं उस धारा में बनता, प्रियतम!
वे सृजन और संहारजनित परिणाम न उसमें हैं, प्रियतम॥२५०॥

जो हो, वह घटना है तब की, दोनों जब उत्सुक थे, प्रियतम!
शृङ्गार धराने की इच्छा ले गौर-नील तन में, प्रियतम!
दोनों में होड़ लगी थी यह, है कला किसे कहते, प्रियतम!
दिखलायें आज परस्पर की पहली इस रचना में, प्रियतम॥२५१॥

प्यारी को देख-देखकर ही प्यारे रचना करते, प्रियतम!
प्यारे को देख-देखकर ही प्यारी रचना करती, प्रियतम!
अपने ही आप अँगुलियों में उनकी वे आ जाते, प्रियतम!
उपकरण सभी, आवश्यक, जो जितने जब थे होते, प्रियतम॥२५२॥

प्राणों की अभिलाषा ही वह माला बनकर आती, प्रियतम!
प्राणों का ही उल्लास सुमन सुरभित होकर आता, प्रियतम!
प्राणों का स्नेह विमल नीला-पीला फुलेल बनता, प्रियतम!
प्राणों का ही अनुराग तरल शीतल विलेप होता, प्रियतम॥२५३॥

प्राणों की वृत्ति सदा नव सुख देने-ही-देने की, प्रियतम!
प्राणों की आशा नित्य नये रस में सन जाने की, प्रियतम!
प्राणों की वह अभिसंधि मिले रहने की आपस में, प्रियतम!
प्राणों से भर ये सब बनतीं तूली छवि लिखने की, प्रियतम॥२५४॥

प्राणों की ममता ही काली-कबरी डोरी बनती, प्रियतम!
प्राणों का मोह परस्पर वह काजल बन जाता था, प्रियतम!
प्राणों का अद्वयपन मद-चू भ्रूमध्य बिन्दु बनता, प्रियतम!
प्राणों का प्रणय-रोष होता वह भाल महावर था, प्रियतम॥२५५॥

प्राणों में बढ़ी प्रीति टेढ़ी चलकर कँगही बनती, प्रियतम!
प्राणों की रति परिणत होती उज्ज्वलतम दर्पण में, प्रियतम!
प्राणों में बढ़ी हुई पल-पल आसक्ति पान होती, प्रियतम!
प्राणों की ही रुचि बन जाती अम्बर नीला-पीला, प्रियतम॥२५६॥

प्राणों का सञ्चालन बनता आवरण पयोधर का, प्रियतम !
प्राणों के स्वर वे सात बंद चोली के हो जाते, प्रियतम !
प्राणों का ही विश्वास अचल, वह पुष्पसार बनता, प्रियतम !
प्राणों की सुन्दरता होती लीला-नीरज कर का, प्रियतम ॥२५७॥

यों स्वतः हुई प्रस्तुत चिन्मय सामग्री लेकर वे, प्रियतम !
तल्लीन हुए निरुपम रचना करने लग गये वहाँ, प्रियतम !
भावों से कर हिल-हिलकर था कुछ-का-कुछ बन जाता, प्रियतम !
दो-तीन बार में ही पूरा श्रृङ्गार एक होता, प्रियतम ॥२५८॥

हो गयी वेश-रचना, तब वे कहने इस भाँति लगे, प्रियतम !
किसने बाजी जीती, बोलो, पहले तुम, तुम पहले, प्रियतम !
कोई सम्मत न हुआ, निर्णय जो पहले बतलाये, प्रियतम !
बस, झूल-झूलकर हँसते वे, गलबाँही दिये हुए, प्रियतम ॥२५९॥

आखिर बोली प्यारी, प्यारे! तुम अहो! विजेता हो। प्रियतम !
बोला प्यारा, सच है प्यारी! श्री-कर में ही जय है। प्रियतम !
दोनों ही दुहराते जाते अपनी ही उक्ति, भला, प्रियतम !
मुखरित निकुञ्ज वन का कण-कण होता उस मधुरव से, प्रियतम ॥२६०॥

क्या सत्य कभी है दो होता? है नित्य एक वह तो, प्रियतम !
प्यारी विचार कर तुम देखो, है उक्ति सही मेरी, प्रियतम !
हे प्यारे! है स्वीकार मुझे यह, सत्य एक ही है। प्रियतम !
सोचो तुम बार-बार अब भी, मेरा कहना सच है। प्रियतम ॥२६१॥

ऐसी बतकही रसीली शुचि उनमें पल साठ चली, प्रियतम !
यह कहा अन्त में प्यारी ने, प्यारे! देखो अब तो, प्रियतम !
अपने-ही-आप सजाऊँगी मैं अपने इस तन को, प्रियतम !
तुम किंतु घड़ी आधी अपने लोचन मूँदे रहना। प्रियतम ॥२६२॥

प्यारे ने हँस-हँसकर ऐसा करना स्वीकार किया, प्रियतम!
शर्तें दो रखी, किंतु उसने कुछ बात सोच करके, प्रियतम!
छूता मैं रहूँ निरन्तर ये दस नख पीले पद के, प्रियतम!
फिर मैं भी अङ्ग सँवारूँ, तब मीलित-दृग तुम रहना। प्रियतम॥२६३॥

प्यारी ने मुसका-मुसकाकर हामी भर ली इसकी, प्रियतम!
कौतुक नवीन आरम्भ हुआ अब वह निमेष में ही, प्रियतम!
मुट्ठी में पद-नख-मणि धारण करके प्यारे बैठे, प्रियतम!
प्यारी विचित्र अपने तन की रचना करने बैठी, प्रियतम॥२६४॥

बोली मन में, प्यारे को मैं अबतक सुख दे न सकी, प्रियतम!
ये सदा पूछते रहते हैं बातें अनेक मुझसे, प्रियतम!
लज्जा में भरी किंतु मैं तो कुछ बोल नहीं पाती, प्रियतम!
अतएव रूप अपना निरवधि मैं एक और कर लूँ। प्रियतम॥२६५॥

कर्पूर-गौर वह रूप बने करुणा से नित्य भरा, प्रियतम!
अलकें उसकी कमनीय अहो! बन जाँय जटा नीली, प्रियतम!
आवरण-हीन वह नित्य रहे, भूषित फिर नित्य रहे, प्रियतम!
प्यारे के पद-सरोरुहों की रज की परछाँही से। प्रियतम॥२६६॥

देवी के बदले प्यारे को वह महादेव दीखे, प्रियतम!
प्यारे की प्रियता भी उसमें पल-पल परिवर्धित हो, प्रियतम!
मैं युगपत् अपने इस तन को, उस महादेव-तन को, प्रियतम!
देखूँ, मेरी मुग्धता किंतु यह भी अक्षुण्ण रहे। प्रियतम॥२६७॥

इसके पश्चात् अहो! जब भी जो भी ये प्रश्न करें, प्रियतम!
तत्क्षण ही समाधान उसका सुन्दर कर पाऊँ मैं, प्रियतम!
प्यारे को सुख ही दूँ, मेरा जीवन है इसीलिये, प्रियतम!
है सच्च यह, तो प्यारे देखें वह रूप आँख खुलते, प्रियतम॥२६८॥

प्यारे के लोचन उन्मीलित हो गये विपल में ही, प्रियतम !
प्यारी का अद्भुत रूप निरख कर के वह मुसकाया, प्रियतम !
जय-जय हे! महादेव! जय! फिर कहकर नतमस्तक हो, प्रियतम !
वह भी अब चला वेश-रचना करने नूतन अपनी, प्रियतम॥२६९॥

प्यारी के चिन्तन में ही थी प्यारे की वृत्ति लगी, प्रियतम !
ऐसी अखण्ड तन्मयता थी पल तीस बनी उसकी, प्रियतम !
जो प्रायः उसको परिणत थी प्यारी में कर बैठी, प्रियतम !
अतएव ढक गया साँवरपन पहले गोरेपन से, प्रियतम॥२७०॥

हो गये व्यक्त फिर उसमें वे तरुणी के चिह्न सभी, प्रियतम !
वह बना रमण से अब रमणी सुन्दरी अतुल गोरी, प्रियतम !
सम्मिश्रित भावों का बोझा इतना गुरु-गुरुतर था, प्रियतम !
जिससे दब कर हग ने धर ली अचपल गँभीर मुद्रा, प्रियतम॥२७१॥

प्यारे में प्यारेपन की कुछ अब भी थी गन्ध बची, प्रियतम !
इसलिये सोचता था यों वह रमणी-तन में बैठा, प्रियतम !
प्यारी के सभी मनोरथ हों पूरे अनुराग भरे, प्रियतम !
इन महादेव की मैं भी अब हूँ नित्य महादेवी, प्रियतम॥२७२॥

चारों में ही स्वरूपतः है यद्यपि न भेद कोई, प्रियतम !
चारों ये रूप सर्वथा हैं सच्चिदानन्दमय ही, प्रियतम !
लीलाप्रिय अहो! किंतु निरवधि हम चार हुए खेलें, प्रियतम !
युगपत् मुग्धता, नित्य संविद् मुझ में भी व्यक्त रहे। प्रियतम॥२७३॥

उन महादेव के इतने में लोचन खुल गये, तथा, प्रियतम !
शोभा निहार कर मुग्ध हुए वे उन नवदेवी की, प्रियतम !
वे पार्श्ववर्तिनी क्षण में ही चिर-परिचित हो बैठीं, प्रियतम !
उमड़ा रस-सिन्धु, देव डूबे देवी को साथ लिये, प्रियतम॥२७४॥

पतली तरङ्ग से ही प्लावित उत्तर की कुञ्ज हुई, प्रियतम !
फिर लहर दूसरी में कानन पश्चिम का डूब गया, प्रियतम !
ऊँची अत्यन्त तीसरी में दक्षिण का वन डूबा, प्रियतम !
चौथे प्रवाह में मग्न हुआ प्राची अरण्य पूरा, प्रियतम ॥२७५॥

प्लावन जाकर तब कहीं थमा, जब युग असंख्य बीते, प्रियतम !
देवी वे महादेव उससे बाहर अब निकल सके, प्रियतम !
डूबे रहने का सुख अनुपम उन चारों लहरों में, प्रियतम !
जो था उनको अनुभूत हुआ, उसकी ही बात छिड़ी, प्रियतम ॥२७६॥

देवी बोली, स्वर था उनका मानो रस का सोता, प्रियतम !
हे नाथ ! बात कुछ बतलाओ उत्तर निकुञ्जवाली, प्रियतम !
सुनते ही महादेव गद्-गद् होकर यों बोल पड़े, प्रियतम !
हे सती ! सुनो द्रुमडाली पर हिमकर के न्याय कहूँ, प्रियतम ॥२७७॥

युगपत् निस्पन्द नित्य एवं उच्छ्वलित नित्य रस है, प्रियतम !
वह देश-काल से परे जहाँ अपने स्वरूप में है, प्रियतम !
है किंतु कूलपर जो, उसकी आँखों के अनुभव में, प्रियतम !
उसके स्वभाव ये नित्य अहो ! आते हैं क्रमशः ही, प्रियतम ॥२७८॥

आस्वादन, आस्वादक एवं आस्वाद्य नामवाला, प्रियतम !
सच तो यह है, दयिते ! किंचित् कोई है भेद नहीं, प्रियतम !
फिर भी है वह रसराज, वहाँ वह महाभाव भी है, प्रियतम !
इन दो की ही क्रीड़ा चलती उत्तरनिकुञ्ज में है, प्रियतम ॥२७९॥

प्राणाधिक ! कहो वनस्थल की पश्चिम के क्या गति है ? प्रियतम !
देवी की आँख लगी बहने झर-झर कहकर इतना, प्रियतम !
विह्वल वे देव जटावाले उस ओर हुए ऐसे, प्रियतम !
मानो प्रवाहिणी भावों की ले डूबेगी उनको, प्रियतम ॥२८०॥

जैसे-तैसे अपने को वे किंचित् सँभाल पाये, प्रियतम !
हो जाता कण्ठ रुद्ध फिर भी, ज्यों कुछ कहने चलते, प्रियतम !
आखिर वे बोल सके इतना, प्रियतमे! वहाँ देखो, प्रियतम !
रसराज नित्य लीला निरुपम शिशु बन है खेल रहा, प्रियतम ॥२८१॥

स्वामिन्! दक्षिण वन में क्या है? देवी ने अब पूछा, प्रियतम !
करते-करते ही प्रश्न किंतु ढल पड़ी देवपर वे, प्रियतम !
उत्तर का उनको पहले ही मानो आभास मिला, प्रियतम !
उस सुख में ही वह चेतनता सत्वर पल डूब गयी, प्रियतम ॥२८२॥

अनुरागभरे शीतल कर से दयिता के अङ्गों को, प्रियतम !
सहला-सहलाकर देव लगे करने प्रबुद्ध उनको, प्रियतम !
आकुल बूँदें टप-टप दृग से गिर रही अनर्गल थीं, प्रियतम !
अभिषेक हो रहा था उनसे देवी के श्री-मुख का, प्रियतम ॥२८३॥

वे जगीं देव ने बात कही दक्षिण अरण्यथल की, प्रियतम !
वह महाभाव ही नित्य बना अवनीशनन्दिनी है, प्रियतम !
रसराज बना ताना उसमें, है महाभाव बाना, प्रियतम !
निर्मित वितान उस पट से है नभ में उन दो वन का, प्रियतम ॥२८४॥

देवी के मृदुल कलेवर में चल पड़ी गुद-गुदी-सी, प्रियतम !
मानो ऊपर तक रस भरकर हिल गया बाँध उरका, प्रियतम !
ऊँचे स्वर से रह-रहकर वे हँसने अब लगीं, तथा, प्रियतम !
'पूरब-पूरब' केवल इतना मुख से था निकल रहा, प्रियतम ॥२८५॥

'अच्छा तो, पूरब वन की भी अब बात रहस्यमयी, प्रियतम !
जीवनसङ्गिनि! सुन लो;' बोले वे महादेवता भी, प्रियतम !
अभिनव सुन्दर शुचि रङ्गस्थल वह मधुर भाव का है, प्रियतम !
है जहाँ प्रीति का आश्रय भी फिर विषय परस्पर वे, प्रियतम ॥२८६॥

'है प्रीति ढली वह किंतु जहाँ अद्भुत उस साँचे में;' प्रियतम !
'आवरण दोष का लिये अहो ! जो नित्य निराविल है;' प्रियतम !
'पावनतम है, पल-पल में है नव-नव होनेवाला;' प्रियतम !
'हो सकी, न है तुलना जिसकी, होगी भी नहीं कभी।' प्रियतम॥२८७॥

'इतना कहते-सुनते ही वे दोनों ध्यानस्थ हुए;' प्रियतम !
'पुष्पित अशोक डाली वह ऊपर से एक झुकी;' प्रियतम !
'उन दोनों पर ही झूल, लगी सुरभित बयार करने;' प्रियतम !
'हम दो भी तत्क्षण उनकी ही झर पड़े साँस से हैं।' प्रियतम॥२८८॥

यह उपर्युक्त इतिहास हंस कह गया हंसिनी से, प्रियतम !
तन्मय होकर सुन गयी इसे वह राजनन्दिनी भी, प्रियतम !
अब लिये मराल मराली को धीरे-धीरे आया, प्रियतम !
छूने स्वचञ्चु से लगा धरा नृप-दुहिता के आगे, प्रियतम॥२८९॥

कर रही याद-सी अपनी ही भूली कुछ बातों को, प्रियतम !
थी खड़ी नृपति-दुहिता नीरव गुत्थी सुलझाती-सी, प्रियतम !
'है जुड़ा अवश्य अहो ! मुझसे इतिवृत्त हंसवाला' प्रियतम !
कुछ पल के लिये चित्त उसका भावित इस भाँति हुआ, प्रियतम॥२९०॥

मन में आया, मराल से ही क्यों मैं न पूछ यह लूँ, प्रियतम !
संकोच हो गया किंतु, पुरुष आखिर विहङ्ग यह है, प्रियतम !
अतएव तनिक चतुराई का पथ अपनाया उसने, प्रियतम !
बोली- 'हे हंस! जहाँ वे हैं, मैं जा सकती हूँ क्या?' प्रियतम॥२९१॥

'निर्बाध, अवश्य-अवश्य अहो! नृप-नन्दिनि, जब चाहो;' प्रियतम !
'श्रीपद का ही तो नित्य, भला, कर रहे ध्यान वे हैं;' प्रियतम !
'जा-जाकर ही रस-वारिधि में सब पथिक नहाते हैं;' प्रियतम !
'आ जाय उमड़कर पास वही, यह भाग सुदुर्लभ है।' प्रियतम॥२९२॥

ऐसे कह उठा हंस, फेरी देकर नृपपुत्री की, प्रियतम!
गुत्थी खुलती-सी दीखी, पर उसका मन उलझ गया, प्रियतम!
उस नेह जाल में, विधिगति से जो अकस्मात् फैला, प्रियतम!
लेकर मराल की ओट सरस चालित अलक्ष्य कर से, प्रियतम॥२६३॥

लज्जा का भान हुआ, फिर भी बोली वह धीरे-से, प्रियतम!
जाऊँ मराल मैं किस पथ से, इतना-सा और कहो। प्रियतम!
विस्मृत-सी हुई मुझे बातें लगती निकुञ्ज की हैं, प्रियतम!
तुम सहृदय हो, इससे साहस हो गया पूछने का, प्रियतम॥२६४॥

दो पथ, महीपनन्दिनि! हैं, तुम चाहो जिससे, जाओ, प्रियतम!
पहले में दोनों ओर लगे उज्ज्वल फूले तरु हैं, प्रियतम!
पथरीला है, वह ठंढापन-सूनापन लिये हुए, प्रियतम!
अव्यक्त और हो जाते हैं पदचिह्न सभी उसमें। प्रियतम॥२६५॥

है लता दूसरे में पीली लिपटी नीले द्रुम से, प्रियतम!
वह नवल बारहों मास बनी नौ भाँति फूलती है, प्रियतम!
आगे वह लाल कुसुम पथ को करता परागमय है, प्रियतम!
अङ्कित सुस्पष्ट चिह्न उसपर होते पद-पद पर हैं। प्रियतम॥२६६॥

पहला पथ है उनका, जिनका धीरज न छूटता है, प्रियतम!
बाहर न आँख जाती जिनकी, मति सहस्रार में है, प्रियतम!
करते न विराम कभी जो हैं, रखते न पास कुछ हैं, प्रियतम!
है अहम् निकल जाता जिनका चलने से पहले ही। प्रियतम॥२६७॥

फूली लतिका पथ है उनका आकुल जो पल-पल हैं, प्रियतम!
आँखें फँसती हैं जिनकी, रति उर के भावों में है, प्रियतम!
हैं श्रमित-चरण जिनके, जो हैं अञ्चल में फूल लिये, प्रियतम!
छाया रसमयी अहंता की जिनको न छोड़ती है। प्रियतम॥२६८॥

यह नृपति-तनूजे! विनती इस किङ्कर मरालकी है, प्रियतम!
तुम तो दोनों पग्यको हँसकर केवल छू भर लेना, प्रियतम!
अग्रिम इस उपवनसे ही वे चलते हैं सटे-सटे, प्रियतम!
इतनेमें वह हंसिनी उड़ी, उड़ गया हंस पीछे, प्रियतम॥२९९॥

नृपपुत्री बारह-चौदह पल खोयी-सी खड़ी रही, प्रियतम!
उस ओर देखती, उड़कर थे वे जिधर विहङ्ग गये, प्रियतम!
सहसा उसकी फिर चित्तवृत्ति अनुजाकी ओर गयी, प्रियतम!
देखा वह तो सोयी सुखसे गहरी निद्रामें है, प्रियतम॥३००॥

क्या करूँ? जगाऊँ इसको या मैं ही किंचित् ठहरूँ, प्रियतम!
यों रही सोचती, किंतु ठीक निर्णय कुछ कर न सकी, प्रियतम!
थी भरी अनोखी निर्भयता सर्वत्र वहाँ गृहमें, प्रियतम!
आयी न अतः उसके मनमें कोई अनिष्ट-शङ्का, प्रियतम॥३०१॥

घूमूँ मैं इस उपवनमें यह तबतक जग सकती है; प्रियतम!
जगकर यह मुझे ढूँढ़ लेगी, मैं दूर न जाऊँगी, प्रियतम!
ऐसा विचार कर चली तथा उपवनमें जा पैठी, प्रियतम!
लगभग सौ पद पर ही दीखी ऊँची-सी एक शिला, प्रियतम॥३०२॥

उसपर चढ़कर उसने डाली सब ओर दृष्टि अपनी, प्रियतम!
जीवनका पहला अवसर था, सर्वथा अकेली थी, प्रियतम!
यह हुई प्रतीति उसे, मानो कोई पुकारता हो, प्रियतम!
आओ, प्रियतमे! इधर आओ, पथ देख रहा हूँ मैं, प्रियतम॥३०३॥

तृतीय शतक समाप्त

उद्यान एक उस वनमें था सुषमाकी खानि बना, प्रियतम !
आकर्षण कण-कणमें उसके ऐसा था भरा हुआ, प्रियतम !
कोई प्राणी सपने में भी क्षणभर यदि देख सके, प्रियतम !
खोकर सब कुछ भी वह अपना चाहेगा जाना ही, प्रियतम ॥३०४॥

प्राचीकी ओर लतामण्डित शोभित तमाल तरु थे, प्रियतम !
दक्षिण-पश्चिम-उत्तर में थी श्रेणी कदम्बकी, हे प्रियतम !
थी भूमि वाटिकाकी अनुपम सर्वत्र लालमणि की, प्रियतम !
विरचित वेदी थी एक वहाँ कुसुमोंकी क्यारी में, प्रियतम ॥३०५॥

उस पद्मराग की वेदी पर फूलों के बीच खड़ी, प्रियतम !
नीलम-निर्मित थी मूर्ति एक, मानो, बस बोल चली, प्रियतम !
अभिनव बालक की, जो अपने करमें था वेणु लिये, प्रियतम !
स्वर भरने की तैयारी में, कुछ बात सोचता-सा, प्रियतम ॥३०६॥

इस नीली-प्रतिमा से पूरब, बस, ठीक सामने ही, प्रियतम !
थी प्रस्तर-शिला, खड़ी जिसपर वह राजकुमारी थी, प्रियतम !
दोनों में थी दूरी केवल पद तीन-चार सौ की, प्रियतम !
वे विटप तमाल वाटिका के छू रहे शिलाको थे, प्रियतम ॥३०७॥

सुस्पष्ट शिलापर से ही थी सहसा वह दीख गयी, प्रियतम !
प्रतिमा, अवनीशनन्दिनी को सुन पड़ा और वह था, प्रियतम !
मीठा स्वर उसे बुलाने का उस दिशा प्रतीची से, प्रियतम !
दोनों ही एक काल में ही बातें ये हुईं वहाँ, प्रियतम ॥३०८॥

सुन्दर नव वह अनुभूति सुखद नरपालनन्दिनी की, प्रियतम !
कैसे बतलाऊँ, वाणी के वश की है बात नहीं, प्रियतम !
ऐसे सब अवसर पर रहता है रिक्त कोश उसका, प्रियतम !
मिलनेकी युक्ति मिली न उसे श्रवणों से, लोचन से, प्रियतम ॥३०९॥

जो हो, तत्काल उतर आयी नृपपुत्री; किंतु उसे, प्रियतम!
कोई न मिली पगदंडी, जो सीधे उस ओर चले, प्रियतम!
वे सघन लताएँ उपवन की जुड़कर थीं जाल बनी, प्रियतम!
उत्तर का तो पथ मिलता था, पर नहीं प्रतीची का, प्रियतम॥३१०॥

धीरज न बचा उसमें अब था, जो सोच-विचार करे, प्रियतम!
अपना सिर डाल दिया उसने वल्ली के छिद्रों में, प्रियतम!
जैसे-तैसे निर्माण लगी करने पथ उनमें ही, प्रियतम!
वे टूट न जायँ, किंतु इतना था ध्यान बना उसमें, प्रियतम॥३११॥

जैसी भावना निकलती है, वैसी ही आती है, प्रियतम!
वल्लरियों के मन में आया, तोड़ें न हृदय इसका, प्रियतम!
अपने ही आप लगीं होने अपसारित वे पल में, प्रियतम!
छोटा-सा द्वार बना, नृप की पुत्री उस पार हुई, प्रियतम॥३१२॥

भावों से थी विभोर, दिग्भ्रम हो गया अतः उसको, प्रियतम!
सीधे पश्चिम चलना था, पर उत्तर की ओर चली, प्रियतम!
गूँजी कानों में इतने में वैसी ही मधुर गिरा, प्रियतम!
बायें, प्राणों की रानी हे! तुम तो मुड़ चलो अभी! प्रियतम॥३१३॥

उसके दृग सुलझे, भान हुआ, प्रतिमा बायें ही है, प्रियतम!
झंकृत उर-तार हुए छूकर उस लहर वैखरी को, प्रियतम!
क्या मूर्ति वही है बोल रही, भ्रम होने लगा उसे, प्रियतम!
कैसे सुन पायी स्वर धीमा इतना इस दूरी से, प्रियतम॥३१४॥

दौड़ी वह भान भुलाकर अब, नीचे क्या है इसका, प्रियतम!
कैसे न अहो! टकरायी, वह तरु से अचरज यह था, प्रियतम!
दो-तीन पलों में पद्मराग वेदी पर जा पहुँची, प्रियतम!
थे खड़े सभी द्रुम हरे-हरे, वे पत्र-छत्र ताने, प्रियतम॥३१५॥

छू गये मृदुल पद जाते ही उसके अजान में हो, प्रियतम!
फूलों के सुरभित गजरे से, जो पड़ा सामने था, प्रियतम!
यों जान-बूझकर ही जैसे रख दिया किसी ने हो, प्रियतम!
सुन्दर सरोजके पत्ते पर, बस, अभी सजा करके, प्रियतम॥३१६॥

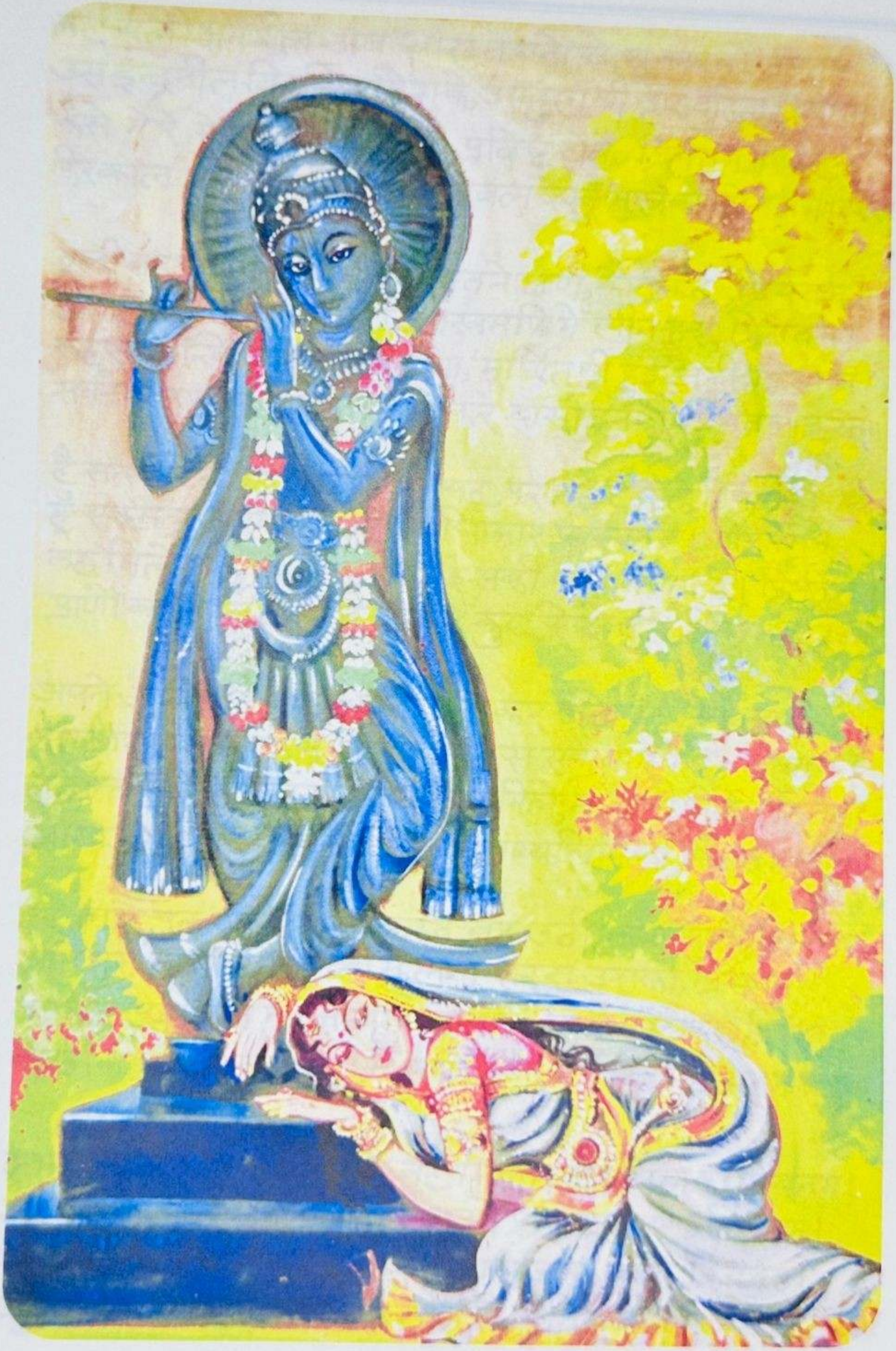
इतने समीप से प्रतिमाकी शोभा निहारते ही, प्रियतम!
भावों की एक उठी आँधी, उड़ गया चित्त उसका, प्रियतम!
उसके प्रवाह में पीछे अब सम्भव न लौटना था, प्रियतम!
जीवन का मानचित्र बदला दस-बारह पल में ही, प्रियतम॥३१७॥

भोलापन-पूरित शिशुता के अन्तर्हित भाव हुए, प्रियतम!
आये प्राणों के विनिमय के उद्दीपनवाले वे, प्रियतम!
बदली चितवन की रीति, रंग बदला वारिज-मुख का, प्रियतम!
अङ्गों की संचालन-शैली पूरी वह बदल गयी, प्रियतम॥३१८॥

नृपपुत्रीके निहारनेपर आधे मीलित दृगसे, प्रियतम!
प्रतिमा सजीव-सी ऐसी थी रह-रहकर बन जाती, प्रियतम!
मानो हो अतुल नीलसुन्दर कोई किशोर नयका, प्रियतम!
प्राणों को रोके सत्य अहो! ठग रहा उसी को हो, प्रियतम॥३१९॥

क्यों हो विलम्ब, फिर काल कहीं कुछ हेर-फेर कर दे, प्रियतम!
स्वर्णिम-वेला चल देती है पल-आधे-पल में ही, प्रियतम!
ले माल चली नृपसुता वहाँ निरवधि निमग्न होने, प्रियतम!
प्राणों की दो सरिता मिलकर होती है एक जहाँ, प्रियतम॥३२०॥

चञ्चल हरिणी-सी आँख बड़ी क्षण एक हुई उसकी, प्रियतम!
देखा जब उसने, दर्शक था कोई भी नहीं वहाँ, प्रियतम!
वह सुमनहार मानो प्रतीक जीवन-यौवन, सबका, प्रियतम!
ग्रीवा में प्रतिमा के पहना, चरणों में लुढ़क पड़ी, प्रियतम॥३२१॥



ग्रीवा में प्रतिमा के पहना, चरणों में लुढ़क पड़ी, प्रियतम॥३२१॥

वह चली अनर्गल अब धारा नयनों से, छू नख को, प्रियतम!
उस इन्द्रनील-विरचित शिशु के, आकुल थी नृप-दुहिता, प्रियतम!
कैसे मेरे ये प्राण अभी इनमें प्रविष्ट होवें, प्रियतम!
फिर काल अन्त-विरहित तक मैं केवल देखूँ मुख को। प्रियतम॥३२२॥

भूली वह, कौन कहाँ मैं हूँ, कितने क्षण, कौन कहे, प्रियतम!
युग-युग बीते अथवा परार्द्ध नखमणि में लीन हुए, प्रियतम!
सहसा आँखें जब खुलीं, लगा, 'मूर्च्छित थी हुई अभी'; प्रियतम!
सर्वस्व-समर्पण कर अपना, होकर दासी इनकी, प्रियतम॥३२३॥

है सत्य किसी की आकृति ही यह, पर वह है मेरा, प्रियतम!
हूँ एकमात्र उसकी मैं अब, अधिकार परस्पर है। प्रियतम!
वह मिले मुझे या मिले नहीं, इसकी क्या चिन्ता है। प्रियतम!
प्राणों का सौदा होता है क्षण में कुछ ऐसे ही। प्रियतम॥३२४॥

अपने जीवन की साध अभी पूरी कर लेती हूँ, प्रियतम!
क्षण भर इस कण्ठ मनोहर से बस एक बार भेंटूँ, प्रियतम!
एकान्त मुझे अवसर ऐसा फिर मिले, न कभी मिले, प्रियतम!
आ पाऊँगी भी इस वन में है बात भाग्यलिपि की, प्रियतम॥३२५॥

दृग लगे पुनः छल-छल करने, वह उठी, भुजा फैली, प्रियतम!
आगे तुम देख भले ही लो झूलना सरस उसका, प्रियतम!
कहकर पवित्रता मैं अथवा उसकी क्यों नष्ट करूँ, प्रियतम!
केवल वह है सम्बल मेरा, मैं क्यों खोजूँ उसको। प्रियतम॥३२६॥

इतना-सा ही कह सकती हूँ, वह मिलन अर्धपल का, प्रियतम!
आधार-शिला बनकर उसपर बनने प्रासाद लगा, प्रियतम!
जिसमें विभाग थे-स्नेह, मान, ये प्रणय, राग, आगे, प्रियतम!
अनुराग, भाव, फिर महाभाव, सातों अप्रतिम बने, प्रियतम॥३२७॥

अधिदेवी उन सातों की थी वह राजतनूजा ही, प्रियतम !
जो स्नेहकक्ष था, किंतु अभी उसमें थी वह उतरी, प्रियतम !
इतने में ही खोजती उसे अनुजा झट आ पहुँची, प्रियतम !
उसके पद चिह्नों पर चलकर जो उगे धरा पर थे, प्रियतम॥३२८॥

दो हाथ हटी प्रतिमा से थी बैठी नृप की पुत्री, प्रियतम !
पीछे से उस के कंधों पर कर रखकर वह बोली, प्रियतम !
री बहिन! कहाँ मन तेरा है, क्यों छोड़ मुझे आयी, प्रियतम !
अच्छा, अब तो बतला दे, क्या-क्या है करना कैसे। प्रियतम॥३२९॥

जागी समाधि से वह, लज्जा किंचित्-सी हुई उसे, प्रियतम !
क्रमशः उसको सब बतलाया, जिस भाँति यहाँ पहुँची, प्रियतम !
सुनकर वह बड़ी बहिन से यह पूरा ब्योरा, बोली, प्रियतम !
मैं पहले से ही प्रतिमा की कुछ बात जानती हूँ। प्रियतम॥३३०॥

नृप-पुत्री चौंक उठी, मानो मिल गयी उसे ताली, प्रियतम !
पेटी की अहो! महानिधि वह थी बन्द पड़ी जिसमें, प्रियतम !
तू सब बतला दे, पता तुझे जो कुछ है, अभी मुझे, प्रियतम !
भुजमाल कनिष्ठा को पहना, इतना ही कह पायी, प्रियतम॥३३१॥

अच्छा, सुन ले! आँखें, वाणी अनुजा की घूम उठीं; प्रियतम !
मौसी ने बात कही मुझसे, रूठी बैठी तू थी; प्रियतम !
आश्विन की एक वर्ष पहले थी साँझ अमावस की; प्रियतम !
साँझी के फूल बीन लौटीं हम सभी देर से थीं। प्रियतम॥३३२॥

मौसी बोली, लाड़िली बड़ी बावली, सत्य यह है। प्रियतम !
छोटी होकर भी तू तो पर सब बात समझती है। प्रियतम !
मैं बतलाऊँ, क्यों तुम सब पर तुम सबकी ही मैया, प्रियतम !
है आज तनिक-सी खीझ गयी ज्यों ही तुम सब आयीं। प्रियतम॥३३३॥

घटना है ग्यारह मास, दिवस दो अबसे पहले की, प्रियतम !
तेरा श्रीभैया वन में था गायों को लिये गया, प्रियतम !
शिशुओं में दैवयोग से यह चर्चा छिड़ गयी वहाँ, प्रियतम !
इन सभी अरण्यों का राजा है कौन, कहे कोई। प्रियतम ॥३३४॥

जो वे गोपों के अधिपति हैं, उनका बेटा बोला, प्रियतम !
मैं ही हूँ नित्य ईश सबका, थे, हैं, होंगे वन जो। प्रियतम !
हँस पड़ा हँसोड़ा शिशु सुनकर, भूसुर कुल का जो था, प्रियतम !
बारह ही वर्ष-वयस का जो रहता था बना सदा, प्रियतम ॥३३५॥

क्यों हँसा, बोल सच तू, उसके पीछे पड़ गये सभी, प्रियतम !
वह भी पक्का था, चंगुल में फँसता न किसी के था, प्रियतम !
थी किंतु एक दुर्बलता, जो उसको थी च्युत करती, प्रियतम !
कोई मीठी कुछ वस्तु खिला ले लेता मोल उसे। प्रियतम ॥३३६॥

शिशुओं ने यही उपाय किया, मोदक की भेंट धरी, प्रियतम !
खाकर वह बोला-'राजा हैं श्रीभैया के बाबा। प्रियतम !
वे सभी वनों के, ब्रज के हैं पालक पालक के भी, प्रियतम !
ये गोपराज भी पहले थे देते कर उस कुल को।' प्रियतम ॥३३७॥

जो वृद्धपितामह हैं, उनने कर लेना बंद किया, प्रियतम !
हो गयी मित्रता अद्भुत-सी दोनों ही नृपकुल में, प्रियतम !
बँध गये स्नेह के बन्धन में दो राजवंश ऐसे, प्रियतम !
मानो हों अहो! एक माँ से जाये जो गद्दी लें, प्रियतम ॥३३८॥

अतएव छूट इसको है, यह चाहे जिस कानन में, प्रियतम !
जाकर गोचारण करे, कहीं है रोक नहीं कोई। प्रियतम !
श्रीभैया के बाबा चाहें तो आज बंद कर दें, प्रियतम !
छोटा-सा जो वन है इसका, उसमें ही फिर घूमो, प्रियतम ॥३३९॥

यह वन विशेषतः, जिसमें हैं बैठे हम सभी अभी, प्रियतम!
केवल जगदम्बा का है, वे रहती इसमें ही हैं। प्रियतम!
है पता नहीं कुछ, तब भी यह बोला-'मालिक मैं हूँ, प्रियतम!
इसके इस भोलेपन पर ही आ गयी हँसी मुझको,' प्रियतम॥३४०॥

गोपेश-तनय मुसकाया, हग-कनखी से देख उसे, प्रियतम!
प्राणों का प्यार उधर उमड़ा तेरे श्रीभैया का, प्रियतम!
जीवन के नित्य-सखा की क्यों खण्डित यह उक्ति हुई, प्रियतम!
तत्क्षण उसने पूछा हँसकर उस बन्धु हँसोड़े से, प्रियतम॥३४१॥

तू तो पण्डित है ही, बतला, कोई उपाय है क्या? प्रियतम!
कल रवि उगने से पहले यह हो जाय बात सच्ची, प्रियतम!
अधिकार आज जिस-जिस वन पर मेरे बाबा का है, प्रियतम!
स्वामी उन सबका निरवधि हो यह प्राणसखा मेरा। प्रियतम॥३४२॥

उत्तर तुरंत सुन्दर इसका दे दिया हँसोड़े ने, प्रियतम!
तू ही तो है युवराज, कहीं तू त्याग सत्य कर दे! प्रियतम!
उस ओर अहो! तेरी बहिनें जो दो सहोदरा हैं, प्रियतम!
उनकी इस गोपराज सुत से हो चुकी सगाई है। प्रियतम॥३४३॥

जब भी विवाह हो, इससे क्या, बस, आज रात में ही, प्रियतम!
भावी दहेज का दान-पत्र तेरे बाबा लिख दें, प्रियतम!
फिर तो वैसा ही होगा, तू जैसा है चाह रहा, प्रियतम!
पूरे अरण्य का कल होगा यह एक छत्र राजा। प्रियतम॥३४४॥

चर्चा यह आयी-गयी-सदृश औरों के लिये हुई, प्रियतम!
तेरे श्रीभैया के मन से वह किंतु नहीं निकली, प्रियतम!
सन्ध्या के समय लौट कर जब वन से घर पर आया, प्रियतम!
चुपचाप महादेवी के वह मन्दिर में जा बैठा। प्रियतम॥३४५॥

जाकर तुरंत हम सब चिन्तित उसको पूछने लगे, प्रियतम!
कारण न किंतु बतलाता कुछ, मुख था उदास उसका, प्रियतम!
तेरी मैया, मौसी मैं, फिर तेरे बाबा, मौसा, प्रियतम!
ये चार जने थे वहाँ, लगा रोने वह आकुल हो। प्रियतम॥३४६॥

मैंने समझाया, मैया ने, बाबा ने, मौसा ने, प्रियतम!
घिग्घी उसकी बँध गयी, और इतना-सा बोल सका, प्रियतम!
बाबा! प्रण तुम पहले कर लो, जो भी मैं अभी कहूँ, प्रियतम!
उसको ज्यों-का-त्यों सत्य-सत्य पूरा करना ही है।, प्रियतम॥३४७॥

तेरे बाबा ने भी पलभर सोचा तक नहीं तनिक, प्रियतम!
अर्चन का जल था पास, उसे कर में लेकर बोले, प्रियतम!
रे लाल! देन जगजननी की तू तो मेरे घर है, प्रियतम!
तू जो भी कह देगा, उसको वैसे ही कर दूँगा, प्रियतम! ॥३४८॥

बोला श्रीभैया, आँखों में फिर से जल भर कर के, प्रियतम!
बाबा! है प्रिय साँवरा अहो! प्राणों से अधिक मुझे, प्रियतम!
बातें इस भाँति हुईं वन में, भारी है व्यथा मुझे, प्रियतम!
उस सखा विदूषक के अन्तिम निर्णय को सत्य करो! प्रियतम ॥३४९॥

'जीवन में चाह नहीं है यह, राजा मैं कभी बनूँ,' प्रियतम!
'मेरी प्राणोपम दो बहिनें असमोर्ध्व भागवाली' प्रियतम!
'हो चुकी साँवरे की हैं, अब मैं भी निहाल होऊँ,' प्रियतम!
'राजा हो वही, रखूँ मैं तो निरवधि सँभाल उसकी' प्रियतम! ॥३५०॥

"चारों ही स्नेह-विभावित थे हम लगे विकल रोने," प्रियतम!
"तेरे श्रीभैया के उर की लखकर विशालता को," प्रियतम!
"चलती अविराम रही पावन धारा आठों दृग से," प्रियतम!
"उसमें भींगे रह कर ही मों तेरे बाबा बोले," प्रियतम॥३५१॥

सुन्दर ऐसा क्षण पहला है, जिस में मैं आज कह हूँ, प्रियतम!
है धन्य पितापन मेरा अब, जो पुत्र मिला तुझ-सा। प्रियतम!
मेरी भी यही लालसा थी, रे लाल! धन्य तू है, प्रियतम!
दे दिया अहो! तुमने सब कुछ माँगे ही बिना मुझे। प्रियतम॥३५२॥

तत्काल बुलाने द्रुत चला गुरुदेव महोदय को, प्रियतम!
वे भी आये रजनी सौ पल चढ़ने से पहले ही। प्रियतम!
उनको प्रत्यक्ष मिला था यह आदेश दिवाकर का, प्रियतम!
सायं-संध्या के समय उठे ज्यों चले नहाने वे, प्रियतम॥३५३॥

जाओ तुम नील-सरोवर पर, उसको प्रणाम करना, प्रियतम!
उत्तर-पूरब के कोनेपर अञ्जलि में फूल लिये, प्रियतम!
जल में प्रविष्ट होकर धीरे-धीरे क्रमशः बढ़ना, प्रियतम!
अपने-ही-आप सुमन कर से च्युत होते ही रुकना, प्रियतम॥३५४॥

उस जल के तल में ही निमग्न तत्क्षण तुम हो जाना, प्रियतम!
उपलब्ध वहाँ तुमको निरुपम दो स्वतः वस्तु होंगी, प्रियतम!
उनको लेकर नृपपत्तन में सीधे तुम चल देना, प्रियतम!
वह दूत मिलेगा पथ में ही प्रेषित उस राजा का। प्रियतम॥३५५॥

ऐसा ही हुआ और गुरुवर थे महासिद्ध पहुँचे, प्रियतम!
वे लिये हुए थे साथ वही, जो वस्तु मिली उनको, प्रियतम!
नीली-प्रतिमा थी एक और था, एक पुरट-पत्ता, प्रियतम!
पुरइन की आकृति का, जिसपर अक्षर थे लिखे हुए, प्रियतम॥३५६॥

वह दान-पत्र ही था सचमुच भावी दहेजवाला, प्रियतम!
तेरे बाबा की सही, भला, उसपर पहले से थी। प्रियतम!
अङ्कित थी उसपर तिथि, जो थी उस दिन धनतेरस की, प्रियतम!
साखी थे गुरुवर और तरणि उनके थे चिह्न बने। प्रियतम॥३५७॥

"की सभी व्यवस्था अग्रिम अब गुरुदेव महोदय ने;" प्रियतम !
"उस ओर गोपराजा को था होने यह भान लगा;" प्रियतम !
"श्रीनारायण का नीराजन सन्ध्या में करते ही;" प्रियतम !
"मानो श्रीविग्रह मणिमय वह मुसकाकर कहता हो," प्रियतम ॥३५८॥

"हे वत्स! बुलाता है तुमको वह नृपति धर्मभाई ;" प्रियतम !
"कुलगुरु को साथ लिये तुम तो प्रस्थान तुरंत करो।" प्रियतम !
"प्रेषित गोपेश यहाँ आये दो घड़ी रात जाते;" प्रियतम !
"उन शकट-बली वर्दों में था मानो बल उड़ने का;" प्रियतम ॥३५९॥

"मिलकर, बातें कर, भावविकल वे धर्मबन्धु रोये," प्रियतम !
"दोनों कुलगुरुवर का निर्णय अपने-ही-आप हुआ;" प्रियतम !
"बस, अभी प्रतिष्ठित हो प्रतिमा सुन्दरी वाटिका में;" प्रियतम !
"हो दानपत्र यह नित्य जड़ा प्रतिमा-पद के नीचे।" प्रियतम ॥३६०॥

"तुम दोनों बहिनों की सँभाल करती मैं यहाँ रही;" प्रियतम !
"तेरी मैया, तेरे बाबा, ब्रजराज, महामुनि दो;" प्रियतम !
"पाँचों, तेरे श्रीभैया को आगे कर, वहाँ गये;" प्रियतम !
"हो अर्धनिशा, उससे पहले पूरा सब कृत्य हुआ।" प्रियतम ॥३६१॥

चौदस के प्रातः तुम दोनों बाहर खेलने गयीं," प्रियतम !
करके साँवरा कलेवा जब कानन में चला गया;" प्रियतम !
"लेकर सङ्गिनी एक आयीं वे गोपराज-रानी;" प्रियतम !
"दो तथा इधर से हम पहुँची उद्यान-सुन्दरी में।" प्रियतम ॥३६२॥

चारों, न निहार-निहार थकीं प्रतिमा की सुन्दरता;" प्रियतम !
गोपेश-गेहिनी के सुत की आकृति वह विधिकृत थी;" प्रियतम !
दिन में तो तरणि-किरण को वह नीलाभ बना देती;" प्रियतम !
साढ़े चौबीस रात में शशि उससे निस्सृत होते।" प्रियतम ॥३६३॥

"उस दिन से ही उद्यान अहो! प्रायः अदृश्य रहता," प्रियतम!
"बन फेरी देते, देती थीं जो उन दो तिथियों में;" प्रियतम!
"उनमें जिसको भी देवी का दर्शन हो जाता था," प्रियतम!
"उसको ही ज्योतिर्मय वह, पल-दो-पल दीखता भला;" प्रियतम॥३६४॥

"गुरुवर ने चलते समय कहा तेरी मैया से था;" प्रियतम!
"मैं पास खड़ी थी; मुद्रा थी गम्भीर बड़ी उनकी;" प्रियतम!
"अपनी इन दो दुहिताओं की, रानी! सँभाल रखना;" प्रियतम!
"निश्चित उस एक अवधि तक ये उस बन में जाँय नहीं।" प्रियतम॥३६५॥

"तेरी बुढ़िया नानी, जो है जननी तुम बहिनों की;" प्रियतम!
"उसने ही आज दुपहरी में आकर है यहाँ कहा;" प्रियतम!
"ये चपल छोरियाँ घुसती हैं उस बन की सीमा में;" प्रियतम!
"तेरी मैया अत्यधिक इसे सुनते ही घबरायीं।" प्रियतम॥३६६॥

उसने मुझको भेजा, दौड़ी मैं उस बन में पहुँची," प्रियतम!
कोई न मिली तुम, किंतु वहाँ थक गयी खोजकर मैं" प्रियतम!
आखिर लौटी, रवि-मन्दिर में तुम सब थी खेल रही;" प्रियतम!
मैंने न कहा कुछ तुम सबको चुपचाप चली आयी।" प्रियतम॥३६७॥

तुम भी तुरंत पहुँची, तेरी मैया भी खीझ उठी, प्रियतम!
है हेतु यही, है पता नहीं यह किन्तु लाड़ली को, प्रियतम!
गुरुवर की रुचि का ही पालन मङ्गलकारी होगा, प्रियतम!
जाकर उसको सब बतला दे, तू बड़ी सयानी है।" प्रियतम॥३६८॥

मौसी इन बातों को मुझसे जिस समय कह रही थी, प्रियतम!
केवल दस-बीस हाथ हटकर तू भी तो थी बैठी। प्रियतम!
उसका स्वर था पर धीमा, मुँह तू तथा फुलाये थी, प्रियतम!
घटना रहस्यपूरित यह तू इसलिये न सुन पायी। प्रियतम॥३६९॥

"मैं चली तुझे कहने यह सब, इतने में ही बाबा," प्रियतम!
"आ गये वहाँ, उनसे लालित होकर तू मान गयी;" प्रियतम!
"ब्यारू के लिये तुरंत तथा फिर हम सब जा बैठीं;" प्रियतम!
"बातों में मैं फँस गयी और कहना यह भूल गयी।" प्रियतम॥३७०॥

"अतएव यही प्रतिमा है, जो तब हुई प्रतिष्ठित थी;" प्रियतम!
"तू देख, यहाँ दिनकर की हैं किरणें नीली-नीली।" प्रियतम!
"है स्वर्णपत्र भी जटित अहो! चरणों के वह नीचे;" प्रियतम!
"संयोग देखने का इसको अपने-ही-आप लगा।" प्रियतम॥३७१॥

'अब तू कह, किधर चलें?' कहकर अनुजा पल तीन रुकी, प्रियतम!
चिन्तित-सी बड़ी बहिन उसको उत्तर कुछ दे न सकी, प्रियतम!
सहसा उसके मुख से निकला-'वे गयी कहाँ सखियाँ,' प्रियतम!
आये ये शब्द कि टूट गयी पूरी समाधि उसकी, प्रियतम॥३७२॥

देखा जगते ही, सन्मुख है सर वही मिष्टजल का, प्रियतम!
घबरायी-सी होकर सखियाँ हैं उसे निहार रहीं, प्रियतम!
तोता भी द्रुम-डाली पर है वैसे ही निरख रहा, प्रियतम!
शीतल-समीर का झोंका वह वैसा ही है अब भी, प्रियतम॥३७३॥

पूछा सहचरियों ने, कैसा अनुभव री! हुआ तुझे? प्रियतम!
क्या कहती वह, बरबस पानी आँखों में भर आया, प्रियतम!
इच्छा न तनिक भी अब उसकी आगे बढ़ने की थी, प्रियतम!
आयी थी जिस पथ से वन में, उससे ही लौट पड़ी, प्रियतम॥३७४॥

आयी झाड़ी मैंहदी की वह दक्षिण सीमा वाली, प्रियतम!
नृपपुत्री ने उदास मन से उसको ज्यों पार किया, प्रियतम!
आया, बस, कीर वहीं उड़कर, करके प्रणाम बोला, प्रियतम!
'संदेश एक है श्रीपद में उन नीलदेवता का।' प्रियतम॥३७५॥

सेवा न बनी कुछ भी सचमुच अरसिक मुझ किंकर से; प्रियतम !
अपनी ही ओर देख, उरमें अविचल निवास देना।' प्रियतम !
है नहीं मनोभ्रम, सच्ची है घटना सब इस वनकी; प्रियतम !
माला है झूल रही उरपर, झूलेगी नित्य तथा।' प्रियतम ॥३७६॥

वह वायुकोण में कीर उड़ा, कहकर इतना-सा ही, प्रियतम !
घर चली नृपति-पुत्री, अपना मन रखकर वन में ही, प्रियतम !
सब बोल रही थीं सखियाँ, वह बोली न किंतु कुछ भी, प्रियतम !
ढाँचा वह भाव-तड़िच्चालित तनका था लौट रहा, प्रियतम ॥३७७॥

आते ही घर मैया उर में भरकर, दृगधारा से, प्रियतम !
नहलाकर, 'कैसे क्या देखा वन में ?' पूछने लगी, प्रियतम !
औरों ने बात कही, किंचित् छोटी छोरी ने भी, प्रियतम !
केवल नीरव वह एक रही, कह सकी न, बड़ी लली, प्रियतम ॥३७८॥

उद्यान महल से सटा हुआ जो था विशाल उसका, प्रियतम !
उसमें ही जा बैठी उस दिन हो जाने पर सन्ध्या, प्रियतम !
था प्रिय एकाकीपन उसको सर्वथा आज अब तो, प्रियतम !
उस वनकी वह नीली प्रतिमा मानो सन्मुख ही थी, प्रियतम ॥३७९॥

तोते के द्वारा प्रेषित वह सन्देश देवता का, प्रियतम !
उसके कानों में गूँज रहा मधुभरा निरन्तर था, प्रियतम !
त्वक् और नासिका, रसना में अनुभूति भरी वह थी, प्रियतम !
जो भुजा समर्पण के क्षण में उसको थी वहाँ हुई, प्रियतम ॥३८०॥

दो घड़ी बीतते ही सखियाँ उसके समीप आयीं; प्रियतम !
उसको न किंतु दीखी सब वे क्षणभर भी खड़ी वहाँ, प्रियतम !
उन पाँच-सात की संख्या में नीली-प्रतिमा ही है, प्रियतम !
उसको यह अनुभव हुआ और विस्मय में थी डूबी, प्रियतम ॥३८१॥

बातें कितनी ही बार-बार कह गयी न जाने वे, प्रियतम !
कानों में कोई भी उनकी वह उक्ति न किंतु गयी, प्रियतम !
हैं ओठ हिल रहे, बोल रही नीली-प्रतिमा ही है, प्रियतम !
'प्रियतमे! वल्लभे! प्राणेश्वरि!' यों, थी प्रतीति उसको, प्रियतम॥३८२॥

अविलम्ब महल में ले जाना उसको आवश्यक था, प्रियतम!
जैसे उस सखी सयानी ने उसका कर अब पकड़ा, प्रियतम!
मेरा है किया हस्तधारण नीली-प्रतिमा ने ही, प्रियतम !
यह लगा और अनुभूति हुई प्राणस्पर्शी सुख की, प्रियतम॥३८३॥

विश्राम-कक्ष में उसको वे ज्यों-त्यों कर ले आयीं, प्रियतम!
थी बहिन कनिष्ठा लगा रही सुरभित विलेप तन में, प्रियतम!
यह भान हुआ उसको, सौरभ नीली प्रतिमा में है, प्रियतम!
उससे झर कर भर रहा और मेरे अङ्गों में है, प्रियतम॥३८४॥

ब्यारू न करा पायीं सखियाँ, तब अनुजा ने अपनी, प्रियतम!
अध्यजूठ मिठाई वह उसके ओठों पर तनिक रखी, प्रियतम!
है अधर-सुधा यह तो सचमुच नीली-प्रतिमा की ही, प्रियतम!
होने यह भान लगा उसको, खाती वह चली गयी, प्रियतम॥३८५॥

वैसे ही उसे पिलाया फिर जल भी अनुजा ने ही, प्रियतम!
वैसे ही भुला-भुलाकर ही वह पान खिला पायी, प्रियतम!
'है प्रीति-दान यह तो मुझको नीली-प्रतिमा का ही,' प्रियतम!
उसकी प्रतीति थी क्रमशः यह गाढ़ी होती जाती, प्रियतम॥३८६॥

थी एक पहर रजनी बीती, सहसा वह उठ बैठी, प्रियतम!
अपनी ही अहो! हथेली पर जा टिकी आँख उसकी, प्रियतम!
दीखी वह पूरी-की-पूरी नीली-प्रतिमा-जैसी, प्रियतम!
ऊपर वह बाहुमूल तक था पूरा कर ही नीला, प्रियतम॥३८७॥

दो-तीन पलों के अन्तर से उसने लहँगा अपना, प्रियतम !
सरका कर हेतु भरे हग से देखा अपने पद को, प्रियतम !
वे गुल्फ और घुटने सब थे नीली-प्रतिमा जैसे, प्रियतम !
वैसा ही नीलापन पूरित पूरे चरणों में था, प्रियतम ॥३८८॥

जाते न एक पल जाते ही उसको यह भान हुआ, प्रियतम !
नव चिह्न किशोरीपन का वह कोई न अङ्ग में है, प्रियतम !
'मेरा तन भी यह पूरा है नीली प्रतिमा जैसा', प्रियतम !
'आभूषण के बदले यह है वैसे ही वेणु धरे।' प्रियतम ॥३८९॥

थी दशा एक-दो पल तक तो उसकी विचित्र-सी थी, प्रियतम !
इस ऊहापोह-भँवर में था उसका मन उलझ गया, प्रियतम !
रमणी हूँ या सर्वथा पुरुष, नीली-प्रतिमा ही हूँ, प्रियतम !
परिवर्तन है सच यह अथवा हो रही भ्रमित मैं हूँ, प्रियतम ॥३९०॥

आगे आधा पल मुँदी रही पलकें आधी उसकी, प्रियतम !
निर्णय उसको मिल गया और मन लीन हुआ उसमें, प्रियतम !
वह पर्यवसित मैं-पना हुआ नीली-प्रतिमा में ही, प्रियतम !
सब ओर वहाँ अब फैल गयीं नीली-नीली लहरें, प्रियतम ॥३९१॥

उसके पश्चात् नीलिमा की अव्यक्त परिस्थिति का, प्रियतम !
आगे फिर संविन्मयी उसी नीली रस-सत्ता का, प्रियतम !
जिसमें अप्रतिम पीतिमा भी वह नित्य विराजित है, प्रियतम !
अज्ञेय भला वह है, उसका कैसे निर्देश करूँ, प्रियतम ॥३९२॥

जब शारद-निशा वह बीत चुकी पहली सित परिवा की, प्रियतम !
अपने उस राज-तनूजा के तन को वह पकड़ सकी, प्रियतम !
मैया, मौसी, सब सहचरियाँ भारी चिन्ता में थीं; प्रियतम !
जो हुआ अचानक परिवर्तन उसमें, लेकर उसको, प्रियतम ॥३९३॥

मैया कहती तू बतला दे, क्या हुआ, लड़ैती री! प्रियतम !
जो भी चाहेगी तू, तुझको दूँगी अवश्य वह मैं, प्रियतम !
क्या कहे लड़ैती उसकी, अब कोई भी रुचि न रही, प्रियतम !
जा मिली चाह उसकी सारी उन नील-देवता में, प्रियतम ॥३९४॥

व्यवहार संतुलित कोई सा उसका न आज भी था, प्रियतम !
जब सखी पान कर पर रखकर बोली, 'बतला, क्या है?' प्रियतम !
उसने उत्तर यह दिया, 'तड़ित वारिद में रहती है,' प्रियतम !
'पहले वह किंतु चमकती है, जलधर तब झरता है।' प्रियतम ॥३९५॥

सहचरी अलक-रचना करने आयी, प्रस्ताव किया, प्रियतम !
पहले तो बोली कुछ न, तथा बोली तब कह बैठी, प्रियतम !
'प्रियता में सुख है, सुख में है प्रियता स्वभाव से ही, प्रियतम !
'क्यों भेद अहो! फिर, नित्य बढ़ें, ये इसीलिये तो हैं,' प्रियतम ॥३९६॥

'क्यों अरी! सुमन लेकर अर्चन करने न जायगी तू?' प्रियतम !
बोली लघु सखी, सुना उसने या नहीं, कौन जाने, प्रियतम !
धीमा स्वर निकला, 'दी किसने यह बुद्धि पपीहे को,' प्रियतम !
'मैंने या उनने या पाली उसने अपने से ही?' प्रियतम ॥३९७॥

अनमनी हुई वह बैठी थी, सन्मुख थे फूल खिले, प्रियतम !
कुछ कहा सहेली ने, पर वह कुछ और समझ बैठी, प्रियतम !
बोली, 'यौवन ऐसा ही है, जैसे ये खिलते हैं,' प्रियतम !
'है नियम नहीं, अलि रस पी ले प्रत्येक पुष्प का ही।' प्रियतम ॥३९८॥

यों तीस घड़ी जाकर आयी दूजी तिथि की रजनी, प्रियतम !
उसके प्रत्येक पहर में वह भावित हो भाग चली, प्रियतम !
पहले में दीखा, वे आये लेकर चम्पकमाला, प्रियतम !
झट डाल कण्ठ में-चले, चली वह भी पीछे उनके, प्रियतम ॥३९९॥

ले हार चमेली का दीखे वे खड़े दूसरे में, प्रियतम !
लेकर गजरा तीसरे पहर यूथी का वे आये, प्रियतम !
चौथे में जवाकुसुम की थी माला शोभित कर में, प्रियतम !
उनका रसदान उषा का वह अत्यन्त निराला था, प्रियतम ॥४००॥

उसके पश्चात् लोचनों से उसके जो स्रोत चला, प्रियतम !
चालीस पहर, दो घड़ी, भला, झरता ही सतत रहा, प्रियतम !
मानो वह राजसदन अब तो उसमें ही बूड़ चला, प्रियतम !
आया अलक्ष्य रक्षा कर तब उन नीलदेवता का, प्रियतम ॥४०१॥

प्रातः था वही बहुश्रुत शुक आया उस कोने से, प्रियतम !
बोला-'श्री-पद में प्रणति सरस उनकी पल-पल शत है, प्रियतम !
'है और विनम्र निवेदन यह उनके अन्तस्तल का।' प्रियतम !
'प्रियतमे! रखो धीरज, मुझसे अब नित्य मिलन होगा।' प्रियतम ॥४०२

'पूरे हो रहे इसी क्षण हैं बारह शुभ मास, भला,' प्रियतम !
'उन्मत्त हुए मुनि थे तुमसे ले रहे विदा, तब से,' प्रियतम !
'उनका प्रदत्त वरदान वही उसमें निमित्त होगा;' प्रियतम !
जय हो! जय हो! निरवधि जय हो! श्रीचरण-सरोरुह की' प्रियतम ॥४०३॥

शीतल अवनीश-नन्दिनी के वे अश्रु हुए पल में, प्रियतम !
आनन-सरोज मुरझाया वह खिल उठा अहो! फिर से, प्रियतम !
क्रन्दन-विराम का हेतु नहीं मिल सका किसी को भी, प्रियतम !
प्लावित पर अब सुख से सब थे, हँस रहे तरणि भी थे, प्रियतम ॥४०४॥

चतुर्थ शतक समाप्त

श्रीकृष्णके पूर्वरागकी भूमिका

थे अतिथि हुए कोपन अतिशय ऋषि एक नृपति-गृह में, प्रियतम!
दाढ़ी थी लंबी पिङ्गलाभ, सिर पर थी बँधी जटा, प्रियतम!
तप का था तेज भरा उनके लोचन में, अङ्गों में, प्रियतम!
हुतभुक था मानो मूर्तिमान, इतने तेजस्वी थे, प्रियतम॥४०५॥

अवनीश गिरे चरणों में आ, रानी ने पद धोये, प्रियतम!
विधिवत् अर्चा करके उनकी, कर जोड़, खड़े वे थे प्रियतम!
गम्भीर हुए-से मुनि बोले-'राजन् धर्मज्ञ! सुनो; प्रियतम!
'रहना है सोलह पहर मुझे इस गृह में जहाँ कहो।' प्रियतम॥४०६॥

सोती थी जहाँ राजपुत्री, प्रासाद-कक्ष वह था, प्रियतम!
सबसे सुन्दर, नृपने उनको ठहराया उसमें ही, प्रियतम!
'जब एक घड़ी ध्यानस्थ यहाँ एकाकी मैं रह लूँ,' प्रियतम!
'आकर फिर तुम सेवा करना।' कहकर मुनि बैठ गये, प्रियतम॥४०७॥

करके प्रणाम राजा उनको, चल पड़े वहाँ से, हे प्रियतम!
सीधे आये कुलदेवी के मन्दिर में दौड़े-से, प्रियतम!
परिचित मुनिके स्वभाव से थे, अतएव भीत मन से, प्रियतम!
कह, 'पाहि, जननि!' सिर टेक दिया विग्रह के चरणों में, प्रियतम॥४०८॥

मुसकान कनकमय विग्रह के अधरों पर भर आयी, प्रियतम!
वीणा से भी मीठी वाणी होने फिर व्यक्त लगी, प्रियतम!
"चिन्ता न करो तुम, वत्स! सुखद मिलना होगा इनका," प्रियतम!
"अपनी दोनों दुहिताओं को आगे कर यह कहना," प्रियतम॥४०९॥

'मुनिपुंगव! जो है पुत्र एक, अत्यन्त चपल वह है,' प्रियतम!
'सेवा के योग्य चार हम हैं, चारों को या दो को,' प्रियतम!
'स्वीकार करें, होऊँ कृतार्थ पाकर पद की सेवा;' प्रियतम!
'जगजननी की रुचि है पर यह, पुत्री पर दया करें।' प्रियतम॥४१०॥

निश्चिन्त नृपति रानी को ले, पुत्री युग को, आये, प्रियतम !
लोचन मुनि के जब खुले, तभी वैसी ही की विनती, प्रियतम !
कन्या थी बड़ी गौर वर्णा, साँवरी कनिष्ठा थी, प्रियतम !
ज्यों दृष्टि पड़ी, मुनि के तन में विद्युत-सी व्याप गयी, प्रियतम ॥४११॥

आसन को छोड़, उठे, कम्पित था रोम-रोम उनका, प्रियतम !
थीं पलकहीन आँखें, अञ्जलि बँध गयी अचानक थी, प्रियतम !
क्या हुआ, पता क्या, अचरज में पड़कर रानी-राजा, प्रियतम !
करबद्ध खड़े थे, हँसती थी पर कन्या वह छोटी, प्रियतम ॥४१२॥

डरकर रानीने कर रखकर ढक दिये अधर उसके, प्रियतम !
आकुल मुनिने संकेत किया, हाथों को नचा-नचा प्रियतम !
छेड़ो मत, इसको करने दो करती जैसे यह है, प्रियतम !
चल पड़ा आँसुओं का प्रवाह अब था दृगसे उनके, प्रियतम ॥४१३॥

वह आम्रमञ्जरी-प्राशन की दो नगर वासियों की, प्रियतम !
नीली लहरों वाली तटनी तट परकी होली की, प्रियतम !
रसमयी पञ्चमी की लीला छप्पन शुभ मास तथा, प्रियतम !
दिन एक आज से पहले की लो देख तपोधन ने प्रियतम ॥४१४॥

आराधन पञ्चदेवता का नाना उपचारों से प्रियतम !
हो रहा जहाँ पर था, रानी सहयोग दे रही थीं, प्रियतम !
प्यारी प्राणों से बढ़कर उस अलबेली बेटी की प्रियतम !
रक्षाका भार सभी रखकर अपनी अनुजा पर हो प्रियतम ॥४१५॥

उस समय लली की वयस मास सत्रह में थे घटते प्रियतम !
दिन तीन; किंतु अब भी वह थी आँखें मूँदे रहती, प्रियतम !
वह एक नाम सुनकर अवश्य कुछ देर खोलती थी प्रियतम !
वह भी तबसे आये जब थे वे मुनि वीणाधारी प्रियतम ॥४१६॥

अथवा आती जब थीं अपने अप्रतिम लाल को ले, प्रियतम!
गोपेश-गेहिनी-शिशु-तनका सौरभ मिलता रहता प्रियतम!
उसके दृग-नलिन खुले रहते तब तक, वह किंतु जहाँ प्रियतम!
ओझल होता, पलकें तुरंत मुद्रित हो जाती थीं, प्रियतम ॥४१७॥

वे उसी प्रकार सलोने दृग खुलते, मीलित होते, प्रियतम!
गोदी में उसको लेकर थी मौसी यह सोच रही प्रियतम!
कम्पित होकर, पुलकित होकर, भरकर जल लोचन में प्रियतम!
रह-रहकर तन-सुधि भी खोकर, बहकर रस-वारिधि में प्रियतम ॥४१८॥

'होती जो एक अतुल ऐसी सुषमाशालिनी अहो, प्रियतम!
इसकी ही छोटी बहिन, भला, सुखदा सहोदरा ही, प्रियतम!
मैं उसे अङ्क में लिये सदा रहती या इसको ही, प्रियतम!
भगिनी के वक्षः स्थल पर यह शोभित या वह रहती प्रियतम ॥४१९॥

मन में यह अभिलाषा जगकर होगयी विकल मौसी प्रियतम!
तत्काल अनुग्रहमयी गिरा नभवाली गूँज उठी, प्रियतम!
यह है त्रिकाल सच, जननि, इसे छूकर चाहो कुछ भी प्रियतम!
मिलती ही है वह वस्तु, परम मङ्गल एवं होगा प्रियतम ॥४२०॥

मौसी के तन-मन फूल उठे, उस ओर हुई पूरी, प्रियतम!
देवों की सविधि अर्चना वह, ढप लगे तथा बजने, प्रियतम!
आकाश बना अरुणाभ, हुआ रवि-किरण-जाल धुँधला, प्रियतम!
आटोप अबीर-गुलाल रचित हो चला घना क्रम से, प्रियतम ॥४२१॥

उस दिन के उस अतिशय विशाल जन-समारोह में, हे प्रियतम!
क्षणभर के लिये लली उतरी मौसी की गोदी से, प्रियतम!
इतने में सभी रमणियों ने, जो थीं अहीरपुर की, प्रियतम!
रसभेंट लिये, रानी को, फिर मौसी को घेर लिया, प्रियतम ॥४२२॥

हो गयी लली कुछ दूर अहो! वैसे ही दृग मूँदे, प्रियतम!
ओठों पर थी मुसकान, भला, देती करताली थी, प्रियतम!
गा रही तथा कुछ थी धीरे, स्वर था इतना मीठा, प्रियतम!
भर चली मत्तता प्राणों में सबके अजान में ही, प्रियतम॥४२३॥

'मैं कौन, कहाँ पर हूँ, क्या है करना मुझको,' भूले, प्रियतम!
अञ्जलि में लिये गुलाल तरल सब के सब दौड़ चले, प्रियतम!
उस ओर जहाँ थी लली सृजन करती रसकी सरिता, प्रियतम!
नव-नव कुछ लहरों का सुन्दर आवर्त चित्र लिखती, प्रियतम॥४२४॥

'ठहरो, ठहरो! क्या करते हो?' राजा की यह बेटी; प्रियतम!
'है खड़ी यहाँ, पिस जाती यह, होता जो मैं न यहाँ,' प्रियतम!
स्वर उसी अनोखे बालक का, आभीरराजसुत का, प्रियतम!
सहसा सुखमत्त हुए सबके कानों में ध्वनित हुआ, प्रियतम॥४२५॥

ज्यों-के-त्यों सब रुक गये तथा दीखा यह सम्भव-सा, प्रियतम!
समवेत तरुण-तरुणी-वयस्क, सबके दृग छलक उठे, प्रियतम!
हँसता था केवल एक वही छोरा अहीर-नृप का, प्रियतम!
रानी की सुता रूप उसका पी रही दृगों से थी, प्रियतम॥४२६॥

पन्द्रह-सोलह पल जब बीते, प्रकृतिस्थ हुईं रानी, प्रियतम!
बोलीं एवं हँसकर, 'मेरे रे लाल, नैनतारा, प्रियतम!
'तू ही था, तू ही है, आगे निरवधि तू ही होगा,' प्रियतम!
'हरदम सँम्भाल रखनेवाला मेरी इस बेटी की!' प्रियतम॥४२७॥

लोचन खिल उठे सभी के, ज्यों यह उक्ति सुनी सबने, प्रियतम!
इतने में वही नीलसुन्दर बालक फिर बोल उठा, प्रियतम!
आँखें मटकाकर रानी से, 'दो पुरस्कार अब तो,' प्रियतम!
'दोगी तुरंत, या ले जाकर मुझको अपने गृह में?' प्रियतम॥४२८॥

'सस्ते छूटोगी, दे दोगी जो अभी यहीं कुछ भी;' प्रियतम!
'ले गयी कदाचित् घर पर तो दूना देना होगा,' प्रियतम!
'है एक लाभ इसमें अवश्य, इन अहो! लाड़िली के;' प्रियतम!
'लोचन फिर तो मुद्रित होंगे क्षणभर भी नहीं कभी।' प्रियतम॥४२९॥

'रे लाल! भला, घर चलकर तो तूँ देख सही, क्या-क्या;' प्रियतम!
'देती हूँ मैं तुझको; पर फिर कुछ दिन रहना होगा।' प्रियतम!
'अपना पूरा घर सौंप, अहो! सचमुच दूँगी तुझको;' प्रियतम!
'मनमानी तूँ करते रहना, रोकूँगी नहीं कभी।' प्रियतम॥४३०॥

हँस पड़ी ठठाकर, कहकर, कर धरकर शिशु का, रानी, प्रियतम!
चलने के लिये तुरंत हुआ सम्मत वह बालक भी, प्रियतम!
गोपेश-गेहिनी मुसकाकर बोलीं; 'साँवला अरे!' प्रियतम!
'आवास करेगा उजियारा फिर कौन नित्य मेरा?' प्रियतम॥४३१॥

'मैया री! अच्छा, सुन ले यह, तूँ समझ नहीं पायी;' प्रियतम!
'मैं एक साथ दोनों गृह में रह लूँगा, देख सही।' प्रियतम!
आरसी एक चम चम करती थी पड़ी पास में ही, प्रियतम!
मरकत-साँवर छोरा बोला होकर समक्ष उसके, प्रियतम॥४३२॥

'तेरे घर तो मैं स्वयं नित्य हूँ और रहूँगा ही;' प्रियतम!
'अब अहो! प्रतिच्छाया मेरी, रानी को यह दूँगा;' प्रियतम!
'इनकी हगपुतरी बेटीजी श्रीजी के साथ सदा;' प्रियतम!
'मेरी यह छाया भी खेले, मैं तो खेलूँगा ही।' प्रियतम॥४३३॥

कुञ्चित केशों से घिरा हुआ वह मुख नीला-नीला, प्रियतम!
हो गया मनोहर कितना था उस समय, कहूँ कैसे, प्रियतम!
जब आँख डूबती है उसमें, वाणी रुक जाती है, प्रियतम!
चलती है जब वह, मोहनता उसको ठग लेती है, प्रियतम॥४३४॥

जो हो, रसमयी विनोद, अहो! उस लघु वय के शिशु की, प्रियतम!
सुनकर विचित्र सबके मन की क्षणभर हो गयी दशा, प्रियतम!
अचरज था एक और भारी, सबको प्रतीति यह थी, प्रियतम!
'मैं हूँ सन्निकट अवस्थित, वह इस भाँति कह रहा है।' प्रियतम॥४३५॥

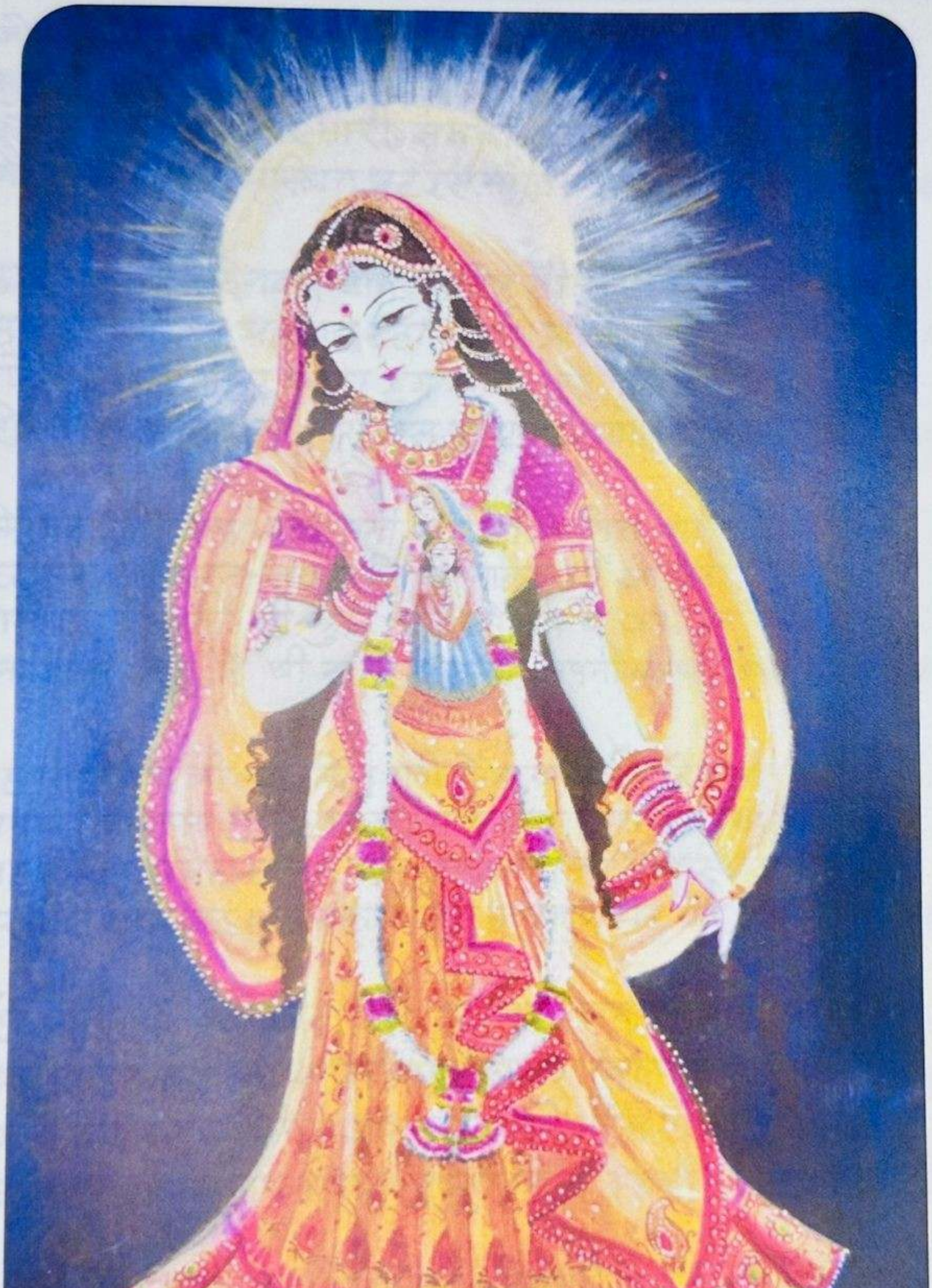
ढल पड़े देव दिनकर अब थे, फिर भी उल्लास नया, प्रियतम!
प्रतिपल अदम्य था जाग रहा सबके प्राणों में ही, प्रियतम!
गोरी घोरी, साँवर घोरा दृग में थे भरे हुए, प्रियतम!
हो भान कहाँ किसको कैसे इस दृश्य कालगति का, प्रियतम॥४३६॥

केवल थीं एक महारानी हो गयीं भ्रमित मानो, प्रियतम!
हटकर उस जन-समूह से वे बाहर थीं आ बैठीं, प्रियतम!
गम्भीर सोचती-सी कुछ थीं, लोचन थे अर्ध खुले, प्रियतम!
लाड़िली अङ्क में थी राजित, मुट्ठी अपनी बाँधे; प्रियतम॥४३७॥

'वह थी विनोद की बात, किंतु रानी में समा गयी।' प्रियतम!
बनकर लालसा बुद्धि-मन को मन्थन करने वाली, प्रियतम!
'यह बने कदाचित सम्भव सच जगजननी की रुचि से;' प्रियतम!
परघाँटी यदि वह आ सकती शिशु बनकर घर मेरे,' प्रियतम॥४३८॥

'हो जाती मैं निश्चिन्त उसे रखकर समीप इसके;' प्रियतम!
'यह खोल सलोनी आँखों को हँसकर खेला करती,' प्रियतम!
'आता क्षण वह जब कर-अम्बुज इसके पीले होते;' प्रियतम!
'वह घाँह साँवरा बनती या सङ्गिनी नित्य इसकी।' प्रियतम॥४३९॥

यह अहो! चित्तधारा विरमित हो, उससे पहले ही, प्रियतम!
रानी की आँखों में शत दस दिनकर की ज्योति भरी, प्रियतम!
श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी खड़ी नभ में थीं पूछ रही, प्रियतम!
है एक चाह भी अबतक जो पूरी न तुरंत हुई? प्रियतम॥४४०॥



'इन नील-देवता की छाया चिन्मयी अनूप हुई, प्रियतम !

'इन नील-देवता की छाया चिन्मयी अनूप हुई,' प्रियतम !
'कन्या बनकर उदरस्थल में तेरे प्रविष्ट होगी।' प्रियतम !
'रजनी है मङ्गलमयी परम पञ्चमी आज की जो,' प्रियतम !
'आनेवाली अब से होगी अप्रतिम सुहाग निशा।' प्रियतम ॥४४१॥

अन्तर्हित हुईं महादेवी, यह कहकर रानी से, प्रियतम !
फिर उसदिन के उत्सव का जब आया विराम शुभ था, प्रियतम
नारीदल एक ओर, नरदल उससे कुछ हट करके, प्रियतम !
नीली सरिता में अवगाहन करने लग गया वहाँ, प्रियतम ॥४४२॥

उस ओर महामाया ने की रच एक नयी लीला, प्रियतम !
हो गये महाराजा भावित रसमय कुछ भावों से, प्रियतम !
अप्रतिम जितेन्द्रिय थे, पर वे चञ्चल से क्षणिक हुए, प्रियतम !
फिर चाह तीसरी संतति की हो गयी प्रबल सहसा, प्रियतम ॥४४३॥

पहुँचे जब घर पर, संध्या थी हो चुकी, खिन्न वे थे, प्रियतम !
जगदम्बा के पदपद्मों पर सिर रखकर वे रोये, प्रियतम !
संधिनी रूपिणी रानी में संवित् छाया नीली, प्रियतम !
वह हुई व्यक्त उस रजनी में, नृप तब सब समझ सके, प्रियतम ॥४४४॥

ज्योतिर्मय यही अतीत दृश्य सब वर्तमान-जैसा, प्रियतम !
बनकर उन मुनि-पुंगव के था लोचन में समा गया, प्रियतम !
गोरी-साँवरी नृपति की दो छोरियाँ न दीखी थी, प्रियतम !
वे परदेवता युगल उनको प्रत्यक्ष दीखते थे, प्रियतम ॥४४५॥

पाकर मुनि का संकेत, नृपति, रानी को लिये हुए, प्रियतम !
बाहर उस सदन-कक्ष से थे आ गये, हाथ जोड़े, प्रियतम !
भीतर रह गयीं पुत्रियाँ दो, मुनि ने आरम्भ किया, प्रियतम !
अर्चन उनका विह्वल होकर, वाणी के पुष्पों से, प्रियतम ॥४४६॥

गम्भीर हुई गोरी छोरी सुनती थी श्लोकों को, प्रियतम !
उसकी भगिनी साँवरी किंतु रह-रहकर हँस देती, प्रियतम !
दो दण्ड बीतने पर सहसा मुनि की जब गिरा रुकी, प्रियतम !
श्यामा छोरी चपला उनसे बोली मीठे स्वर में, प्रियतम ॥४४७॥

'मुनिराज! थक गये होंगे सच अब तक तुम खड़े-खड़े;' प्रियतम
'आसन पर बैठो, अहो! श्रमित हो गयी खड़ी मैं तो।' प्रियतम !
इतना-सा ही कहकर उनसे, कर-अलक कँपा करके, प्रियतम !
अपनी फिर बड़ी बहिन से थी कहने लग गयी, भला, प्रियतम ॥४४८॥

'री! तू चुपचाप देखती है, मुनिवर भूखे होंगे;' प्रियतम !
'ये कोस न जाने कितने हैं चलकर घर पर आये।' प्रियतम !
'तू पूछ सही, लायें क्या हम, किस पर इनकी रुचि है?' प्रियतम !
'मेरे घर हैं तैयार नित्य वस्तुएँ सभी रस की।' प्रियतम ॥४४९॥

गोरी ने मन्द-मधुर हँसकर समझाया भगिनी को, प्रियतम !
रहने के लिये अचञ्चल, फिर करबद्ध हुई बोली, प्रियतम !
'ऋषिवर्य ! देव ! हम दोनों को पुत्रीवत् ही समझें;' प्रियतम !
'है पली लाड़ में श्यामा यह, बातूनी अतः बनी।' प्रियतम ॥४५०॥

'अब आप विराजें, कृपा करें, सेवा सब बतला दें;' प्रियतम !
'मैं स्वयं करूँगी, पल-पल में उत्साह नवीन लिये;' प्रियतम !
'यह भी कुछ कर देगी, फिर जो भूलें होंगी हमसे;' प्रियतम !
'उनको तो क्षमा करेंगे ही, विश्वास सत्य यह है।' प्रियतम ॥४५१॥

वाणी क्या थी उसकी, मानो धारा थी सुधामयी, प्रियतम !
मुनिवर को, अहो! और भी वह सुधिहीन लगी करने, प्रियतम !
इतने में पुनः साँवरी ने ऐसी चर्चा छेड़ी, प्रियतम !
सुनकर जिसको हँस पड़ी बड़ी बरबस ऊँचे स्वर से, प्रियतम ॥४५२॥

हो गयी समाधि शिथिल मुनि की, दैवी प्रेरणा हुई, प्रियतम !
भावों का संधिस्थल आया, माया-सी फिर फैली, प्रियतम !
आकर्षण अहो! छोरियों में यद्यपि था वैसा ही, प्रियतम !
असमोर्ध्व ईशता पर झीना आवरण एक आया, प्रियतम ॥४५३॥

उन महातपोधन के उर में, ऊसर जो अबतक था, प्रियतम !
अङ्कुर अभिनव वत्सलता का जग उठा, अहो! क्षण में, प्रियतम !
नृप-दुहिताओं के प्रति, निर्मल अत्यन्त ममत्व लिये, प्रियतम !
बढ़ते पल्लवित और पुष्पित होते न विलम्ब हुआ, प्रियतम ॥४५४॥

मध्याह्न हो चला था, श्यामा कर धारण कर ऋषि के, प्रियतम !
बोली, 'तुम हुए नये बाबा हम दोनों बहिनों के।' प्रियतम !
'अब आज इसी क्षण से, जो सब सहचरी हमारी हैं,' प्रियतम !
'वे भी इस भाँति मानकर ही सर्वदा पुकारेंगी।' प्रियतम ॥४५५॥

'हमसे है बड़ा सहोदर जो प्यारा अतिशय भाई,' प्रियतम !
'कानन में चरा रहा है वह इस समय धेनुओं को,' प्रियतम !
'संध्या होने पर आयेगा, उससे भी कह दूँगी,' प्रियतम !
'वह और समस्त सखा उसके ऐसा ही मानेंगे।' प्रियतम ॥४५६॥

'वे सब हैं पर अतिशय चञ्चल, जो छेड़ कहीं वे लें,' प्रियतम !
'तुम रुष्ट नहीं होना उनसे, उनका स्वभाव यह है।' प्रियतम !
'प्यारी अत्यन्त बहिन मैं हूँ उन सबकी ही, फिर भी,' प्रियतम !
'मुझको भी कभी-कभी सब वे देते हैं रुला, भला।' प्रियतम ॥४५७॥

'अब चलो, सरोवर में तुमको हम दोनों नहलायें,' प्रियतम !
'जिसमें प्रतिदिन हमको मैया, मौसी नहलाती हैं।' प्रियतम !
'कमलों से भरा हुआ वह है, निर्मल जल है उसका,' प्रियतम !
'सुन्दर विहंग हैं नित्य वहीं कलरव करते रहते।' प्रियतम ॥४५८॥

छोरी की सरस, सरल वाणी मुनिवर के प्राणों में, प्रियतम!
अनुपम मादकता थी क्रमशः भर रही, मौन वे थे, प्रियतम!
'क्या करें, कहें क्या उसे?' नहीं निर्णय कर पाते थे, प्रियतम!
भावों की विमल नीर धारा आँखों से थी बहती, प्रियतम॥४५९॥

दोनों के हाथों में ऋषि ने अपने को सौंप दिया, प्रियतम!
'जो रुचे, करो।' पल-पल उनकी अनुभूति बदलती थी, प्रियतम!
'हैं नृपति-तनूजा, नहीं, अहो। मेरी बेटी ये हैं,' प्रियतम!
फिर इष्टदेवता की झाँकी उनमें होने लगती, प्रियतम॥४६०॥

वह बड़ी राजपुत्री हँसकर जैसे-तैसे मुनि को, प्रियतम!
ले गयी सरोवर पर सचेत कर-करके नहलाया, प्रियतम!
श्यामा ने अङ्ग पोंछकर फिर परिधान दिया उनको, प्रियतम!
जैसे कठपुतली हों, उनने धारण कर लिया उसे, प्रियतम॥४६१॥

मध्याह्न-कृत्य भी कहने पर कर गये यन्त्रवत् ही, प्रियतम!
ले आयीं उसी कक्ष में वे उनका कर-युग पकड़े, प्रियतम!
आसीन हुए जब वे, उनसे बोली नृपलली बड़ी, प्रियतम!
'लाऊँ क्या, हे मुनीश! अब मैं भोजन की सामग्री?', प्रियतम॥४६२॥

कह उठी कनिष्ठा बहिन, 'अरी! भोली सचमुच तू है,' प्रियतम!
'हैं ध्यानमग्न मुनि, तो उनको तू व्यर्थ छेड़ती है!' प्रियतम!
'जैसे मैं कहती हूँ कर ले, चल, खीर बना लायें,' प्रियतम!
'खा लेंगे जो वे स्वयं, ठीक है; नहीं खिला देना।' प्रियतम॥४६३॥

फिर भी जब रुकी रही, लोचन उनकी ही ओर किये, प्रियतम!
ढलकी मुनि-दृग से बूँद, मिली सम्मति, हिलकर पलकें, प्रियतम!
हँसकर, आकर्षित लाली को करके, अनुजा बोली, प्रियतम!
'तू कर विश्वास, बात मेरी ऋषि मान सभी लेंगे।' प्रियतम॥४६४॥

वे चलीं, वहाँ पहुँचीं, जननी थी जहाँ प्रतीक्षा में, प्रियतम !
उसकी ग्रीवा में झूल, लली साँवरी लगी कहने, प्रियतम !
जबतक उसकी अनुपस्थिति में बातें जो हुईं वहाँ, प्रियतम !
सुनकर अवाक् दस पल मैया रह गयी अचम्भे से, प्रियतम ॥४६५॥

पायस- रन्धन की तैयारी उसने तुरंत कर दी, प्रियतम !
लाड़िली सलोने हाथों से प्रस्तुत कर ले आयी, प्रियतम !
समयोचित आसन आदि पूत विधिवत् सब रच करके, प्रियतम !
फिर हाथ जोड़ करके ऋषि से विनती कर खड़ी रही, प्रियतम ॥४६६॥

वे उठे विराज गये आकर, आचमन किया उनने, प्रियतम !
अग्रिम कर्तव्य तुरंत किंतु वे पुनः भूल बैठे, प्रियतम !
रच करके ग्रास लाड़िली ने अपने कर-सरसिज से, प्रियतम !
उनके मुख में रख दिया, अहो! जयघोष हुआ नभ में, प्रियतम ॥४६७॥

तन था गतिहीन, खा रहे थे वे खीर तथापि, भला, प्रियतम !
लाड़िली खिलाने वाली थी; इसलिये हुआ ऐसा, प्रियतम !
अन्यथा दशा उनकी ऐसी हो गयी उस समय थी, प्रियतम !
पायस तो दूर, नीरकण तक भीतर न उतर पाता, प्रियतम ॥४६८॥

आचमन कराकर लाली ने मुखवास दिया उनको, प्रियतम !
फिर नील सुकोमल मखमल की शय्या पर बैठाया, प्रियतम !
आरती लगी करने गाकर महिमा उनके तप की, प्रियतम !
अनुसरण साँवरी भी उसका कर रही सरसतम थी, प्रियतम ॥४६९॥

जो भूत-भविष्यत्-वर्तमान माधुरी स्वरों की है, प्रियतम !
उसका उद्गम जो है, जिसको छू सकी न बुद्धि-गिरा, प्रियतम !
जो नित्य सनातन अद्भुत है मीठा अनुपम, उसको, प्रियतम !
पा लिया छोरियों के स्वर में उन महातपस्वी ने, प्रियतम ॥४७०॥

क्षण में वे अन्तर्मुख होते, बाहर आते क्षण में, प्रियतम!
आखिर लग गये झूमने वे उठकर धीरे-धीरे, प्रियतम!
नीराजनपात्र लाड़िली के कर-नलिन-दलों से वे, प्रियतम!
लेकर विक्षिप्त चित्त होकर लग गये नृत्य करने, प्रियतम ॥४७१॥

हँसकर साँवरी, तान भरकर, नूपुर रुनझुन करके, प्रियतम!
उस तालबन्ध पर ही उनको सहयोग लगी देने, प्रियतम!
जाने ही बिना मुनीश मत्त अब अहो! लाड़िली की, प्रियतम!
करने प्रदक्षिणा लगे, लली लज्जित रह गयी खड़ी, प्रियतम ॥४७२॥

लगभग जब सवा घड़ी बीती मुनिवर की आँख खुली, प्रियतम!
भौंचक होकर उन दोनों को लग गये देखने वे, प्रियतम!
आदर से बड़ी लली उनको बैठा करके, बोली, प्रियतम!
थे अभी, मुनीश! आप भावित लोकोत्तर भावों से, प्रियतम ॥४७३॥

बस, अतुल आपके निर्हैतुक, निस्सीम अनुग्रह से, प्रियतम!
उसका दर्शन कर हम दोनों हो गयीं निहाल, भला, प्रियतम!
अब समय आपके संध्योचित कृत्यों का आया है, प्रियतम!
कासार-कूल पर चलें, यहीं रहकर अथवा कर लें, प्रियतम ॥४७४॥

मुनि अन्यमनस्क हुए आये सुन्दर उस सर पर ही, प्रियतम!
मज्जन करके दिनकर को जब वे अर्घ्य दे रहे थे, प्रियतम!
रवि ढले अस्तगिरि में, उनके दृगपथ में आ न सके, प्रियतम!
वे नृपति-छोरियाँ ही नभ में हो रही अवस्थित थीं, प्रियतम ॥४७५॥

हो करके चकित, दृष्टि उनने सर-तट पर जब डाली, प्रियतम!
वे ठीक वहाँ पर भी दोनों वैसी ही खड़ी मिलीं, प्रियतम!
दोनों ही ओर योगबल से अब एक समय में ही, प्रियतम!
देखा, युगपत् वे वहाँ और थीं यहाँ तीर पर भी, प्रियतम ॥४७६॥

विस्मित अत्यन्त हुए, फिर तो उत्तर की ओर तथा, प्रियतम !
पूरब-दक्षिण, ऊपर-नीचे, चारों कोनों में ही, प्रियतम !
वे देख गये पल में, उनकी पर दृष्टि जहाँ पड़ती, प्रियतम !
वे दो नरपाललली उनको मिलती थीं खड़ी वहीं, प्रियतम ॥४७७॥

मुनि के दृग से संसार हटा, बच गयीं ज्योतियाँ दो, प्रियतम !
थी एक नीलघन-सी, सुतप्त कनकाभ दूसरी थी, प्रियतम !
हो गयी सभी वृत्तियाँ लीन मन की उनके उनमें, प्रियतम !
अप्रतिम समाधि लगी उनकी वह सभी दृष्टियों से, प्रियतम ॥४७८॥

निस्पन्द देह मुनिवर की थी, नृपललियों ने उसको, प्रियतम !
जल से बाहर लाकर, गीला परिधान बदल करके, प्रियतम !
फिर उसी जलाशय के तट के संन्निकट वेशगृह में, प्रियतम !
ले जाकर बैठा दिया और दोनों हो गयीं खड़ी, प्रियतम ॥४७९॥

शारीरिक निस्पन्दता, अहो ! ज्यों-की-त्यों बनी रही, प्रियतम !
रजनी जाकर आयी शुक्ला सप्तमी शरद् पहली, प्रियतम !
दिन बीत गया, संध्या होकर वह रात पुनः बीती, प्रियतम !
हँसता प्रभात फिर था लौटा वह महाअष्टमी का, प्रियतम ॥४८०॥

अब तक दो दण्ड जहाँ बीते, रानी-नृप आते थे, प्रियतम !
कुछ दूर अवस्थित रह कर ही सब ढंग देख लेते, प्रियतम !
श्यामा समीप जाकर भी सब बातें बतला देती, प्रियतम !
निश्चिन्त लौटते नृप, रानी चिन्ता करती जाती, प्रियतम ॥४८१॥

जगदम्बा की अनुमति लेकर रानी चुपचाप वहाँ, प्रियतम !
षष्ठी-प्रदोष में, आगे के प्रातः, फिर संध्या में, प्रियतम !
बस, तीन बार जाकर अपनी दो, अहो ! बेटियों को, प्रियतम !
नहलाकर फिर शृंगार धरा किंचित थीं खिला सकी, प्रियतम ॥४८२॥

दो रात न सोयी बड़ी लली, प्रायः बैठी रहती, प्रियतम !
साँवरी बहिन की गोदी में सिर रखकर कुछ सोयी, प्रियतम !
छोटी के हठ कर लेने पर लाड़िली लेट जाती, प्रियतम !
पल बीस-तीस, फिर उठ जाती, करके प्रसन्न उसको, प्रियतम ॥४८३॥

जो हो, जब महा अष्टमी की दो घड़ी प्रथम बीती, प्रियतम !
मुनिवर की खुली समाधि, उठे धीरे-धीरे फिर वे, प्रियतम !
आकर के उस सर पर, उनने कालोचित कृत्य किये, प्रियतम !
आये फिर राजभवन में वे दोनों को साथ लिये, प्रियतम ॥४८४॥

वे अपने-आप वहाँ पहुँचे, रानी-अवनीश जहाँ, प्रियतम !
थे जोह रहे पथ पल-पल में बढ़ती उत्कण्ठा से, प्रियतम !
आठों अङ्गों से राजा ने प्रणिपात किया मुनि को, प्रियतम !
धरती पर बार-बार मस्तक रानी थीं झुका रही, प्रियतम ॥४८५॥

भर आया कण्ठ तपोधन का, जैसे बोलने चले, प्रियतम !
कर उठे अभय मुद्रा में, पर लग गये काँपने वे, प्रियतम !
भर गया स्वेद भी अङ्गों में, भावित इस भाँति हुए, प्रियतम !
वे खड़े रहे बारह-चौदह पल तक आँखें मूँदे, प्रियतम ॥४८६॥

जैसे-तैसे धीरज लाकर ललचाये लोचन से, प्रियतम !
श्रीमुख निहारकर बार-बार वे नृपति-छोरियों का, प्रियतम !
बोले, "हे रानी ! राजन् ! सच हो धन्य नित्य तुम ही," प्रियतम !
"जो इन अप्रतिम पुत्रियों की माता हो और पिता।" प्रियतम ॥४८७॥

'होने के लिये कृतार्थ परम मैं भी हूँ अतिथि हुआ,' प्रियतम !
'इस गृह में, जिसकी धरणी का कण-कण पावनतम है।' प्रियतम !
'छूकर इन दोनों के अभिनव पद अरुण सरोजों को,' प्रियतम !
'जिनका किञ्जल्क सुदुर्लभ है योगीश-मुनीशों को, प्रियतम ॥४८८॥

क्षणभर वे रुके, और निकली रसमयी पुनः वाणी, प्रियतम!
जैसे प्रसङ्ग की धारा को दे फेर शक्ति कोई, प्रियतम!
हे नृप दम्पति! इनने मेरी सुन्दर जो की सेवा, प्रियतम!
कोई भी कर न सका अब तक, कर सकी नहीं कोई, प्रियतम ॥४८९॥

मैं क्या इनको दूँ, किंतु सफल हो जाय वचन मेरा; प्रियतम!
इसलिये अवश्य कहूँगा कुछ दैवी इच्छा से ही; प्रियतम!
इस बड़ी लाड़िली के कर से अब बने रसोई जो, प्रियतम!
तत्क्षण रुजापहर हो, अक्षय, सुस्वादु अनूप तथा।' प्रियतम ॥४९०॥

'मुझको यह लगा, अभी मानो साँवरी कह रही हो,' प्रियतम!
'दिखलाकर अहो! लाड़िली को, 'वरदान मुझे देना।' प्रियतम!
'इसके प्रति पल-पल भाव, सदा अनुराग बढ़े मेरा,' प्रियतम!
'बस, मैं भी 'एवमस्तु' कहकर देता हूँ यही इसे।' प्रियतम ॥४९१॥

"जा रहा किंतु हूँ अब मैं तो, हे राजा! हे रानी!" प्रियतम!
"वे करुणामयी ललित अम्बा मुझको ले जाँय वहीं," प्रियतम!
"होगा जो भाग पुनः मेरा, आऊँगा इस गृह में," प्रियतम!
"देखूँगा आँखें भर-भरकर इन दोनों शिशुओं को।" प्रियतम ॥४९२॥

रुक गयी गिरा ऋषि की, रोने लग गये सिसक कर वे, प्रियतम!
रोने रानी लग गयीं, अहो! रो उठे विकल राजा, प्रियतम!
वह भाव-उदधि उनके दृग से उमड़ा जो, अब तक है, प्रियतम!
दे रहा प्राण, वत्सलता से सम्पुटित ईशता को, प्रियतम ॥४९३॥

साँवरी और लाड़िली अहा! मुनिवर से लिपट गयीं, प्रियतम!
'बाबा! बाबा! तुम फिर आना,' कहकर, भर कर आँखें, प्रियतम!
मुक्ताएँ फिर झर-झर साँवर-गोरे गालों पर जो, प्रियतम!
फैलीं, उनको रो-रोकर मुनि लग गये चयन करने, प्रियतम ॥४९४॥

जो क्रियाशील होती न कहीं रानी-नृप-मुनिवर में, प्रियतम!
उस समय अचिन्त्य शक्ति कोई शासित करनेवाली, प्रियतम!
आसन्न-अनागत-गत समस्त इस दृश्य तमाशे को, प्रियतम!
हो जाती अहो! दशा दसवीं उनकी व्याकुलता से, प्रियतम ॥४९५॥

जो हो, प्रवाह यह भावों का हो गया नियन्त्रित-सा, प्रियतम!
ऋषिपद में गिरकर पुनः-पुनः लालियों को साथ लिये, प्रियतम!
उत्तर के निर्झर तक उनको पहुँचाकर, अनुमति पा, प्रियतम!
रानी-नृप लौटे, पागल से मुनि समा गये वन में, प्रियतम ॥४९६॥

इसके पश्चात् वर्ष पूरा होकर फिर से आयी, प्रियतम!
तिथि यही शरद् की संध्या थी नवरात्र-अष्टमी की, प्रियतम!
महिषी-अवनीश चले गृह से ज्यों, नद्ध इतने में ही, प्रियतम!
आया आदेश लिये कुल के गुरुदेव महाऋषि का, प्रियतम ॥४९७॥

आने की आवश्यकता अब तुम दोनों के न रही, प्रियतम!
सहचरी-वर्ग के सहित युगल दुहिता के द्वारा ही, प्रियतम!
नवनीत-दूध-दधि-घृत, जितना वे बिना परिश्रम के, प्रियतम!
ढो सकें, भेज देना कल तुम दो घड़ी दिनस चढ़ते, प्रियतम ॥४९८॥

अतएव सदा की भाँति वहाँ दोनों वे नहीं गये, प्रियतम!
होते ही सुप्रभात, भरकर उन सभी वस्तुओं को, प्रियतम!
सोने के लघु-लघु कलशों में रानी ने भेज दिया, प्रियतम!
रखकर सिरपर कन्याओं के शत-शत सहचरियों के, प्रियतम ॥४९९॥

वे चलीं राजपथ से पहले, फिर तो अरण्यपथ ही, प्रियतम!
सुन्दर उनको प्रतिभात हुआ टेढ़ी पगदंडी का, प्रियतम!
दोनों ही ओर लताएँ थीं फूलों से लदी हुई, प्रियतम!
अत्यधिक फलों का भार लिये हो रहे नमित तरु थे, प्रियतम ॥५००॥

गा रहे विहंगम थे अगणित रागिणी सरस ऐसी, प्रियतम।
गन्धर्व-रमणियाँ भी जिसकी छू सकीं न छाँह कभी, प्रियतम।
सौ-दो सौ पद के अन्तर से निर्मित पावस-जल से, प्रियतम।
छोटे ह्रद शतशः थे, जिनमें प्रस्फुटित कंज अब थे, प्रियतम॥५०१॥

उड़कर गुन-गुन करता समूह भौंरों का आता था, प्रियतम।
थी सत्य रसीली मति उसकी अपहृत हो रही वहाँ, प्रियतम।
लाड़िली आदि सबके तन से निःसृत उस सौरभ को, प्रियतम।
पाकर उनके मुख को अभिनव अरविन्द समझ करके, प्रियतम॥५०२॥

वे इसी मधुर पथ से पहुँचीं आश्रम पर गुरुवर के, प्रियतम।
अर्चा उन सब कुमारियों की ऋषि परम सिद्ध ने की, प्रियतम।
भावों की भेंट समर्पित कर फिर पट रजःस्थल का, प्रियतम।
परिवर्तन कर, तन्मय होकर उनको कर दिया विदा, प्रियतम॥५०३॥

उत्तर की पगडंडी से वे लौटीं, रवि-कुण्ड मिला, प्रियतम।
श्यामा हठ कर बैठी, इसमें मैं आज नहाऊँगी, प्रियतम।
थी सदा साँवरी की रुचि जो, थी वही लाड़िली की, प्रियतम।
प्यारी सहचरी सयानी ने दी राय किंतु ऐसी, प्रियतम॥५०४॥

'री! क्यों न चलें फिर तो, अब वह अत्यन्त सन्निकट है; प्रियतम।
'सुन्दरीसरोवर पर ही, जो रमणीय अप्रतिम है;' प्रियतम।
पीने भर पानी के बदले, निर्झर पीयूष मिले, प्रियतम।
दक्षिण कर बहिन लाड़िली का धरकर साँवरी चली, प्रियतम॥५०५॥

पञ्चम शतक समाप्त

श्रीकृष्णका पूर्वराग

ऋतु शरद् विराजित थी वन में, शुक्ला नौमी तिथि थी, प्रियतम!
प्रातःवेला थी बीत चुकी, संगव था हुआ अभी, प्रियतम!
सुन्दर अनेक शिशुओं को ले, जो समवयस्क सब थे, प्रियतम!
जा मस्त रहा था एक वहाँ बालक धीरे-धीरे, प्रियतम॥५०६॥

साँवर था आगे-पीछे थीं उसके चलती गायें, प्रियतम!
रुकता रह-रहकर था किंचित्, फिर फूँक वेणु देता, प्रियतम!
ऐसी लहरी निःसृत होती, जो प्ररित हो जाती, प्रियतम!
नभ में, समीर, रवि में, जल में, थल में, मन में, सबके, प्रियतम॥५०७॥

हो जाता धर्म-विपर्यय था चर-अचर-समूहों में, प्रियतम!
वह नाद मात्र बच जाता था, मिटकर सबकुछ मन से, प्रियतम!
बहती इतने में अन्य लहर, जो चेत करा देती, प्रियतम!
कौतुक होता था बालक का, हँसता वह देख इसे, प्रियतम॥५०८॥

'भैयाओ! एक जानता हूँ मैं मन्त्र रहस्यभरा,' प्रियतम!
'उसको पढ़कर वंशी में स्वर भर देता हूँ ऐसा,' प्रियतम!
'जो सुने, वही पागल-पगली हो जाय, और तो क्या,' प्रियतम!
'देखो इन पाँच तत्व पर भी इसका परिणाम भला।' प्रियतम॥५०९॥

कहकर साँवर ने दिखलाया रत्नों के पर्वत को, प्रियतम!
फिर गूँजा क्षणभर वेणु, अहो! हीरे-पुखराज गले, प्रियतम!
पीली उज्ज्वल धारा बनकर बह चले सामने ही, प्रियतम!
गायें पीछे की ओर कूद, लग गयीं रँभाने-सी, प्रियतम॥५१०॥

साँवर अब बायीं ओर मुड़ा, नीलम-सी लहरें थीं, प्रियतम!
सरिता में उठती, उसपर भी उसने जादू डाला, प्रियतम!
पूरी प्रवाहिणी का ही जल पल में आवर्त बना, प्रियतम!
जम गया दूसरे क्षण फिर वह होकर हिम धरती-सा, प्रियतम॥५११॥

उन अगणित नीर-विहंगों के तन अक्षत रहकर भी, प्रियतम।
पद यन्त्रित थे हिम के भीतर, पाँखें, बस, हिलती थीं, प्रियतम।
आवर्तस्थल था दीख रहा वापी विशाल जैसा, प्रियतम।
जलचारी मत्स्य आदि सब थे निस्पन्द पड़े जिसमें, प्रियतम॥५१२॥

ऊपर थे पद्मबन्धु हँसते, हँस पड़ा साँवरा भी, प्रियतम।
ध्वनि हुई वंशिका से निस्सृत दिनमणि को लक्ष्य किये, प्रियतम।
वह शारदीय रवि-किरण राशि बन गयी सुधा शशि की, प्रियतम।
नवमी का दिवस-काल दस पल राका से भासित था, प्रियतम॥५१३॥

गति हुई धेनुकुल, खगकुल की, अलिकुल की, तरुकुल की, प्रियतम।
उतने क्षण रजनी कालोचित, दर्शक केवल शिशु थे, प्रियतम।
'अब करो पूर्ववत् इनको,' यों बोले वे, बस, निकला, प्रियतम।
स्वर ललित, बह चला नीर सरित, उग उठे अंशुमाली, प्रियतम॥५१४॥

साँवर बोला, 'शीतल-सुरभित-जीवनदाता सबको,' प्रियतम।
'है पवन, किंतु देखो मेरा जादू तुम इस पर भी,' प्रियतम।
'जैसे ही मैं फूँकूँगा स्वर सम्मोहित कर इसको,' प्रियतम।
'होगा यह लीन एक मेरी नासा-मुख वंशी में,' प्रियतम॥५१५॥

ऐसा ही हुआ, सभी बालक अचरज में भरे हुए, प्रियतम।
लग गये देखने खेल, अहो! क्या बात दूर पर की, प्रियतम।
प्रत्येक सखा को अनुभव था हो रहा, न चलती है, प्रियतम।
उनकी ही साँस, किंतु तब भी जीवित सब थे सुख से, प्रियतम॥५१६॥

पल बीस-पचीस बीतने पर गतिशील समीर हुआ, प्रियतम।
सुनकर रसमयी तान फिर से, शिशुओं ने प्रश्न किया, प्रियतम।
'हम, अरे कन्हैया भैया! थे कैसे सब बचे हुए,' प्रियतम।
'है सुना, श्वास रुक जाने पर मर जाता है प्राणी।' प्रियतम॥५१७॥

हँस-हँसकर समाधान उनका कर रहा साँवरा था, प्रियतम!
देखो, वंशी के छिद्रों से जो सुधा बरसती है, प्रियतम!
कोई भी क्षणभर एक बार सपने में भी पी ले, प्रियतम!
हो जाता है वह सदा अमर, तुम नित्य पी रहे हो। प्रियतम॥५१८॥

निर्मल था व्योम, दृष्टि उसपर अब गयी साँवरे की, प्रियतम!
बोला, है ऐसा कौन, गगन जो ले समेट नख में, प्रियतम!
'मैं अभी बजाकर वंशी यह करके दिखलाता हूँ' प्रियतम!
'नभ, नाचें पद अनाम नख में मेरे आ सिमटेगा।' प्रियतम॥५१९॥

धारा-सी मधु की क्षणभर फिर बह चली वंशिका से, प्रियतम!
इतने में जो अनुभूति हुई प्रत्येक सखा शिशु को, प्रियतम!
है सत्य अनिर्वचनीय शाख- शशधर के न्याय कहूँ, प्रियतम!
अवकाशदानदाता केवल तुम एक बच रहे थे, प्रियतम॥५२०॥

अब पुनः बहा पीयूष सरित, तब भावसमाधि खुली, प्रियतम!
शिशुओं की, लगे नहाने वे सब झूम-झूम उसमें, प्रियतम!
शत-शत हंसिनी-हंस दौड़े, जल-खगगण उड़ आये, प्रियतम!
उस ओर सहस्र मयूरों के दल ने आ घेर लिया, प्रियतम॥५२१॥

रव भरते समय जिधर झुकती ग्रीवा थी साँवर की, प्रियतम!
दल मत्त विहंगों का तत्क्षण गतिशील उधर होता, प्रियतम!
पल-पल में सरस बदलती थी उनकी भङ्गीधारा, प्रियतम!
हाथों से पेट थामकर थे हँस रहे सभी शिशु वे, प्रियतम॥५२२॥

ज्यों होता क्षणिक विराम, अहो! मधुभरे वेणुरव का, प्रियतम!
रह-रहकर, जान-बूझकर ही साँवर यह करता था, प्रियतम!
उस समय विहंगों में आती प्रेमोत्थित जड़िमा जो, प्रियतम!
पा सकीं न एक निदर्शन भी उसका ब्रह्माणी भी, प्रियतम॥५२३॥

टप-टप सुमिष्ट बूँदें तरु की शाखा से, पल्लव से, प्रियतम !
फूलों से, बेलि समूहों से, झर रही निरन्तर थीं, प्रियतम !
स्वरलहरी के चालन से ही विहगों की चों-चों को, प्रियतम !
साँवर ऊपर कर देता था, बूँदें गिरतीं उनमें, प्रियतम ॥५२४॥

बारी अब वन्य चतुष्पद की आयी रस लेने की, प्रियतम !
टेरी वंशिका साँवरे ने उस गहन वनस्थल में, प्रियतम !
हों हुए निमन्त्रित ऐसे वे, द्वीपी, करेणु-करिणी, प्रियतम !
भल्लूक-मृगी-मृग आदि दौड़ आ जुड़े वहाँ क्षण में, प्रियतम ॥५२५॥

हैं बैरहीन ये नित्य यहाँ, शिशु सभी जानते थे, प्रियतम !
भय हुआ न किंचित् भी उनको चिहुँकी न गाय तक भी, प्रियतम !
एवं पयस्विनी अमृतमयी ज्यों प्रसरित पुनः हुई, प्रियतम !
वे हुए भाव-भावित चौपद, जैसे न कह सकूँगी, प्रियतम ॥५२६॥

पल बीस-पचीस खेल कर-कर, रसमत्त बना उनको, प्रियतम !
साँवर ने स्वर सञ्चालन से वन में फिर भेज दिया, प्रियतम !
शिशुओं ने पूछा, 'कान्हा रे ! कैसे ये चले गये,' प्रियतम !
'हग बन्द किये, वंशी जब थी बज रही यहीं, फिर भी,' प्रियतम ॥५२७॥

साँवर के अरुणिम अधरों का सुस्मित वह हास बना, प्रियतम !
फिर तान एक मधुभरी छिड़ी, निर्णय शिशु कर न सके, प्रियतम !
पूरब से या दक्षिण से है, आ रही प्रतीची से, प्रियतम !
या उत्तर से कि धरातल से ध्वनि यह या ऊपर से, प्रियतम ॥५२८॥

बोला साँवर, 'सर्वत्र समा जाती है स्वरलहरी,' प्रियतम !
'मैं जिसको जहाँ जभी इसकी अनुभूति कराता हूँ,' प्रियतम !
'उसको ही वहीं प्रतीति तभी होने लग जाती है,' प्रियतम !
'तत्क्षण उसके तन-मन की गति होती है लीन वहीं,' प्रियतम ॥५२९॥

ऐसे वंशी ध्वनि का प्रभाव शिशुओं को दिखलाता, प्रियतम !
हँस-हँसकर तथा स्वयं वह रस पीता मृगछौना-सा, प्रियतम !
चञ्चल साँवर बालक आया अतिशय सुरम्य वन में, प्रियतम !
था एक जहाँ कासार बृहत्, तट फटिक-विनिर्मित थे, प्रियतम ॥५३०॥

उद्भासित दिनकर-किरणों से सरसिज-संकुल जल था, प्रियतम !
थी तथा तड़िल्लहरी-जैसी आभा भी फैल रही, प्रियतम !
बाला एवं सहचरियों के अवगाहन की क्रीड़ा, प्रियतम !
निर्बाध चल रही थी, तरु थे झंकृत कङ्कण-रव से, प्रियतम ॥५३१॥

कटि से ऊपर थे अङ्ग सभी आवरणहीन सबके, प्रियतम !
भीगी अलकों का जालमात्र रह-रहकर ढक लेता, प्रियतम !
अप्रतिम रूप की उन्मादी धारा को, भावों को, प्रियतम !
पौगण्ड-किशोर-सन्धि पर जो जगकर थे झाँक रहे, प्रियतम ॥५३२॥

उस जलविहार से अरुण हुए नयनों की सुषमा से, प्रियतम !
टोना-सी शक्ति बिखरती थी मोहित करने वाली, प्रियतम !
त्रिभुवन थिर जङ्गम को; यह भी छोड़ो, अचरज देखो, प्रियतम !
हो गयी रुद्ध गति वहाँ, भला, त्रिभुवन-मन-मोहन की, प्रियतम ॥५३३॥

सचमुच था विश्वविमोहन वह सुन्दर साँवर छोरा, प्रियतम !
गायों को लिये अहो! जैसे पहुँचा, ज्यों दृष्टि पड़ी, प्रियतम !
उन आर्द्रकुन्तलों से मण्डित आनन पर बाला के, प्रियतम !
वंशी चुप हुई, हुईं अपलक वे नित्य-चपल आँखें, प्रियतम ॥५३४॥

दो रसमय हृदयों के जब है आता क्षण जुड़ने का प्रियतम !
उसका संयोग कहाँ कैसे लगता है, क्या जाने, प्रियतम !
वे सरल मुधमुँहे-से शिशु, जो सहचर थे साँवर के, प्रियतम !
अतएव सखा की चादर को कर्षित कर वे बोले, प्रियतम ॥५३५॥

भैया! क्या है तू देख रहा, तेरे श्रीभैया की; प्रियतम!
भीहिनें एवं उनकी सखियाँ हैं नहा रही सुख से; प्रियतम!
चल, चल, बिलम्ब मत कर, आगे क्रीड़ा करनी हो तो, प्रियतम!
या नहीं नहाने की रुचि हो तेरी भी तो कह दे; प्रियतम! ॥५३६॥

साँवर ने उत्तर नहीं दिया, ली दृष्टि हटा उसने, प्रियतम!
अविलम्ब उस तरफ से फिर वह चुपचाप चल पड़ा भी, प्रियतम!
प्रतिदिन के निर्धारित पथ से गृह की ओर बढ़ा प्रियतम!
उल्लास नित्य रहता, उसकी छाया तक पर न रही, प्रियतम ॥५३७॥

शिशुओं ने किया प्रयास अथक, जिससे हँस पड़े सखा, प्रियतम!
कृत्रिम मुसकान कभी क्षणभर होठों पर, पर आती, प्रियतम!
कोई कौतुक न हुआ अतुलित, लग सकी न होड़ तथा, प्रियतम!
उनमें वह वेणु बजाने की या शृङ्ग फूँकने की, प्रियतम ॥५३८॥

आने पर छाक उसे लेकर साँवर अवश्य बैठा, प्रियतम!
भोजन-रस लेने वालों का मण्डल भी वहीं बना, प्रियतम!
केवल दो ग्रास लिये पर जब उस दिन साँवर ने ही, प्रियतम!
खाते कैसे शिशु वे, सब कुछ सामग्री पड़ी रही, प्रियतम॥५३९॥

कोमल तृणराशि हरित पर थी गायें सब घूम रही, प्रियतम!
अपने चालक-दल से चालित, उन भिन्न दिशाओं में, प्रियतम!
अपराह्नकाल तक कानन में गिरिवर के परिसर के, प्रियतम!
वे भी पर सत्य पेट भरकर चर सकीं न आज भला, प्रियतम॥५४०॥

साँवर की अकस्मात् ऐसी अत्यन्त उदासी के, प्रियतम!
कारण का मित्रमण्डली वह अनुमान लगाती थी, प्रियतम!
कोई सोचता कहीं क्या तो मुझसे ही भूल हुई, प्रियतम!
या और किसी शिशु से चिढ़कर हो रहा खिन्न यह है, प्रियतम॥५४१॥

आती यह बात किसी के भी मन में भोरेपन की, प्रियतम!
'क्षण भर में, अहो! अलक्ष्य नजर लग सकती है इसको; प्रियतम!
'इसलिये सदा मैया जैसे करती है, मैं कर दूं'; प्रियतम!
गोपुच्छ फिरा साँवर पर वह परिणाम देखता था, प्रियतम॥५४२॥

श्रीभैया तथा उसीने जब संकेत किया अपने, प्रियतम!
उस मित्र सुबल सद्गुणशाली शिशु को तब, बस, ये दो, प्रियतम!
ये बात जान पाये सर पर आँखों के मिलने की, प्रियतम!
साँवर की और बहिन भोरी गोरी सहोदरा की, प्रियतम॥५४३॥

जब लगा प्रतीची क्षितिज देव रवि का स्वागत करने, प्रियतम!
साँवर गो शिशुओं को लेकर वासस्थल पर आया, प्रियतम!
प्रतिदिन वंशीरव सुन पड़ता उपवन की सीमा से, प्रियतम!
नीरव आगमन किंतु उसका था आज यही पहला, प्रियतम॥५४४॥

उद्विग्न हुए सब-के-सब ही आ गये ग्रामवासी, प्रियतम!
मैया छाती से लगा उसे बेहाल हो रही थी, प्रियतम!
अपने अनमोल नीलमणि का आनन उदास इतना, प्रियतम!
उसने देखा था कभी नहीं अब तक सपने में भी, प्रियतम॥५४५॥

रोती जननी को देख हँसी सुखी साँवर हँसता, प्रियतम!
देता प्रबोध भी कहकर यह, 'री! स्वस्थ सत्य मैं हूँ!' प्रियतम!
ब्यारू के लिये किंतु जब वह बैठा, तब जननी को, प्रियतम!
विश्वास करा न सका खाकर आधे का आधा ही, प्रियतम॥५४६॥

दशमी के प्रातः भी उसका वैसा ही हाल रहा, प्रियतम!
मैया के हाथों से प्रस्तुत नवनीत, दही मीठा, प्रियतम!
औटाया हुआ दूध गाढ़ा, ओदन, मिष्टान्न, सभी, प्रियतम!
वस्तुएँ कलेवा की जो थीं साँवर ने चख भर लीं, प्रियतम॥५४७॥

गोचारण के मिस से तुरंत अटवी की ओर चला, प्रियतम।
टोली गायों की, मित्रों की वैसी ही संग चली, प्रियतम।
पर अन्यमनस्कपना जो था साँवर का कल-सा ही, प्रियतम।
शिशुओं से छिप न सका उसके किंचित् हँसने पर भी, प्रियतम॥५४८॥

दैनन्दिन वह अरण्य का क्रम गोसंरक्षण वाला, प्रियतम।
पूरा कर साँझ समय साँवर वैसे ही घर लौटा, प्रियतम।
था हुआ छाक-भोजन वन में, बस, नाम मात्र का ही, प्रियतम।
कहने के लिये पुनः उसने कर दी ब्यारू लीला, प्रियतम॥५४९॥

मैया कैसे धीरज धरती, थे प्राण विकल उसके, प्रियतम।
उन निपुण वैद्यवर को उसने बुलवाया छिप करके, प्रियतम।
भोरी थी वह, है नहीं, न था, होगा न कभी कोई, प्रियतम।
जो उसके नित्य निरामय उस शिशु की नाड़ी परखे, प्रियतम॥५५०॥

आयी अब एकादशी वही अङ्कुशरूपा अघ की, प्रियतम।
केवल मैया ही नहीं, अखिल पुर वासी व्रती हुए, प्रियतम।
संकल्प किया यह सबने, श्रीनारायण सदय बनें, प्रियतम।
नीरोग नीलसुन्दर हो, बस, निर्जल रह गये सभी, प्रियतम॥५५१॥

उस ओर दशा क्या थी मन की साँवर के, कौन कहे, प्रियतम।
दोनों वे सखा सयाने, बस, गति-विधि थे देख रहे, प्रियतम।
हृत्तल में उठी हुई लहरें प्रतिचित्रित हो जातीं, प्रियतम।
आनन पर, वह उनको रोके कितना भी क्यों न भले, प्रियतम॥५५२॥

आया जब कर्णिकार-वन दृग उसके थे भर आये, प्रियतम।
पिङ्गल थी जहाँ शिला गिरि की, बैठा वह आज नहीं, प्रियतम।
अपने पीले दुकूल पर ही थी दृष्टि गयी उसकी, प्रियतम।
कम्पन था हुआ क्षणिक उसके दो बार कलेवर में, प्रियतम॥५५३॥

गहरी आँखों से अरुण नलिन-दलको उसने देखा, प्रियतम!
प्रस्वेद कपोलों पर उसके तत्क्षण भर आया था, प्रियतम!
थी उड़ी हंसिनी जब जल-कण उच्छलित हुए कुछ थे, प्रियतम!
साँवर ने ठीक उसी क्षण था अपना लिलार छूआ, प्रियतम॥५५४॥

पीने पिरोइनी आयी थी निर्मल जल सरिताका, प्रियतम!
लहरों के कुछ छींटे उसके मस्तक पर बिखर गये, प्रियतम!
किंचित्-सा कृष्णा-अंश उसके रोओं का भीग गया, प्रियतम!
साँवर था देख रहा, उसने अपनी अलकें छू लीं, प्रियतम॥५५५॥

दस पाँच सखा उसके जल में सहसा थे कूद पड़े, प्रियतम!
करने के लिये प्रसन्न उसे, तट पर था वह बैठा, प्रियतम!
भहरा उठती उनके मुख पर चिकुरावलि जब भीगी, प्रियतम!
जड़िमा साँवर के तन में थी सुस्पष्ट दीख जाती, प्रियतम॥५५६॥

जो उसी जलाशय के समीप उत्तुङ्ग एक तरु था, प्रियतम!
दो दिवसों से उसके नीचे आकर रुक जाता था, प्रियतम!
वन जाते और लौटते भी आँखें उसकी उठतीं, प्रियतम!
सर-तट की ओर देख लेता आहट-सी वह लेता, प्रियतम॥५५७॥

यों चतुर निरन्तर सहचर वे दोनों थे परख रहे, प्रियतम!
साँवर के मनोभाव को, पर रखकर सुगुप्त उसको, प्रियतम!
करते थे परामर्श छिपकर, दोनों किस भाँति करें, प्रियतम!
प्राणों के प्राण सुहृद वर की, किंचित् सहायता भी, प्रियतम॥५५८॥

जो थीं कल्याणमयी अम्बा आदरणीया सबकी, प्रियतम!
गैरिकवसना कुटीरदेवी महिमा अपार वाली, प्रियतम!
अणिमादि सिद्धियाँ छाया में जिनकी लोटा करतीं, प्रियतम!
उनसे ये परिचित थे, इनपर थी कृपा बड़ी उनकी, प्रियतम॥५५९॥

दोनों की राय हुई, चलकर कह दें सब कुछ उनसे, प्रियतम !
वे परम अनुग्रहमयी हमें पथ उचित बता देंगी, प्रियतम !
है छिपा न कुछ उनसे, पर यह कर्तव्य हमारा है, प्रियतम !
स्वाहा हो जाय भले सब कुछ, साँवर को सुखी करें, प्रियतम ॥५६०॥

इसलिये द्वादशी तिथि का जब अरुणोदय हुआ वहाँ, प्रियतम !
सर्वथा अलक्षित सबसे वे आश्रम पर जा बैठे, प्रियतम !
अम्बा के पद पर सिर रखकर बातें सब बतलायीं, प्रियतम !
वे हँसीं कुटीरवासिनी दे आलिङ्गन दोनों को, प्रियतम ॥५६१॥

'मैं अभी साथ चलती हूँ, तुम निश्चिन्त रहो, यह तो;' प्रियतम !
'आमुख है परम सुखद भावी सुन्दर उस अभिनय का।' प्रियतम !
वे तेजोमयी उठीं कहकर पहुँची निमेष में ही, प्रियतम !
बालक दोनों का कर पकड़े आभीर-राजगृह में, प्रियतम ॥५६२॥

साँवर की वह उदास मैया दौड़ी, पद पकड़ लिये, प्रियतम !
लोचन थे बरस रहे उसके, इस ओर भगवती के, प्रियतम !
फिर बँधे एक डोरी में हों एवं आकर्षित हों, प्रियतम !
यों हुए इकट्ठे सभी वहाँ पुर-नरनारी पल में, प्रियतम ॥५६३॥

नीरव थे सभी, चित्त पर अब हो रहा प्रफुल्लित था, प्रियतम !
उन पर्णकुटीरवासिनी की इस समय उपस्थिति से, प्रियतम !
सबका अनुभव यह था, सबकी रुचि ये रख देती हैं, प्रियतम !
सर्वथा असम्भव को भी ये सम्भव कर देती हैं, प्रियतम ॥५६४॥

प्राणों का प्राण साँवरा यह अब रोगहीन होगा, प्रियतम !
आयी हैं ये सच हम सबको देने ही भीख यही, प्रियतम !
ये बात जानने वाली हैं सबके अन्तस्तल की, प्रियतम !
प्रत्यक्ष हमारे व्रत का फल मिल रहा अभी यह है, प्रियतम ॥५६५॥

जो हो, पल सात-आठ पूरित सुखसिक्त मनोरथ से, प्रियतम!
बीते जब, पर्णकुटीवाली देवी मुसका करके, प्रियतम!
साँवर की मैया के सिरपर कर वरद फेर करके, प्रियतम!
बोलीं रुक-रुककर कण्ठ अहो! उनका भी भर आता, प्रियतम॥५६६॥

'री गोपराजरानी! अपनी जेठानी से कह दे,' प्रियतम!
'जो नगर महादेवी से है प्रतिपालित, वह उसमें,' प्रियतम!
'जाकर नरपाल-गेहिनी की वृद्धा उस जननी से,' प्रियतम!
'मिल लेगी, रहती है अब वह जामाता के घर ही,' प्रियतम॥५६७॥

'सुन्दर अत्यन्त उपाय एक निर्दोष अनोखा-सा, प्रियतम!
'वृद्धा बतला देगी अतिशय तुम सबको सुखकारी;' प्रियतम!
'तू कर लेना, तेरा, मेरा, इस अखिल विश्व का ही;' प्रियतम!
'उरहार अमोल नीलमणि यह रोगी न कभी होगा।' प्रियतम॥५६८॥

'हे भगवति! सही स्वस्थ मैं हूँ, मैया तो भोली है;' प्रियतम!
'मुझमें अत्यन्त मोहवश है चिन्ता करती रहती;' प्रियतम!
यह कहता, हँसता इतने में साँवर आ गया वहाँ, प्रियतम!
देवी के पदवन्दन कर कुछ लज्जित-सा खड़ा हुआ, प्रियतम॥५६९॥

गैरिकवसना अम्बा ऊँचे स्वर से हँस पड़ीं भला, प्रियतम!
साँवर को अपने उर में ले, छूकर ठोड़ी उसकी, प्रियतम!
आँखें छलकीं पर नेह-लोर बाहर वह आ न सका, प्रियतम!
होकर संयत-सी फिर बोलीं वे लक्षित कर सबको, प्रियतम॥५७०॥

'जननी यह नित्य साँवरेकी अप्रतिम भागवाली,' प्रियतम!
'भोरी ही नहीं, बावरी भी हरदम सचमुच है ही,' प्रियतम!
'इसका पर लाल सलोना अब हो गया सयाना है;' प्रियतम!
'मानेगी क्या यह इतना भी कोई कहकर देखो।' प्रियतम॥५७१॥

फिर तो देवी के अञ्चल में चञ्चल होकर अपना, प्रियतम !
श्रीमुख निलीन कर साँवर ने बिनती-सी कुछ कर दी, प्रियतम !
केवल सुन सकीं उसे वे ही, स्वीकार कर लिया भी, प्रियतम !
'ऐसा ही हो'- कहकर, सहला-सहलाकर कच उसके, प्रियतम ॥५७२॥

जा बैठा साँवर अब अपनी मैया की गोदी में, प्रियतम !
मैया खिल उठी, प्रसन्न वदन लखकर अपने सुत का, प्रियतम !
सबका मन डूब गया नीले आनन्द-हिलोरों में, प्रियतम !
कल्याणी वे देवी फिर जब बोलीं तब चेत हुआ, प्रियतम ॥५७३॥

'री गोकुलेशरानी! वन में इसको अब जाने दो ; प्रियतम !
'जो रुचे कलेजा जितना-सा, उतना ही आज करे।' प्रियतम !
वृद्धा की बतलायी विधि वह आचरित हुई जैसे, प्रियतम !
उसके पश्चात् निरन्तर रुचि परिवर्द्धित होगी ही, प्रियतम ॥५७४॥

वे महाप्रभावमयी समता-करुणा-वत्सलता की, प्रियतम !
विग्रहरूपा अम्बा इतना कहतीं-कहतीं लौटीं, प्रियतम !
तोरण तक साथ सभी उनके आये, इतने में ही, प्रियतम !
गिरते न पलक गिरते वे तो हो गयीं अदृश्य, भला, प्रियतम ॥५७५॥

साँवर भी मैया से जल्दी-जल्दी लेकर छुट्टी, प्रियतम !
चल पड़ा धेनु आगे कर, फिर पथ में हँसकर बोला, प्रियतम !
'भैयाओ! स्वप्न एक सुन्दर मैंने गत रजनी के, प्रियतम !
'उस ठीक अन्तवाले क्षण में देखा है, चलो, सुनो!' प्रियतम ॥५७६॥

प्राचीतट विशद सुरम्य उसी सुन्दरी सरोवर का, प्रियतम !
आ गया और साँवला लाल गोपाल वहीं बैठा, प्रियतम !
सहचरमण्डल की उत्सुक थीं आँखें कुसुमनों से, प्रियतम !
झरता था मधु आरम्भ हुई सपने की वह गाथा, प्रियतम ॥५७७॥

वह उधर नीलसुन्दर की जो ताई थी जा पहुँची, प्रियतम!
देवीरक्षित महीपपुर के उत्तर की सीमा में, प्रियतम!
गिरिवर के सोते को उसने, बस, पार किया ही था, प्रियतम!
वृद्धा मिल गयी वहीं, जिससे मिलने आयी वह थी, प्रियतम॥५७८॥

किंचित् थी झुकी कमर उसकी, अब सितकेशी वह थी, प्रियतम!
थी ज्योति बनी दृग में अब भी कुछ घट जाने पर भी, प्रियतम!
लाठी कर में लेकर चलती, सब ओर घूम आती, प्रियतम!
सब खेर-नगर की जनता थी परिचित उस नानी से, प्रियतम॥५७९॥

वह बड़े स्नेह से मिली, भला, साँवर की ताई से, प्रियतम!
स्वाभाविक बहुत बोलती थी, उसने ही पूछ लिया, प्रियतम!
'कैसे तुम आज अकेली हो आयी, प्रसन्न सब हैं?' प्रियतम!
'वे लोग अहीरराजपुर के, हैं स्वस्थ नीलमणि तो?' प्रियतम॥५८०॥

अपने ही आप दैवगति से सुन्दर भूमिका बनी, प्रियतम!
बातें गत बीस पहर की सब ताई ने बतलायीं, प्रियतम!
सुन रही ध्यान देकर वह थी प्रत्येक बात को ही, प्रियतम!
थी जहाँ समझ न सकी, उसको दुहराकर पूछ लिया, प्रियतम॥५८१॥

सुनकर पर उन गैरिकवसना ऐश्वर्यशालिनी की, प्रियतम!
वह उक्ति रहस्यमयी शुचि, जो सम्बद्ध उसीसे थी, प्रियतम!
अत्यन्त पड़ी असमंजस में, उत्तर वह दे न सकी, प्रियतम!
आ गयी याद थी बात एक संवत्सर पहले की, प्रियतम॥५८२॥

'आये थे पुत्री के घर ऋषि तेजस्वी एक महा;' प्रियतम!
'साँवरी दौहित्री से मैंने उनकी बातें पूछीं;' प्रियतम!
'मेरी मनुहारों से दबकर उसने थी बतला दीं;' प्रियतम!
'वह बात सुगुप्त, लाड़िली को उनके वर देने की;' प्रियतम॥५८३॥

'देवी ने जिसकी ओर किया संकेत परी वह है;' प्रियतम !
'आमयहारी उपाय निश्चित, पर जो मैं कह दूँ तो;' प्रियतम !
'मेरी साँवरी अहो! मुझसे अत्यधिक रुष्ट होगी;' प्रियतम !
'विश्वासघातिनी' कह-कहकर नाकों दम कर देगी," प्रियतम ॥५८४॥

"घेरा साँवरा उधर वह है रोगी हो रहा तथा," प्रियतम !
"देवी-रुचि की हेला सम्भव है नहीं किसी से भी," प्रियतम !
"जैसे-तैसे श्यामा को फिर आगे फुसला लूँगी," प्रियतम !
"इसके अतिरिक्त और तो क्या कर सकती हुँ अब मैं?" प्रियतम ॥५८५॥

इस भाँति घड़ी आधी तक वह चिन्ता में पड़ी रही, प्रियतम !
आखिर साँवर की ताई से उसने सब बात कही, प्रियतम !
दी राय और यह-'साँवर को कुछ वस्तु खिला देना;' प्रियतम !
'जो मेरी बड़ी दौहिती ने राँधी हो, उसमें से;' प्रियतम ॥५८६॥

ताई तुरंत लौटी, मैया साँवर की बैठी थी, प्रियतम !
आकर आधे से कुछ आगे वन के उस पथ के ही, प्रियतम !
दोनों वे मिलीं, बात करके ताई फिर से आयी, प्रियतम !
अत्यन्त वेग से चलकर उस देवी-पालित पुर में, प्रियतम ॥५८७॥

था डेढ़ पहर बाकी दिन अब, रानी अंतःपुर के, प्रियतम !
आँगन में थीं बैठी करती खिलवाड़ छोरियों से, प्रियतम !
दोनों बहनें खेलने आज बाहर थीं नहीं गयीं, प्रियतम !
अच्छा संयोग लगा, पहुँची वह ठीक समय से ही, प्रियतम ॥५८८॥

प्राणों का प्यार भरा सुखमय आलिङ्गन दे उसको, प्रियतम !
रानी ने आने का कारण पूछा, फिर सुनते ही, प्रियतम !
ले गयीं तुरंत लाड़िली की दादी के पास उसे, प्रियतम !
वह पितामही रहती अब थी केवल पतिसेवा में, प्रियतम ॥५८९॥

थे वृद्ध महाराजा प्रायः रहते समाधि में ही, प्रियतम!
दो-दो थे पहर बीत जाते, खुलती न आँख उनकी, प्रियतम!
प्रातः फिर अर्धनिशा में वे कुछ देर बोलते थे, प्रियतम!
दादी उस समय पूछ लेती, जो कुछ करना होता, प्रियतम॥५९०॥

अतएव परम सुन्दर निर्णय दादी ने यही दिया, प्रियतम!
'लाली तुरंत अब आज यहीं रन्धन कुछ कर देगी,' प्रियतम!
'ब्यारू के समय नीलमणि को दे दो, प्रातः कल तो,' प्रियतम!
'मैं वहीं भेज दूँगी इसको, लेकर अनुमति इनकी।' प्रियतम॥५९१॥

'मेरी शत शुभाशीश कहना गोपेश-गेहिनी से,' प्रियतम!
'चिन्ता न करें, नीरोग नीलमणि नित्य रहेगा ही,' प्रियतम!
'लाली तो साँवर की ही निधि, साँवर जननी की है,' प्रियतम!
'चाहेंगी जब-जब वे, तब यह रन्धन कर आयेगी,' प्रियतम॥५९२॥

वैसा ही हुआ, द्वादशी के रवि गये अस्तगिरि में, प्रियतम!
आकर वन से अलिन्द में जब साँवर खाने बैठा, प्रियतम!
वह एक कटोरा खीर जिसे ताई ले आयी थी, प्रियतम!
उसकी कैसी महिमा थी, यह जो देख सके, देखे, प्रियतम॥५९३॥

गोपेशपुरी के लोगों की चिन्ता हरने वाली, प्रियतम!
वह रात एक नूतन उत्सव जैसी होकर बीती, प्रियतम!
आने तक उषा, गूँजता था पत्तन के कण-कण में, प्रियतम!
'श्रीमन्नारायण-नारायण' रव सतत भरा स्वर में, प्रियतम॥५९४॥

वे महीपाल-गेहिनी उधर कुक्कुट-रव सुनते ही, प्रियतम!
बन्दन कुलदेवी का करके उठ पड़ीं शीघ्रता से, प्रियतम!
निर्मञ्छन ललियों का कर, फिर उनको प्रबुद्ध करके, प्रियतम!
नहलाकर, अतुल वेषभूषा सुन्दर उनकी रच दी, प्रियतम॥५९५॥

आ पहुँची सब सहेलियाँ भी वैसी ही सजी-धजी, प्रियतम!
प्राची में दीखा-सा ही था ज्योतिर्मय रथ रवि का, प्रियतम!
मन्दिर में वृद्ध पितामह के एकत्र हुईं सब वे, प्रियतम!
आशीष लाड़िली को उनकी लेनी आवश्यक थी, प्रियतम॥५९६॥

दोनों उन अहो! पोतियों पर, जो खड़ी सामने थीं, प्रियतम!
दादा की दृष्टि गयी, वे तो उठ पड़े अधीर हुए, प्रियतम!
था यही प्रथम अवसर उनके जीवन का, जो उनमें; प्रियतम!
हो गया देखते ही उनको आवेश मोह का-सा, प्रियतम॥५९७॥

कर्तव्यपरायण होकर भी निर्लिप्त सदा वे थे, प्रियतम!
था जन्म शाक्तकुल में उनका पर वैष्णवाग्र वे थे, प्रियतम!
क्षणभर भी पद्मनाभ-पद की विस्मृति न कभी होती, प्रियतम!
अब तो व्यवहार-जगत् से वे सर्वथा अलग-से थे; प्रियतम॥५९८॥

दादी ने हाथ पकड़ उनको आसन पर बैठाया, प्रियतम!
लाड़िली, साँवरी एवं सब जो खड़ी छोरियाँ थीं, प्रियतम!
वन्दना अङ्क में दादा के सिर रखकर सबने की, प्रियतम!
दादाजी के दृग से झर-झर बूँदें थीं बरस रहीं; प्रियतम॥५९९॥

कोई न समझ पाया, उनकी यह हुई अवस्था क्यों, प्रियतम!
संकेत अतः कर देती हूँ, दादा ने यह देखा, प्रियतम!
सच्चिदानन्द परतत्त्व, अहो! अविषय मन वाणी का, प्रियतम!
गोरी-साँवरी-नीलसुन्दर, इनसे अभिन्न ही है, प्रियतम॥६००॥

है खेल अनिर्वचनीय और निरुपम अचिन्त्य इनका, प्रियतम!
साँवर जिसको जितना-सा जब, दिखला दे, वह देखे, प्रियतम!
उतना-सा तभी, मर्म फिर भी अज्ञात रहेगा ही, प्रियतम!
अतएव नहीं पहचान सका अपनी पोती-युग को, प्रियतम॥६०१॥

ऐसी अनुभूति पितामह को हो गयी, और फिर वे, प्रियतम!
बह चले लहर में संविद् के ऊपर वत्सलता की, प्रियतम!
इच्छा थी सर्वनियन्ता की, दादाजी अब आगे, प्रियतम!
हों मगन रसोदधि में, जो है बह परे ज्ञान से भी, प्रियतम ॥६०२॥

हो जाय न कहीं विलम्ब, डेढ़ योजन जाना जो था, प्रियतम!
दादी ने उरसे लगा-लगा उन सबको बिदा किया, प्रियतम!
हो अहो! जम्बुनद धारा के अन्दर से चमक रही, प्रियतम!
मानो सुवर्ण की राशि भला, इसभाँति चलीं वे सब, प्रियतम ॥६०३॥

दूरी संकुचित अहो! पथ की हो गयी सत्य सहसा, प्रियतम!
लाड़िली आदि सब जा पहुँची आधी घटिका में ही, प्रियतम!
साँवर की मैया ने सबका कैसा सत्कार किया, प्रियतम!
वाणी कहने का साहस कर कर देगी विकृत उसे, प्रियतम ॥६०४॥

हो प्रबल चाह सुनने की यदि फिर भी तो यहाँ नहीं, प्रियतम!
आगे इस वन की सीमा से दोनों हम जब पहुँचें, प्रियतम!
तुम याद दिला देना, लज्जा सर्वथा त्याग दूँगी, प्रियतम!
प्राणों में अङ्कित चित्रों का विवरण कर जाऊँगी, प्रियतम ॥६०५॥

प्राणेश! अभी तो इतना ही सुनकर सन्तोष करो, प्रियतम!
लाली ने सरस रसोई की कर एक घड़ी में ही, प्रियतम!
भोजन कर वेणु बजाता वन साँवरा जा रहा था, प्रियतम!
मैया का प्यार अतुल लेकर लाली थी लौट रही, प्रियतम ॥६०६॥

षष्ठम शतक समाप्त

राधाकिशोरी की स्वप्नानुभूति

अश्वत्थ पुराना एक बड़ा पथ में विचित्र-सा था, प्रियतम !
पत्रावलि पतझड़ में उसकी गिरती थी नहीं कभी, प्रियतम !
रहता हरीतिमा का वह था अचरज का पुञ्ज बना, प्रियतम ! *
जन गाथा थी, हो व्यक्त वहाँ देवी बैठा करती, प्रियतम ॥६०७॥

था नहीं काल का इसीलिये कोई प्रभाव पड़ता, प्रियतम !
उस तरु पर, तथा मनोरथ थे पूरित होते सबके, प्रियतम !
जिसकी जैसी इच्छा होती, उसको वैसी मिलती, प्रियतम !
परिणाम किंतु सबका होता मंगलमय परम सदा, प्रियतम ॥६०८॥

रहने दो स्वप्न अनुक्त, यही इस पादप के नीचे, प्रियतम !
बाला ने जो देखा, जब वह लौटी थी उस गृह से, प्रियतम !
विश्राम लगी करने वह थी सखियों के कहने से, प्रियतम !
क्षण एक मुँदी बस आँख, हुई अनुभूति रहस्यमयी, प्रियतम ॥६०९॥

संकेत भले सुन लो, यद्यपि रस का सागर वह है, प्रियतम !
यह गिरा न जाने क्यों कुण्ठित हो रही अचानक है, प्रियतम !
कानन में विविध विहंगम हैं रसलोलुप, किंतु सभी, प्रियतम !
हैं रस-मर्मज्ञ नहीं पूरे, अतएव न समझेंगे, प्रियतम ॥६१०॥

यह वही सिन्धु है, अब तक जो नापा जा सका नहीं, प्रियतम !
है गहरायी कितनी, कोई बतला न सका, न सकी, प्रियतम !
नीचे जितना जो गया, गयी, बढ़ती ही मिली उसे, प्रियतम !
वह मरा, मरी, जो बचा, बची, गूँगा, गूँगी वह है, प्रियतम ॥६११॥

उस गूँगी का इंगित कोई समझे, न समझ पाये, प्रियतम !
जो समझे, वह सब समझ गया, है नियम नहीं यह भी, प्रियतम !
गूँगी तो यह निर्णय करने आयेगी नहीं कभी, प्रियतम !
बहरी तो थी ही, अंधी, फिर पगली हो जाती है, प्रियतम ॥६१२॥

---

* हरीतिमा और अचरज का था वह पुञ्ज बना रहता, प्रियतम !

अस्तु, भगवत्याः योगमायायाः रङ्गस्थलोद्घाटनम् ॥६१३॥

बालायाः स्वप्नारम्भः ॥६१४॥

प्रियतमसम्बन्धविस्मृतिः ॥६१५॥

द्विरागमनानुभूतिः ॥६१६॥

अनुजया सहगमनम् ॥६१७॥

दुर्मदस्य पथप्रदर्शनम् ॥६१८॥

पथि अननुभूतवैवाटिकवृत्तस्य चिन्तनम् ॥६१९॥

रविसेतुं प्राप्य तत्र स्थित्वा बालायाः दुर्मदं प्रति सविनयं आदेशदानम् ॥६२०॥

दुर्मदस्य तथैवाचरणम् ॥६२१॥

रविमन्दिरदर्शनार्थं गमनं च ॥६२२॥

बालायाः अनुजां प्रति स्वहृदयवेदनाकथनम् ॥६२३॥

अनुजायाः क्रन्दनम् ॥६२४॥

मिथो धैर्यप्रदानम् ॥६२५॥

बालायाः ग्रामप्रवेशः ॥६२६॥

गृहप्रवेशः ॥६२७॥

देवीपूजनम् ॥६२८॥

बालायाः वृद्धापदयोः पतनम ॥६२९॥

मूर्च्छा ।।६३०।।

वृद्धाकृतविविधशीतलोपचारैः संज्ञालाभः ।।६३१।।

आ पहुँची वही पर्णकुटियावाली देवी सहसा, प्रियतम !
बाला पहले की भाँति नहीं उनको पहचान सकी, प्रियतम !
केवल इतना-सा ही अनुभव उसको उस समय हुआ, प्रियतम !
मेरी रक्षा करनेवाली जग में अब ये ही हैं, प्रियतम ।।६३२।।

देवीकृटोक्तिश्रवणेन बालायाः परित्राणाशा ।।६३३।।

देव्याः सूर्यव्रतोपदेशः ।।६३४।।

द्वादशवर्षीयनियमनिर्धारणम् ।।६३५।।

वृद्धायाः सहर्ष अनुमोदनम् ।।६३६।।

बाला का, उसकी अनुजा का दुस्सह परिताप मिटा, प्रियतम !
पाकर अभीष्ट देवी-पद में दोनों ही लोट पड़ीं, प्रियतम !
वे दयामयी लेकर उनको, चिपकाकर छाती से, प्रियतम !
रोने लग गयीं, स्नेह उर की सीमा में रह न सका, प्रियतम ।।६३७।।

बालायाः सूर्यार्चनारम्भः ।।६३८।।

संध्यायां सहचरीसमागमः ।।६३९।।

द्वितीय दिवसे अर्चनार्थं पुष्पचयनम् ।।६४०।।

उद्यान प्रवेशः ।।६४१।।

उद्यानसौन्दर्यदर्शनम् ॥६४२॥

प्रश्नः ॥६४३॥

सहचर्याः उत्तरदानम् ॥६४४॥

मानो था भरा सहचरी के उत्तर में टोना-सा, प्रियतम !
बाला का कर कम्पित होकर गिर गया पुष्प-दोना, प्रियतम !
एवं कुछ कहे बिना ही वह चल पड़ी वाटिका से, प्रियतम !
सीधे आकर कपाट गृह के कर लिये बन्द उसने, प्रियतम ॥६४५॥

श्रवणयोः तन्मयता ॥६४६॥

अनाहारः ॥६४७॥

निशि च ॥६४८॥

निद्राभावः ॥६४९॥

रवौ उदिते सति सहचर्याः आगमनम् ॥६५०॥

तस्याः बालादशादर्शनेन महदाश्चर्यम् ॥६५१॥

सहचरीस्नेहाग्रहरुद्धायाः बालायाः हेतुकथनम् ॥६५२॥

आँखें उस नर्म सहेली की कारण वह सुनते ही, प्रियतम !
उल्लास सहानुभूति पूरित जलबिन्दु दान करती, प्रियतम !
संकेत मूक किंचित् देकर चञ्चल कर बाला को, प्रियतम !
क्षणभर हो गयीं निमीलित, थी अनुजा सब देख रही, प्रियतम ॥६५३॥

अनुजाकृतसामयिकसेवा ॥६५४॥

संध्याधिगमः॥६५५॥

मुरलीरव श्रवणम् ॥६५६॥

स्वप्रणेतारं प्रति आत्मनिवेदनम् ॥६५७॥

चित्तस्य तन्नादमयत्वम् ॥६५८॥

उषसि संध्याप्रदोषभ्रान्तिः ॥६५९॥

देहविस्मृतिः॥६६०॥

अनुजा के किये उपायों से बाला को चेत हुआ, प्रियतम !
हो सका भोर के कृत्यों का निर्वाह अधूरा-सा, प्रियतम !
अनुजा सँभालती थी प्रतिपल, अतस्त्व परिस्थिति को, प्रियतम !
वृद्धा न तथा उसकी न सुता आभास पा सकी थी, प्रियतम॥६६१॥

अपराह्नसमये सहचर्याः चित्रपट दानम् ॥६६२॥

बालायाः चित्रसौन्दर्यदर्शनम् ॥६६३॥

विचित्रानुभूतिः ॥६६४॥

तं अखिलरसामृतमूर्ति बालकं प्रति आत्मोत्सर्गः॥६६५॥

बुद्धेः तद्रूपत्वम् ॥६६६॥

सर्वत्र तद्दर्शनम् ॥६६७॥

तस्यां रजन्यां चित्तस्य अद्भुतवैक्लव्यम् ॥६६८॥

बालाकी चित्तदशा ऐसी हो गयी रातभरमें, प्रियतम!
जिसको वह सखी देखते ही चिन्तामें डूब गयी, प्रियतम!
लक्षण उन्माद रोगके सब उसमें थे दीख रहे, प्रियतम।
अच्छा था सही, सखीको वह पहचान गयी अब भी, प्रियतम॥६६९॥

नामोच्चारणपूर्वकं मां मा स्पृश मा स्पृश इति उक्त्वा पलायनम्॥६७०॥

सहचर्याः समवरोधनम्॥६७१॥

बालायाः भृशं विलापः॥६७२॥

सहचर्याः सान्त्वनादानम्॥६७३॥

बालायाः शनैः शनैः स्वहृदयस्य अनिवार्यं परिताप कथनम्॥६७४॥

सहचर्याः हासः॥६७५॥

बालायाः सरसभ्रान्तिनिवारणं च॥६७६॥

आ गिरी धधकती ज्वाला पर मानो जलधर-धारा, प्रियतम!
ऐसा परिणाम सहेलीके उस एक वाक्यका था, प्रियतम!
सुखमयी अचेतनताके मृदुकर से लालित होती, प्रियतम!
थी पड़ी अङ्कमें उसके दस-पंद्रह पलतक बाला, प्रियतम॥६७७॥

सहचर्याः परिचयदानम्॥६७८॥

बालायाः भावाभिवृद्धिः॥६७९॥

सहचर्याः यथावसरं तं बालकं प्राप्य बालावृत्तकथनम्॥६८०॥

बालकस्य स्वानभिज्ञता प्रदर्शनम् ॥६८१॥

देवसचतुष्ट्यानन्तरं बालां प्रति स्वाकर्षणाभावमूलकचेष्टा ॥६८२॥

सहचर्याः भावविवर्द्धनार्थं विविध प्रयासः ॥ ६८३॥

असफलता ॥६८४॥

आखिर कुल-भय, लज्जा, गौरव, सब परित्याग करके, प्रियतम!
अपने सर्वस्व समर्पण का, अत्यन्त विवशता का, प्रियतम!
संकेतचित्र शुचि पत्ते पर अङ्कित कर नखमणि से, प्रियतम!
नीरद-सुन्दर उस बालक को बाला ने भी भेजा, प्रियतम ॥६८५॥

तथापि नैराश्योपलब्धिः ॥६८६॥

न भवति दुर्विपाकमूलेऽस्मिन् जन्मनि मत्प्राणनाथयोगः
मम नवजन्मायुतमध्ये देवो दययिष्यत्यवश्यमेव
इति बालायाः प्राणविसर्जनोपक्रमः ॥६८७॥

कल्लोलिनीं प्राप्य प्रवाहनिरीक्षणम् ॥६८८॥

सहचर्याः आगमनम् ॥६८९॥

बालायाः तां आश्लिष्य क्रन्दनम् ॥६९०॥

महाप्रयाणपाथेयरूपतच्चित्रपटदर्शनस्य कामना ॥६९१॥

तदपूर्तिः तस्य तत्रानुपलब्धेः ॥६९२॥

यह सुख भी मन्द भाग्यवाली कैसे ले सकती है, प्रियतम!
मैं देख न सकी चित्र तक भी आराध्यदेवता का, प्रियतम!
था उस दिन तो हर्ष से पूरित उर का कोना-कोना, प्रियतम!
देखूँ वे कहीं मिलें, विलीन कर सकूँ प्राण उनमें, प्रियतम।।६९३।

इत्युक्त्वा बालायाः नयननिमीलनम् ।।६९४।।

सहचर्याः बालां अङ्के कृत्वा उच्चस्वरेण क्रन्दनम् ।।६९५।।

तत्क्षणमेव तस्य महामरकतद्युतेः बालकस्य तत्रागमनम् ।।६९६।।

जो नीलपद्म रसना हो, फिर बन्धन न काल का हो, प्रियतम!
लेकर रसना-तूलिका चित्र लिखती मैं रह जाऊँ, प्रियतम!
जो सुखद सखी को, बाला को अनुभूति हुई, उसका, प्रियतम!
आ जाने से उस बालक के, तब भी न लिख सकूँगी, प्रियतम।।६९७।।

जैसे कोई कवि चुन-चुनकर कल्पना सरस अपनी, प्रियतम!
गुम्फित कर उसको माला में प्राणों में ही रख ले, प्रियतम!
सम्मान-गर्व के कर से वह अस्पृष्ट सर्वथा हो, प्रियतम!
जो है उल्लास भरा उसमें, आया वह दोनों में, प्रियतम।।६९८।।

पावन अनुरागमयी धारा दो बह-बहकर दृगसे, प्रियतम!
इस देश-काल की सीमा से उस पार पहुँच करके, प्रियतम!
हो जायँ संगमित, उनमें जो शीतलता रहती है, प्रियतम!
थी आत्मसात् कर रही वही दोनों के प्राणों को, प्रियतम।।६९९।।

है नहीं अहंता जहाँ, नहीं है बुद्धि, न ये गुण हैं, प्रियतम!
है नहीं प्रकृति भी जहाँ, अहो! केवल चिति-ही-चिति है, प्रियतम!
जो है गम्भीरता नित्य वहाँ निरुपम अद्वयपन की, प्रियतम!
थी व्यक्त हो रही वही, भला, दोनों के प्राणों में, प्रियतम।।७००।।

कितना-सा समय लगा उनको इस कालमान से था, प्रियतम!
अब पुनः लौटकर आने में तत्रस्थ कलेवर में, प्रियतम!
जग उठे और सो गये अहो! शतबार चतुर्मुख थे, प्रियतम!
इतना-सा या दो दण्ड मात्र तुम एक जानते हो, प्रियतम ॥७०१॥

जो हो, रजनी के अञ्चल में बसने वाली सुषमा, प्रियतम!
उनके लोचन की पलकों को छू-छूकर धीरे से, प्रियतम!
संकेत लगी करने विशुद्ध रस की उस पद्धति का, प्रियतम!
वे तभी प्रकृति अपनी-अपनी स्वीकार कर सके थे, प्रियतम ॥७०२॥

तीनों के ही मुख से कोई निस्सृत न हुई वाणी, प्रियतम!
थी प्रणय-रोष की छाया-सी क्षणभर केवल आयी, प्रियतम!
चञ्चल-सी हुई सहचरी के मुखपर इतने में ही, प्रियतम!
आँखें उसकी उन दोनों के आनन पर नाच उठीं, प्रियतम ॥७०३॥

बाला-बालक के गालों पर जो बनी लोर-रेखा, प्रियतम!
उसके ही अन्तराल से था उनका उर बोल रहा, प्रियतम!
सहचरी, भला, अब बालक को क्या उपालम्भ देती, प्रियतम!
लग गयी याद करने रस की भाषा का ककहरा, प्रियतम ॥७०४॥

साखी देता शशि था नभ में ऊपर उठकर तरु से, प्रियतम!
नीली प्रवाहिणी कल-कलकर शुभ गीत गा रही थी, प्रियतम!
धो रही सखी थी दृग-जल से परिणय की वेदी को, प्रियतम!
विद्युल्लहरी का कर धारण कर कृष्ण-नारिचर था, प्रियतम ॥७०५॥

निर्मल था स्वप्न, अहो! पर यह था लिये अँधेरा भी, प्रियतम!
संकल्प न था इसमें, अद्भुत विक्षिप्तपना पर था, प्रियतम!
संविद् रसमय था, फिर भी था हृत्तल की आह लिये, प्रियतम!
बाला का तो सपना था, पर जीवन यह है रस का, प्रियतम ॥७०६॥

उस सपने में ही जो सपना उसको या अन्य हुआ, प्रियतम!
रूठ देती हूँ किंचित् यदि रूठ पाऊँगी, हूँ रोती, प्रियतम!
प्राणों को है अनुभूति, किंतु वे बोल नहीं पाते, प्रियतम!
अतएव जान सकता है वह, जो है अन्तर्यामी, प्रियतम॥७००॥

सप्तम शतक समाप्त



जब उषा शयनगृह में आकर छू लेती बाला को, प्रियतम!
कहकर 'रजनी अब चली गयी, दे रही उसे मैं हूँ'; प्रियतम!
'हृत्तल का प्यार, सोच में पड़, जो सो न सका, न सकी; प्रियतम!
है स्वप्नमिलन या सच्चा? तब खुलती समाधि उसकी; प्रियतम॥७०८॥

साँवर सतेज देते उसकी अलकें मुखपर बिखरी, प्रियतम!
आलस्य भरे उन दोनों की आँखें मिलती जब थीं; प्रियतम!
साँवर बन जाते थे बाला, साँवर होती बाला, प्रियतम!
वे प्राण नहीं; केवल उनकी थी देह बदल जाती, प्रियतम॥७०९॥

कङ्कण की ध्वनि सहचरियों की इतने में सुन पड़ती, प्रियतम!
पहले-जैसे हो जाते थे क्षणभर में दोनों ही, प्रियतम!
भीतर सब वे जब आ जातीं उनपर बलिहार हुई, प्रियतम!
लज्जित होकर अञ्चल से थी ढक लेती मुख बाला, प्रियतम॥७१०॥

मङ्गल-नीराजन करती थीं उनका सब सहचरियाँ, प्रियतम!
'जोरी जीओ युग-युग' कहकर सुखमत्त सभी होतीं, प्रियतम!
झर पड़ते बाला-साँवर के दृग से जल के कण थे, प्रियतम!
रव भरा कणों में यह रहता 'होंगे न उऋण तुमसे!' प्रियतम॥७११॥

शीतल समीर सौरभ का ले उपहार विनय करता, प्रियतम!
'अब चलो, युगल दम्पति! तुम हे, कानन की वल्लरियाँ, प्रियतम!
पुष्पित हो, तरु से जुड़कर, हैं हिल-हिलकर देख रहीं, प्रियतम!
पथ तुम दोनों का, आशा ले, मुख देख निहाल बनें,' प्रियतम॥७१२॥

वे ज्यों बाहर आते, दौड़ी आती रङ्गिणी मृगी, प्रियतम!
बाला की कटि को छूकर थी संकेतों में कहती, प्रियतम!
'हो चपल चतुष्पद देते हैं फेरी उन कुञ्जों की,' प्रियतम!
'अङ्गों की तुम दोनों के कल है गन्धभरी जिनमें,' प्रियतम॥७१३॥

साँवर-बाला के अङ्गों की हरिताभ-पीत शोभा, प्रियतम !
अपने लोचन-अञ्चल में भर, होकर मदमाती-सी, प्रियतम !
दो घड़ी अभी पहले जब थी ले रही बिदा रजनी, प्रियतम !
चकई चकवे से थी मिली हुई शशिसे जो यह कहती, प्रियतम ॥७१४॥

'आना राकेश ! पुनः सुखसे कूलों पर सरिता के ;' प्रियतम !
'कोसेंगे ये दोनों पंछी, होना न भीत हमसे।' प्रियतम !
बाला-साँवर हैं नित्य यहाँ, होंगे न विलग हम भी, प्रियतम !
दुःखद निसर्ग के नियम यहाँ लागू होंगे न कभी, प्रियतम ॥७१५॥

चर्चा प्रतिदिन कुछ ऐसी ही रसकी उनकी होती, प्रियतम !
उड़कर फिर शयन-भवन के थे आँगन में वे आते, प्रियतम !
सारी-शुक आँख गड़ाकर थे उनको देखा करते, प्रियतम !
दम्पति विहंगमुद्रा लखकर उन्मुक्त हँसी हँसते, प्रियतम ॥७१६॥

शोभा देखते हुए बन की वे मन्द-मन्द गति से, प्रियतम !
चलते थे, आगे पीछे थीं चलतीं सब सहचरियाँ, प्रियतम !
फूलों से लदे हुए द्रुम की अवलीसे झरती थीं, प्रियतम !
सुमनों की राशि-राशि, उसपर दम्पति पद रखते थे, प्रियतम ॥७१७॥

वे झूम लताएँ उठतीं, जब बाला अपने करमें, प्रियतम !
लेकर साँवर के कर में थी उनको पकड़ा देती, प्रियतम !
कहकर 'देखो, प्राणाधिक ! ये कैसी हैं शीलवती, प्रियतम !
है नहीं स्वसुख की गन्ध तथा इनमें, जय हो इनकी।' प्रियतम ॥७१८॥

सन्मुख कलिन्दनन्दिनी-कूल आ जाता इतने में, प्रियतम !
श्रीमुख तट की उज्ज्वलता में प्रतिबिम्बित हो जाता, प्रियतम !
बाला हो जाती भ्रमित, अहो ! 'हैं हम सच्चे या ये,' प्रियतम !
साँवर हँसने लगते, तब वह थी भूल समझ पाती, प्रियतम ॥७१९॥



अपने बायें कर से हँसकर थी डाँड़ थाम लेती, प्रियतम !

मानो हंसिनी पीठपर थी लेने आयी उनको, प्रियतम !
ऐसी नाचती दीख जाती लहरों पर सित नौका, प्रियतम !
बाला साँवर को कर्षित कर उस दिव्य घाटवाले, प्रियतम !
पथ पर चलकर जल्दी से थी आरोहण कर जाती, प्रियतम ॥७२०॥

अपने बायें कर से हँसकर थी डाँड़ थाम लेती, प्रियतम !
'प्राणेश! अहो! देखो, कितना सुन्दर मैं खेती हूँ', प्रियतम !
उसकी चितवन-वाणी में जो रस निर्झर झरित था, प्रियतम !
साँवर को मत्त बना देता, उसपर ढल पड़ते वे, प्रियतम ॥७२१॥

'बलिहार अहो! निकुञ्जरानी!' कहकर सहेलियाँ वे, प्रियतम !
उत्साहित बाला को करती, दूसरी डाँड़ खेती, प्रियतम !
उससे वह बात छिपाने का करती प्रयास, फिर भी, प्रियतम !
लेती वह देख, बोलती- 'क्या इतनी निर्बल मैं हूँ?' प्रियतम ॥७२२॥

साँवर मुसकाकर कहते- 'री! तुम सब छोड़ो, देखो', प्रियतम !
'मेरे प्राणों की रानी से छू जाने का जादू', प्रियतम !
'इनको छूकर मैं ही जब हूँ चञ्चल हरदम, फिर तो', प्रियतम !
'यह डाँड़ चलेगी नाव तथा अपने-ही-आप, भला!' प्रियतम ॥७२३॥

लज्जित होकर बाला तुरंत थी हाथ हटा लेती, प्रियतम !
उस ओर सरित की धारा में परिवर्तन हो जाता, प्रियतम !
हिल्लोलित लहरों से होकर तरणी चल पड़ती थी, प्रियतम !
बाला को उर में भरकर थे 'जय-जय' साँवर कहते, प्रियतम ॥७२४॥

उजली युगलित बरहावलि, जल-कुक्कुटटोली काली, प्रियतम !
उड़-उड़कर नाव घेर लेती, फैला-फैला पाँखें, प्रियतम !
आगे विहंग वे कर देते अपनी-अपनी ग्रीवा, प्रियतम !
दम्पति उनको सहला-सहला थे प्यार दान करते, प्रियतम ॥७२५॥

सहसा लहरोंका वेग, अहो! इतना बढ़ जाता था, प्रियतम!
तरणी डगमग करने लगती, बाला डर जाती थी, प्रियतम!
साँवर अञ्जलिमें जल लेकर उसका पद धो देते, प्रियतम!
देते फिर छींटे तरंगोंपर वे धीमी पड़ जातीं, प्रियतम॥७२६॥

'हे प्राणवल्लभे! सरिता यह छूना है चाह रही;' प्रियतम!
'तुमको, अतएव चलो, इसकी इच्छा अवश्य रख दें;' प्रियतम!
'है नीर न यहाँ गम्भीर, तनिक लहँगा ऊँचा करके;' प्रियतम!
'चलना!' यह कहते साँवरके लोचन छल-छल करते, प्रियतम॥७२७॥

यों कहकर साँवर बाला को ले साथ उतर पड़ते, प्रियतम!
दोनों के अतिशय सावधान रहकर चलने पर भी, प्रियतम!
लहँगेकी नील किनारी वह गीली हो ही जाती, प्रियतम!
बाला हँस-हँसकर फिर रसमय थी उपालम्भ देती, प्रियतम॥७२८॥

नीली प्रवाहिणीके दक्षिण तट पर अब वे आते, प्रियतम!
अवली तमालतरु की जलको छू-छूकर हिलती थी, प्रियतम!
कर देते और नमित उसको साँवर दक्षिण कर से, प्रियतम!
डोली-सी वह बनती, उसपर बालाको बैठाते, प्रियतम॥७२९॥

शोभा निहार, पलभर वे भी आरोहण कर जाते, प्रियतम!
सहचरियाँ सुखमें भरकर थीं झोटा देने लगतीं, प्रियतम!
अभिनव झूला-उत्सव-सा वह सचमुच हो जाता था, प्रियतम!
दम्पतिकी हँसी निराली वह सबका मन हर लेती, प्रियतम॥७३०॥

मानो आती थी करने वह संकेत कालगति का, प्रियतम!
शाखा पर रुक उसी तरुकी चढ़ती बंदरी, अहो! प्रियतम!
बालाका ध्यान उधर बँटता, दृग चिन्ताकुल होते, प्रियतम!
साँवर भी स्वयं उतर, नीचे उसको उतार लेते, प्रियतम॥७३१॥

दोनों की आँखें भर आतीं, मस्तक झुक जाता था, प्रियतम !
कन्धे पर एक दूसरे के, कुछ बोल न वे पाते, प्रियतम !
आता प्रस्वेद गात से था इतना कि वस्त्र उनके, प्रियतम !
उससे धुल जाते, यों लेते वे बिदा परस्पर थे, प्रियतम ॥७३२॥

दक्षिण-पश्चिम की ओर एक जाती पगडंडी थी, प्रियतम !
उसपर रुक-रुककर-चल पड़ते, साँवर निहारते थे, प्रियतम !
बाला को आकुलता-बिनती-परिपूरित लोचन से, प्रियतम !
पैंतीस-तीस पल में होते ओझल तरुजालों में, प्रियतम ॥७३३॥

निष्प्राण हुई-सी बाला अब चलती धीरे-धीरे, प्रियतम !
घर जाकर शय्या पर आँखें मूँदे पड़ जाती थी, प्रियतम !
थे प्राण नीलसुन्दर उसके, तन कहीं रहे, क्या था, प्रियतम !
प्राणोपम पर वह सखियों को प्रिय था सँभालती वे, प्रियतम ॥७३४॥

आवेश भाव का बाला में अद्भुत हो जाता था, प्रियतम !
ज्यों-की-त्यों सब घटनाओं को वह सत्य देख लेती, प्रियतम !
साँवर की मैया, साँवर जो-जैसे घर पर करते, प्रियतम !
उसके निस्पन्द बंद दृग पर अङ्कित यह हो जाता, प्रियतम ॥७३५॥

बाला देखती, काल की गति पीछे है सरक गयी, प्रियतम !
है क्रियाशील हो रही अघटघटनापटीयसी वे, प्रियतम !
है उषा लगी, अब जननी भी जग उठी, किंतु भोली, प्रियतम !
साँवर रजनी में बाहर थे घर से, न समझ पायी, प्रियतम ॥७३६॥

दीपक की लौ से निर्मञ्छन अपने सुत का करके, प्रियतम !
करने दधिमन्थन लगी सुधास्यन्दी स्वर में गाती, प्रियतम !
उसके श्रवणों में पूरित है रुन-झुन-रव नूपुर का, प्रियतम !
आँखों में भरा नीलमणि है आँगन में नाच रहा, प्रियतम ॥७३७॥

नवनीत हुआ प्रस्तुत, समाधि मैया की अब टूटी, प्रियतम!
फिर उसी शयनमन्दिर में जा पहुँची धीरे-धीरे, प्रियतम!
साँवर के मुख-सरोज पर से भ्रमरावलि-सी अलकें, प्रियतम!
मृदु कर से अपसारित कर वह फूली न समाती है, प्रियतम॥७३८॥

अपने अर्बुद मैं प्राण लक्ष शतगुण तुझपर वारूँ, प्रियतम!
तू जाग लाल मेरा अमोल! हो चुका सबेरा है, प्रियतम!
आयेंगे अभी सखा तेरे, गायें पुकारती हैं, प्रियतम!
तुझको, जाकर दुह ले उनको, उठ तो तू, देख भला, प्रियतम॥७३९॥

यों प्रेमिल शत मनुहारों से साँवर को जगा सकी, प्रियतम!
होते-होते न मुखारी वे हरी अब भाग चले, प्रियतम!
जा पहुँचे गृह सम्बद्ध उसी गोशाला में पल में, प्रियतम!
वह धेनुसमूह निहाल हुआ लखकर आनन नीला, प्रियतम॥७४०॥

इस भाँति देख लेती बाला रहकर अपने घर ही, प्रियतम!
जैसे-तैसे सहचरियाँ सब उसको प्रबुद्ध करतीं, प्रियतम!
रसभरे अनेक उपायों से निर्वाह करा पातीं, प्रियतम!
मुखशोधन, उद्वर्तन, मज्जन, परिधान विभूषण का, प्रियतम॥७४१॥

इतने में आ जाती दूती साँवर की मैया की, प्रियतम!
बाला को नित्य बुलाती थी अपने ही घर जननी, प्रियतम!
था अनुभव उसे, रसोई जो बाला छू देती है, प्रियतम!
साँवर भर पेट उसे ही है खाता, न अन्य कुछ भी, प्रियतम॥७४२॥

दूती एवं सब सहचरियाँ उसको ले चल पड़ती, प्रियतम!
साँवर-ही-साँवर बाला को सर्वत्र दीख पड़ते, प्रियतम!
विक्षिप्त हुई-सी आ पाती घर पर वह साँवर के, प्रियतम!
उनका दर्शन होने पर ही प्रकृतिस्थ कहीं होती, प्रियतम॥७४३॥

मैया से मिलकर, साँवर के अग्रज की जननी के, प्रियतम!
तत्वावधान में रन्धन के होते थे काम सभी, प्रियतम!
सब कुछ करते रहने पर भी बाला का मन रहता, प्रियतम!
डूबा प्रियतम साँवर के ही नीले-नीले तन में, प्रियतम॥७४४॥

मैया भी उधर जुड़ी रहती, बस, एक नीलमणि से, प्रियतम!
गाथाएँ उसे न जाने थीं कितनी गढ़नी पड़ती, प्रियतम!
वह तभी लगा पाती उबटन, उनको नहला पाती, प्रियतम!
शृङ्गार धरा पाती, भोजनगृह में ले आ पाती, प्रियतम॥७४५॥

साँवर फिर साथ सखागण के हँस-हँसकर थे खाते, प्रियतम!
भोजन का दृश्य अतुल निधि था बनता सबके दृग का, प्रियतम!
मैया का स्नेह दबा लेता उसके चञ्चल सुत को, प्रियतम!
विश्राम पचीस-तीस पल तक हँसकर वह कर लेता, प्रियतम॥७४६॥

मुखरित मुरली-रव से पत्तन होने वह अब लगता, प्रियतम!
धारा-सी तोरण से बाहर गोश्रेणी चल पड़ती, प्रियतम!
था नीलदेवता ही चालक उनका, वह भी चलता, प्रियतम!
बाला आवास-अटारी से अपलक निहारती थी, प्रियतम॥७४७॥

साँवर-जननी के हृत्तल की निरुपम वत्सलता से, प्रियतम!
होकर अभिषिक्त पुनः बाला वासस्थल पर आती, प्रियतम!
वैसे ही दसों दिशाओं में साँवर दीखते उसे, प्रियतम!
बाहर का ज्ञान नहीं-सा ही उसमें रह जाता था, प्रियतम॥७४८॥

पगली-सी हुई बैठ जाती आकर बाहर गृह से, प्रियतम!
उठता द्वितीय पट सर-तट पर नूतन रङ्गस्थल का, प्रियतम!
क्रीड़ा वनगमनजनित वियोग हुतभुक् करने आता, प्रियतम!
उद्गमथल था जलने लगता, सखियाँ सँभालती थीं, प्रियतम॥७४९॥

गिरिवर-परिसर में सुन्दर वन जो आठ कुञ्ज का है, प्रियतम !
उसमें ही किसी कुञ्जमें वे बाला को ले आतीं, प्रियतम !
साँवर की बाट देखने का पल वह युग-सा बनता, प्रियतम !
वे आ पाते जब दशा इधर दसवीं आने लगती, प्रियतम ॥७५०॥

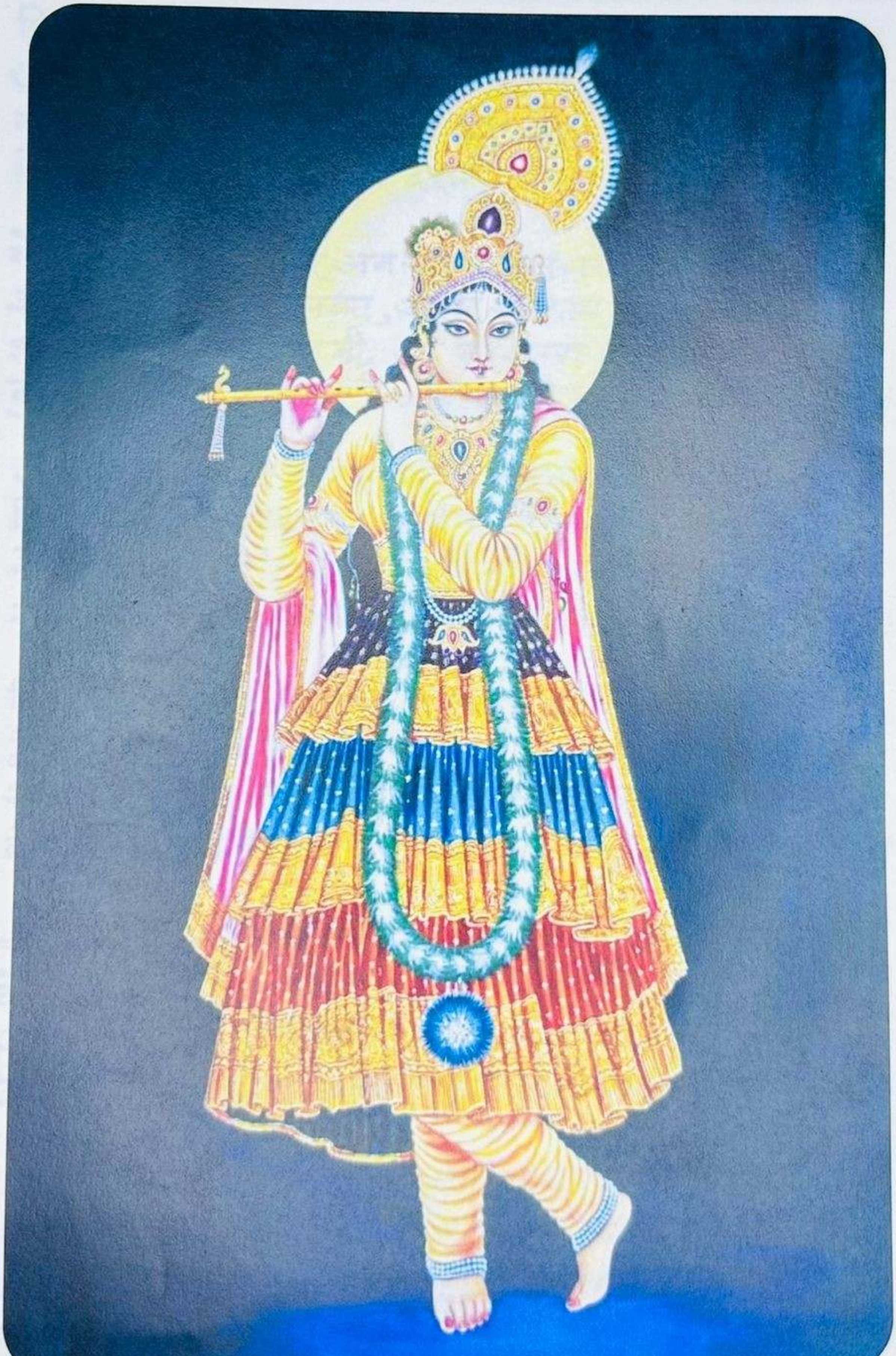
दोनों के मिल जाने पर अब चढ़ता रस-सागर जो, प्रियतम !
ऊँचापन है कितना उसका, आँका अब तक किसने, प्रियतम !
आँखें सहचरियों की डूबी, तट पर उतरा न सकीं, प्रियतम !
कुञ्जों की द्रुम-लतिकाएँ हैं जड़िमा-पूरित तबसे, प्रियतम ॥७५१॥

जो हो, बाला को ले साँवर करते परिक्रमा-सी, प्रियतम !
प्रियतमा-स्वरूप-विभावित उन दोनों सरोवरों की, प्रियतम !
नौकारोहण कर, हँस-हँसकर, विकसित-सरोज-वन का, प्रियतम !
सौरभमय सुमन-चयन कर-कर, निज सुख वितरण करते, प्रियतम ॥७५२॥

निर्झर निकुञ्ज-तरु-पत्रों से मधु का झरता रहता, प्रियतम !
होता न विराम किसी ऋतु में उसका, था जहाँ, वहीं, प्रियतम !
साँवर बाला को ले जाते, द्विगुणित होता झरना, प्रियतम !
दोनो में पुरइन के मधु भर वे उसे पिला पीते, प्रियतम ॥७५३॥

चन्दन-कामिनी-जाल निर्मित सन्मुख थी कुञ्ज-कुटी, प्रियतम !
दोनों विभोर हो भावों से उसमें प्रविष्ट होते, प्रियतम !
उत्तर की ओर दीखता था वन एक कल्पतरु का, प्रियतम !
ज्योतिर्मय सित-नीला, उसकी गाथा कहते-सुनते, प्रियतम ॥७५४॥

बाला में सुनते-सुनते ही आ जाती तन्मयता, प्रियतम !
विस्मरण उसे हो जाता था अपने स्वरूप का भी, प्रियतम !
अपने ही लिये प्रश्न करने लग जाती साँवर से, प्रियतम !
साँवर भी होते भ्रमित, 'अहो ! कैसे क्या समझाऊँ ?' प्रियतम ॥७५५॥



जो महाभाव है, वह बनता रसराज एक पल में, प्रियतम !

ऐसे अवसर पर पुनः वही घटना घट जाती थी, प्रियतम !
जो महाभाव है, वह बनता रसराज एक पल में, प्रियतम !
होता रसराज उधर परिणत उस महाभाव-वपु में, प्रियतम !
क्या कहूँ अनिर्वचनीय कथा रसमय उस विनिमय की, प्रियतम ॥७५६॥

दिनकर की एक किरण सहसा दोनों को छू लेती, प्रियतम !
हो गयी देर है, यह उनमें संकल्प जाग उठता, प्रियतम !
अपने स्वरूप में आकर, वे हँसकर चल पड़ते थे, प्रियतम !
सन्मुख कासार पुनः आता, प्रियतमा नामधारी, प्रियतम ॥७५७॥

उसमें अवगाहन की इच्छा जगती, निदाघ आता, प्रियतम !
दम्पति की रुचि की ही ऋतुएँ अनुसरण वहाँ करतीं, प्रियतम !
पलभर ही पहले जल-थल में ऋतु जो भी क्यों न रहे, प्रियतम !
तत्क्षण विलीन हो नव सुषमा ले काल नया आता, प्रियतम ॥७५८॥

बाला छूती जल को, साँवर तत्काल उछल पड़ते, प्रियतम !
फिर उसे अङ्क में लेकर वे संतरण-खेल करते, प्रियतम !
कमलों से विरचित कन्दुक की क्रीड़ा भी नव होती, प्रियतम !
दम्पति-तन का निरुपम सौरभ झर-झरकर सर भरता, प्रियतम ॥७५९॥

जब भीग-भीग दृग बाला के अत्यन्त अरुण होते, प्रियतम !
पावन जल केलि निराविल वह सुखमयी तभी थमती, प्रियतम !
दोनों के भीगे कुन्तल को, गोरे-नीले तन को, प्रियतम !
जो पोंछ वस्त्र पहनाती हैं, इतिहास गूढ़ उनका, प्रियतम ॥७६०॥

आते अब बकुल-कुञ्ज में वे चलकर मन्थर गति से, प्रियतम !
शृङ्गार धराने का उनमें रसमय झगड़ा होता, प्रियतम !
यह कभी अनादि काल से ही अब तक निर्णय न हुआ, प्रियतम !
भूषित कर सका, सखी पहले सचमुच वह कौन किसे, प्रियतम ॥७६१॥

सुन्दर निकुञ्ज सुमनों का है सम्बद्ध एक उससे, प्रियतम !
उसमें पश्चात पीयूष भरे वनफल का रस लेते, प्रियतम !
बाला के अधरपल्लवों पर साँवर का, फिर उसका, प्रियतम !
उनके बिम्बाधर पर रखना फल दृगफल हो जाता, प्रियतम ॥७६२॥

जो पीत-हरितमणि विरचित है मोहन-निकुञ्ज उसमें, प्रियतम !
विश्राम फूलकी शय्या पर वे एक दण्ड करते, प्रियतम !
जगकर फिर शीतल जल पीकर शुक-सारीकी रचना, प्रियतम !
वह भावभयी सुनते-सुनते सुख से अचेत होते, प्रियतम ॥७६३॥

आकर तृणकी उस वेदी पर लेकर सोलह कौड़ी, प्रियतम !
फिर दाँव परस्पर अङ्गोंका वे लगा खेलते थे, प्रियतम !
जो दाँव जीत लेता-लेती उसको अनुभव होता, प्रियतम !
मैं हारा, हार गयी, ऐसे रसभरे नियम कुछ थे, प्रियतम ॥७६४॥

पश्चिम की ओर अंशुमाली ढल पड़े दीख जाते, प्रियतम !
वे तब हीरक रवि मन्दिर में अर्चन करने आते, प्रियतम !
साँवर का स्वरचित मन्त्रों से रवि पूजन करवाना, प्रियतम !
बाला के दृग-मन में नव-नव सुख की आशा भरता, प्रियतम ॥७६५॥

इसके पश्चात् बिछुड़ने की जल पड़ती आग वही, प्रियतम !
साँवर सँभालने चल पड़ते गो-सखा-समूहों को, प्रियतम !
रजनी में पुनर्मिलन की उस आशा को लिये हुए, प्रियतम !
बाला मुरझायी माला-सी घर आकर पड़ रहती, प्रियतम ॥७६६॥

सहचरी नवीन वेष भूषा उसकी रच देती थी, प्रियतम !
उस ओर वेणु रव से वनका कण-कण पूरित होता, प्रियतम !
घर अतुल नीलमणि साँझ समय मैया के घे आते, प्रियतम !
दर्शन फिर तनिक दूर से ही कुछ पल बाला पाती, प्रियतम ॥७६७॥

प्रत्येक वस्तु में प्राणों का रस भरकर ही मैया, प्रियतम!
उससे अपने सुत का लालन करके सुखिनी होती, प्रियतम!
पूरा करके प्रदोष का क्रम, साँवर सो जाते थे, प्रियतम!
त्रिभुवन-मोहन-मोहिनी शक्ति जननी को भी ढकती, प्रियतम ॥७६८॥

निस्तब्ध निशा हो जाने पर साँवर उठ पड़ते थे, प्रियतम!
नीली-सरिता के तट के उस वट के समीप आते, प्रियतम!
उस संकेतस्थल पर बाला पहले ही आ जाती, प्रियतम!
अभिसार निराला यह उसका अज्ञात सभी को था, प्रियतम ॥७६९॥

भावों का था आवेश एक उनमें विचित्र होता, प्रियतम!
प्रत्यक्ष परस्पर रहकर भी दोनों न देख पाते, प्रियतम!
हो आकुल एक दूसरे को निरुपाय ढूंढते थे, प्रियतम!
दोनों के लिये ध्येयमय था यह अखिल दृश्य बनता, प्रियतम ॥७७०॥

यह लहर शमित होते-होते लग जाती एक घड़ी, प्रियतम!
जाकर तब कहीं भुजाओं का बन्धन लग पाता था, प्रियतम!
जो भी बड़भागिन खड़ी-खड़ी अवगाहन कर पायी, प्रियतम!
उन खोज-मिलन की लहरों में, उसने समझा रस को, प्रियतम ॥७७१॥

अब शुभ्र चाँदनी में उनका धीरे-धीरे चलना, प्रियतम!
सरिता का नीर गुल्फपरिमित होकर पथ दे देना, प्रियतम!
हँसते-हँसते दोनों का फिर उस पार उतर जाना, प्रियतम!
कहने जाकर यह खो दूँगी इसकी सुन्दरता को, प्रियतम ॥७७२॥

रासस्थल की स्वर्णिम वेदी, स्वर्णिम वट मञ्च बड़ा, प्रियतम!
स्वर्णिम दण्डों से जुड़ी हुई स्वर्णिम वल्लरियाँ वे, प्रियतम!
स्वर्णिम वितान वह फूलों का स्वर्णिम खग की श्रेणी, प्रियतम!
ये बरबस साँवर बाला को आकर्षित कर लेते, प्रियतम ॥७७३॥

आकर इनको छू-छूकर, वे दोनों खिल पड़ते थे, प्रियतम !
प्रस्तुत सबकुछ करके रखतीं सहचरियाँ पहलेसे, प्रियतम !
थे स्वयं आप साँवर करते अर्पित तमोल उनको, प्रियतम !
आरम्भ नृत्य फिर हो जाता बालाका, साँवरका, प्रियतम ॥७७४॥

कबतक चलता वह नृत्य, अहो ! कैसे बतलाऊँ मैं, प्रियतम !
आँखोंमें है अबतक पूरित हल्लीसक-मुद्राएँ, प्रियतम !
शशधर है ठीक मध्य नभमें वैसे ही गति भूले, प्रियतम !
वे मुग्ध देखते हैं साँवर, बाला है नाच रही, प्रियतम ॥७७५॥

वैसे ही कटि झुक जाती है बालाकी पल-पलमें, प्रियतम !
अम्बर वक्षःस्थलका भी वह वैसे ही चञ्चल है, प्रियतम !
वे कुण्डल भी वैसे ही हैं हो रहे चपल दोनों, प्रियतम !
आनन-सरोजपर वैसे ही प्रस्वेदकणावलि है, प्रियतम ॥७७६॥

गिर रहे फूल वैसे ही हैं झर-झरकर अलकोंसे, प्रियतम !
साँवर अपने दुकूलमें हैं कर रहे चयन उनको, प्रियतम !
वैसे ही नाच-नाच करके साँवर भी बालाकी, प्रियतम !
कर रहे सरस अनुमोदन हैं उन नृत्यभङ्गियोंका, प्रियतम ॥७७७॥

रसमय तन्त्रीके तार सभी वैसे ही झंकृत हैं, प्रियतम !
वैसे ही नूपुरका रुन-झुन सहयोग दे रहा है, प्रियतम !
वैसे ही तालबन्ध भी है पल-पल नवीन होता, प्रियतम !
वैसे ही बज उठती है वह साँवरकी करताली, प्रियतम ॥७७८॥

इसपर मैं किंतु सरस झीना आवरण डालकर ही, प्रियतम !
आगे-चलती हूँ बालाको, साँवरको ले दृगमें, प्रियतम !
उस ओर नृत्य उन दोनोंका अविराम चल रहा है, प्रियतम !
वे उधर उसी क्षण हैं निकुञ्जपथमें भी चल पड़ते, प्रियतम ॥७७९॥

दक्षिण-उत्तर-विभाग युगपत् बन जाता क्रीड़ा का, प्रियतम!
दोनों ही ओर खेलते थे दोनों ही केवल वे, प्रियतम!
उत्तर की ओर चलें पर हम, है देर घड़ी दो की, प्रियतम!
है उषा सखी आनेवाली मिलने हम दोनों से, प्रियतम॥७८०॥

जो हो, निकुञ्ज में जब दोनों आकर विराजते थे, प्रियतम!
कौतुक विचित्र-सा वह उनमें होता रहस्यमय था, प्रियतम!
बाला कुछ सरस पहेली थी रखती समक्ष उनके, प्रियतम!
साँवर भी तनिक सोच, हँसकर उत्तर देते जाते, प्रियतम॥७८१॥

है प्रथम कौन, जो स्निग्ध बनी? फिर कौन सुशीतल है? प्रियतम!
तीसरी तरल सुरभित जो है, चौथी सुस्मित वाली, प्रियतम!
पञ्चम उज्ज्वलमणिमाला है, वह छठी अमित मीठी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८२॥

अब पहली? नित्य अरुण है; फिर? जीवन का जीवन है, प्रियतम!
तीसरी? लवणता निधि है, अब है बसी हुई मुख में, प्रियतम!
पाँचवी? अमल बूँदोंवाली, वह छठी सुचिह्नित है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८३॥

अब पहली? काली ताली है; फिर पद्मराग रेखा, प्रियतम!
तीसरी? निराविल, पोली है; फिर? क्षीना पदवाली, प्रियतम!
अब? शशि का गुण धरनेवाली, फिर? पद-अँगुरी में है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८४॥

अब कौन? सरसती रहती है; फिर? रस-कलसीवाली, प्रियतम!
अब कौन? धाप छलनेवाली, आगे? प्रस्वेदभरी, प्रियतम!
फिर? वह तिरछी चितवन में है; अब? तोरणलतिका है, प्रियतम!
मिलगयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम॥७८५॥

अब पहली? बँधी हुई है जो; फिर? दृगनिवासवाली, प्रियतम!
आगे? वह निर्मल हासमयी; फिर? असितबिन्दुवाली, प्रियतम!
पञ्चम? आवरण कण्ठमें है, है षष्ठी? माँग भरती, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥७८६॥

अब पहली? कर धरनेवाली; फिर? कर-पद-गतिवाली, प्रियतम!
अब? कालीरेखा है; आगे? पलकोंसे जुड़ी हुई, प्रियतम!
पञ्चम? पद-कंज-विभूषित है; फिर? है आलस्यभरी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥७८७॥

अब पहली? लाल सलोंवाली; फिर? ऊपर रहती है, प्रियतम!
फिर? पीली-नीली, पोली है; अब? बसी होठमें है, प्रियतम!
पञ्चम? पद रेखावाली है; वह षष्ठी? भुजामें है, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥७८८॥

अब पहली? कुण्डलवाली; फिर? तनके कण-कणमें है, प्रियतम!
अब? पद-पद पर जो मुखरा है; चौथी? है कटि थामे, प्रियतम!
पञ्चम? कुञ्चित कच में है; फिर? कर धरकर पीन बनी, प्रियतम!
मिल गयी? अनुग्रहमयी साथ तुम हो, निहाल मैं हूँ, प्रियतम ॥७८६॥

'अब अन्तिम कौन? उसे तो मैं छूकर बतलाऊँगा।' प्रियतम!
कहकर यह, साँवर पहनाते कर-माला बालाको, प्रियतम!
तदनन्तर वे लहरें उठतीं जो उस रस-वारिधिमें, प्रियतम!
उनमें स्वरूपसे ही मज्जन करनेकी पद्धति है, प्रियतम ॥७९०॥

अपने ऊपर, अपने से ही, अपनेको ही आगे, प्रियतम!
वे लहरदान करतीं रसमय वह रूप कूलका-सा, प्रियतम!
जिस पर उतरा आते साँवर, उतरा आती बाला, प्रियतम!
कुछ पल के लिये, और उनमें बातें होने लगतीं, प्रियतम ॥७९१॥

'प्रियतमे! कहानी एक कहो, तुम बहुत जानती हो;' प्रियतम!
'प्राणाधिक! मैं सब भूल गयी, तुम तो कह सकते हो।' प्रियतम!
'हे प्राणवल्लभे! नहीं, नहीं, मेरी रुचि यह रख दो;' प्रियतम!
'अच्छा तो, सुनो; हुँकारी पर सुनकर देते रहना।' प्रियतम ॥७९२॥

'बस्ती थी एक अहीरों की, उनका अधिपति भी था;' प्रियतम!
'उसका था एक तरुज-चपल, जिसका तन था काला;' प्रियतम!
'त्रिभुवन-जन-मन-मोहक उसने पायी थी, सुन्दरता;' प्रियतम!
'उस पर थीं बिना मोलके ही बिक गयी सभी तरुणी;' प्रियतम ॥७९३॥

'कुछ देर अभी पहले की ही घटना बतलाती हूँ;' प्रियतम!
'उस काले बालक ने ऐसी वंशी में तान भरी;' प्रियतम!
'सुनते ही जिसे अङ्गनाएँ मोहित हो रुक न सकीं;' प्रियतम!
'तत्क्षण सब परित्याग करके उसके समीप आयीं;' प्रियतम ॥७९४॥

'स्वागत करके पहले उसने की कड़ी जाँच उनकी;' प्रियतम!
'डर दिखलाया, बहकाया भी, धर्मोचित दी शिक्षा;' प्रियतम!
'फिर पाठ पढ़ाया बढ़ने का उसके प्रति भाव, भला;' प्रियतम!
'प्राणों में टीस लगी चलने सुन-सुनकर उन सबके;' प्रियतम ॥७९५॥

'रो-रोकर उत्तर दे-देकर वे खरी उतर आयीं;' प्रियतम!
'करुणा की ऊर्मि उठी रसमय हृत्तल में बालक के;' प्रियतम!
'उनके जीवन की साध सभी उसने पूरी कर दी;' प्रियतम!
'है किंतु निराली प्रीति-रीति, बालक छिप गया कहीं;' प्रियतम ॥७९६॥

'अच्छा-सा एक बहाना भी उसको मिल गया अहो!' प्रियतम!
'गोरी थी एक, उसीमें था मन फँसा हुआ उसका;' प्रियतम!
'गोरी थी वह, बेटी थी उस नृपकी, जिसके तन में;' प्रियतम!
'वे देव दिवाकर पूरित थे होकर हरदम रहते;' प्रियतम ॥७९७॥

'उस छोरीकी ही साथ लिये भागा वह बालक था,' प्रियतम!
'दीखा था म्लान हुआ-सा मुख छोरीका बालकको;' प्रियतम!
'अतएव अमित सुन्दरियों के उस नेह-जालमें भी;' प्रियतम!
'सामर्थ्य रही न उसे अब जो उलझाकर रोक सके;' प्रियतम॥७९८॥

'इस ओर भूलनेका स्वभाव पल-पल छोरीका था;' प्रियतम!
'हो भ्रमित, समझ बैठी बालक मुझको भी छोड़ गया;' प्रियतम!
'उस ओर सत्य ही रसके उन नियमों में बँधा हुआ,' प्रियतम!
'बालक उन तरुणी-गणके था दृग-पथ से हटा हुआ,' प्रियतम॥७९९॥

'उमड़ी वियोगकी दो सरिता दो भिन्न दिशाओं से;' प्रियतम!
'संगमित हुई पथमें, तटपर बालक था खड़ा वहीं;' प्रियतम!
'कानों में उसके गूँज रही ध्वनि थी प्रवाहिणी की;' प्रियतम!
'हो रहे चिन्ह हृत्पटपर थे अङ्कित सब लहरों के;' प्रियतम॥८००॥

'मोहन-सुजात-पद-नीरजको क्षत लग न जाय कोई;' प्रियतम!
'लेकर इस भयको ही अपने कर्कश उरपर रखतीं;' प्रियतम!
'रे हाय! हो रही क्या होगी दयनीय दशा उसकी;' प्रियतम!
'काँटों से, पत्थर के कणसे, इस घोर अँधेरे में!' प्रियतम॥८०१॥

'जैसे प्रतिचिन्त्रित यह लहरी करुणा से सिक्त हुई;' प्रियतम!
'बालक उनके दृग के आगे हँसकर हो गया खड़ा,' प्रियतम!
'कोई अर्गला न अब रसके लेने-देने में थी;' प्रियतम!
'अनुभूति उस समयकी उनकी कोई न कह सकेगी;' प्रियतम॥८०२॥

'इसके पश्चात् नाचने का आयोजन बृहत् हुआ;' प्रियतम!
'छोरी नाची, बालक नाचा, सब-की-सब वे नाचीं;' प्रियतम!
'उनकी इस नृत्य-कहानी का अब एक अंश-भर है;' प्रियतम!
'मेरे मानस-पट पर अङ्कित, बाकी मैं भूल गयी;' प्रियतम॥८०३॥

बाला इतना-सा ही कहकर रुकती, साँवर कहते, प्रियतम!
'तो याद करा दूँ मैं आगे, प्रियतमे! अनुज्ञा है ?' प्रियतम!
'क्या करना है, हो रहे श्रमित तुम हो, विश्राम करो।' प्रियतम!
उत्तर बाला का यह होता, झपने-से दृग लगते, प्रियतम॥८०४॥

मीलित-से होने लग जाते साँवर के लोचन भी, प्रियतम!
दोनों की भावमयी समाधि निरुपम लग जाती थी, प्रियतम!
सविकल्प और फिर निर्विकल्प नामों से कही हुई, प्रियतम!
सत्ताएँ उसे न छु सकतीं, होती अद्भुत ऐसी, प्रियतम॥८०५॥

उसका प्रतिबिम्ब भले वाणी-मन-बुद्धि कहीं छू लें, प्रियतम!
वे तथा सदा के लिये बने तद्रूप निहाल अहो! प्रियतम!
सम्भव है इतना-सा ही, मैं आगे क्या और कहूँ, प्रियतम!
हे प्राणाधिक! निहार लेना सागर तुम गागर में, प्रियतम॥८०६॥

जो हो, आगे न सही, बायें मुड़ जाती हूँ अब मैं, प्रियतम!
धारा में सीधे कभी नहीं संतरण सुखद होता, प्रियतम!
दम्पति भी इसी ओर, देखो, आ रहे, भला, वे हैं, प्रियतम!
बाला के दृग खुल गये, पुनः रोना है किंतु उसे, प्रियतम॥८०७॥

आखिर रसभरा स्वप्न यह भी बाला का बदल गया, प्रियतम!
थोड़े होते हैं सुख के दिन, है नियम सदा का ही, प्रियतम!
है बीज दुःख उस सुख का ही, जो नित्य सनातन है, प्रियतम!
पर एक बार तो शूलों से छिद गये प्राण उसके, प्रियतम॥८०८॥

अष्टम शतक समाप्त

ज्वाला...... ! अन्धकार...... !! स्वाहा...... !!!

आया था कोई दूत एक, जो उस राजा का था, प्रियतम !
थे करद-राज्य अगणित जिसके नीचे, डरते रहते, प्रियतम !
वह नृप नृशंस था घोर, कौन जाने क्या कब कर दे, प्रियतम !
कौशल से ही संतुष्ट उसे करके सब बच पाते, प्रियतम ॥ ८०९ ॥

उस कपटी ने मख-उत्सव का आयोजन बृहत् किया, प्रियतम !
उस साँवर बालक को भी था बुलवा भेजा उसने, प्रियतम !
वह दूत महीपालक का था सन्देश लिये पहुँचा, प्रियतम !
जब साँझ हो चुकी थी अशकुन बाला को तभी हुए, प्रियतम ॥ ८१० ॥

मुरझा सहसा वे फूल गये, कुन्तल में जो लगते, प्रियतम !
अञ्जन जल-सा हो तरल लगा बहने अवनी पर, हे प्रियतम !
सुरभित सब भरे विलेपन से वे कनकपात्र ढरके, प्रियतम !
नीलम का हार टूटकर वह गिर गया उरस्थल से, प्रियतम ॥ ८११ ॥

धक-धक कर उठा कलेजा था बालक का देख इसे, प्रियतम !
रोती-सी है बयार वन की इतने में भान हुआ, प्रियतम !
संध्या की वह नीरवता भी इंगित कर-सी बैठी, प्रियतम !
उस ओर बात अनचाही जो होनी थी अभी वहाँ, प्रियतम ॥ ८१२ ॥

उपवन-परिसर में गृह की थी जो अटा, वहीं वह थी, प्रियतम !
संयोग आज ही था, कोई थी पास न सखी वहाँ, प्रियतम !
अत्यधिक अमङ्गलसूचक ये बातें कहने उनसे, प्रियतम !
नीचे दौड़ी, वो मिलीं, किंतु अतिशय उदास वे थीं, प्रियतम ॥ ८१३ ॥

छा गया अँधेरा आँखों के आगे भय से उसकी, प्रियतम !
क्या हुआ अनिष्ट, हाय ! कुछ है प्राणाधिक साँवर का, प्रियतम !
इसलिये मलिन मुद्रा इनकी हो गयी अचानक है, प्रियतम !
यह सोच, थामकर सिर अपना, गिरती-सी बैठ गयी, प्रियतम ॥ ८१४ ॥

लेकर भुजबन्धन में उसको, पीड़ा जो थी उनमें, प्रियतम!
कहने कुछ चली, किंतु सम्भव हो सका न कह देना, प्रियतम!
हो इक कलेजा बाला का होता-सा दीख पड़ा, प्रियतम!
सुन लेगी, जो वह बात सखी थी छिपा रही उससे, प्रियतम॥८१५॥

दोनों सहचरियों की आँखें कहती अवश्य कुछ थीं, प्रियतम!
हैं व्यथा लिये गहरी बाला, पर समझ सकी इतना, प्रियतम!
कुम्हलाये नयन-सरोजों से थी देख रही, उनको, प्रियतम!
धुर-धुर-सा उर करने लगता पूछे क्या वह उनसे, प्रियतम॥८१६॥

आखिर वह हृदयविदारक जो थी बात सखी-मुखसे, प्रियतम!
हग के उत्तप्त हुए जल से जल-जलकर निकल पड़ी, प्रियतम!
'साँवर हैं री! जाने वाले इस वन से दूर वहाँ, प्रियतम!
है क्रूर नराधम नरपति वह विख्यात जहाँ रहता।' प्रियतम॥८१७॥

यह भावी महाप्रलय की ही मानो सूचना मिली, प्रियतम!
बाला तो झुलस उठी उसकी लपटों से अब से ही, प्रियतम!
उसकी आँखों की पलकों में कोई भी गति न रही, प्रियतम!
वे टँगी दे रही-सी पथ थीं प्राणों को उड़ने का, प्रियतम॥८१८॥

वे प्राण न किंतु उड़े, कैसे उड़ते, अब शक्ति न थी, प्रियतम!
ऊपर से उनपर दुख का था इतना भारी बोझा, प्रियतम!
जो हिल तक भी न सके तिलभर, पिस-से वे गये वहीं, प्रियतम!
उत्क्राम नहीं, ज्यों-के-त्यों लय होने का द्वार बचा, प्रियतम॥८१९॥

ऐसा ही होने चला, किंतु विधि का विधान यह था, प्रियतम!
वे जलें अनेकों वर्षों तक, अतएव न हो पाया, प्रियतम!
आ गये तुरंत वहीं साँवर, फिर देश-काल बदले, प्रियतम!
बीती रजनी की आठ घड़ी, आयी वह कुअवली, प्रियतम॥८२०॥

लेकर उरमें बाला को घेरे साँवर उदास बैठे, प्रियतम!
आने पर तनिक चेतना जब उसके दृग-नलिन खुले, प्रियतम!
यह लगा उसे, जगपालक की सीमा न दया की है, प्रियतम!
जाकर मेरे जीवनधन फिर जो लौट यहाँ आये, प्रियतम॥८२१॥

आधे पल तक यह हर्ष-किरण आँखों में भरी रही, प्रियतम!
क्या सत्य किंतु था, साँवर की मुखमुद्रा कह बैठी, प्रियतम!
बाला उनसे क्या कहती अब, साँवर भी क्या कहते, प्रियतम!
चारों लोचन से ही जल की बह चली तप्तधारा, प्रियतम॥८२२॥

हो जाती लुप्त चेतना जब रह-रहकर बाला की, प्रियतम!
साँवर का भी विवेक पूरा कुण्ठित हो जाता था, प्रियतम!
वे तड़प रहे थे रागभरे दो हृदय वेदना से, प्रियतम!
उनको विवेक शीतल कर दे, यह हुआ न होगा ही, प्रियतम॥८२३॥

बाला के दुःखभरे उरका था तापमान इतना, प्रियतम!
जो अहो! अचेतनता भी थी सह पाती नहीं उसे, प्रियतम!
दो-तीन पलों में ही होकर अधजली भाग जाती, प्रियतम!
साँवर निरूपाय उधर आकुल रो रहे निरन्तर थे, प्रियतम॥८२४॥

क्रन्दन की तप्त ऊर्मियों में, मूर्छा की छाया में, प्रियतम!
पल-पल बहकर, आगे बढ़कर, रजनी भी बीत रही, प्रियतम!
कैसे लूँ विदा प्रियतमा से, साँवर न समझ पाते, प्रियतम!
जाना तो था ही, पर सब रस जाने का निकल गया, प्रियतम॥८२५॥

इतने में ही बाला में कुछ परिवर्तन दीख पड़ा, प्रियतम!
वह उठी भाव की लहर, जिसे देखी न किसी ने थी, प्रियतम!
'यह इसीलिये तो प्रश्न बना साँवर के जाने का,' प्रियतम!
'इनको सुख है इसमें फिर मैं होऊँ विघातिनी क्यों?' प्रियतम॥८२६॥

संयत-सी होकर, साँवर की ग्रीवा में भुजमाला, प्रियतम !
पहना कर, वह बोली, 'क्या सच जा रहे, नाथ! तुम हो?' प्रियतम !
'है हेतु अहो! क्या, कहो मुझे, मैं सम्मति दे दूँगी?' प्रियतम !
'हूँ नित्य अनादि किंकरी तो इन पद-नलिनों की ही।' प्रियतम ॥८२७॥

रुक गया कण्ठ बाला का बस, कहते-कहते इतना, प्रियतम !
अत्यन्त हुए बेहाल उधर साँवर यह कह पाये, प्रियतम !
'हैं इस तन के कुछ कृत्य वहाँ, प्राणों की रानी हे! प्रियतम !
'इन पीले पदनखमणि में ही मन तो है नित्य बसा?' प्रियतम ॥८२८॥

'जाओ प्राणाधिक !' धीमा यह उत्तर में स्वर आया, प्रियतम !
केवल इतना-सा ही विनिमय वाणी का हो पाया, प्रियतम !
बाकी सब बातें आँखों की उन सजल पुतलियों ने, प्रियतम !
भीगी रोमावलि ने कर लीं नीरव उस भाषा में, प्रियतम ॥८२९॥

था अन्तिम बार उरःस्थल से उरका जुड़ना कैसा, प्रियतम !
क्या कहूँ चेतना खो दोगे तुम सुनते ही उसको, प्रियतम !
क्यों हो इतिहास अधूरा यह, होगा न उचित यह तो, प्रियतम !
अतएव सुनो आगे जैसे निकले निकुंज से वे, प्रियतम ॥८३०॥

गलबाँही दिये हुए ही वे अब भी बाहर आये, प्रियतम !
दक्षिण की ओर चले, फिर उस सरिता को पार किया, प्रियतम !
आया वह पल भी, प्रतिदिन वे लेते थे विदा जहाँ, प्रियतम !
आते ही किंतु वहाँ झिन-झिन लग गये चरण करने, प्रियतम ॥८३१॥

क्षमता न रही अब बाला में, रह सके आँख खोले, प्रियतम !
वह हटे नील बायें करकी माला, क्यों दृग देखें, प्रियतम !
बारह-दस पल के अन्तर से उसकी उघरी पलकें, प्रियतम !
साँवर थे दो पद दूर खड़े लोचन में लोर लिये, प्रियतम ॥८३२॥

दोनों कर से छाती थामे बाला थी मौन खड़ी, प्रियतम!
उसका सिर किंचित् जब हिलता सम्मति की मुद्रा में, प्रियतम!
साँवर तब ही रुक पाते थे पद एक उस दिशा में, प्रियतम!
थी म्लान उषा यह देख रही, रो रहा वनस्थल था, प्रियतम॥८३३॥

साँवर गोपेशपुरी के उस वन में जब समा गये, प्रियतम!
बाला पगली हो दौड़ चली उनके पीछे-पीछे, प्रियतम!
रोका न उसे सहचरियों ने, वे भी पीछे दौड़ीं, प्रियतम!
वह गिर न पड़े इतना-सा, पर उनमें था ध्यान बना, प्रियतम॥८३४॥

वनकी कुछ लता उलझती थीं बाला के चरणों में, प्रियतम!
उसके तनकी गर्मी से पर जलने वे लग जातीं, प्रियतम!
इसलिये तुरंत छोड़ देतीं, उसको पथ मिल जाता, प्रियतम!
दस पल में वह जा पहुँची घर साँवर की मैया के, प्रियतम॥८३५॥

भीतर न किंतु जाकर, अड़कर तोरण से बैठ गयी, प्रियतम!
सबको प्रत्यक्ष दीखती थी उन्मत्त दशा उसकी, प्रियतम!
बिखरे थे केश, ओढ़नी भी गिर गयी खिसककर थी, प्रियतम!
आवरण कञ्चुकी का उर पर केवल था बचा हुआ, प्रियतम॥८३६॥

वे किसी भाँति उसके तन को ढक गयीं सहचरियाँ, प्रियतम!
लज्जा क्या अब उसमें रहती, जब तन सुधि ही न रही, प्रियतम!
जल रही आग की भट्ठी थी कैसी उसके उरमें, प्रियतम!
कैसे थे प्राण बचे फिर भी, यह कह न सकूँगी मैं, प्रियतम॥८३७॥

हो चुकी व्यवस्था प्रायः थी कालोचित सब पूरी, प्रियतम!
जाने वाले भी प्रस्तुत थे साँवर के साथ वहाँ, प्रियतम!
गोपेश खड़े थे, सहचर भी शिशु थे तैयार खड़े, प्रियतम!
साँवर एवं उनके अग्रज, इनकी ही देरी थी, प्रियतम॥८३८॥

मैय्या थी रूजा रही उनको, पर कर न काम करते, प्रियतम!
वह भूल रही थी रह-रहकर, कैसे क्या है करना, प्रियतम!
गिर जाय न एक बूँद भी जल दृग से, सतर्क पर थी, प्रियतम!
जाने के समय नीलमणि के क्यों चिह्न अमङ्गल हो, प्रियतम ।। ८३९।।

जैसे-तैसे सब करके वह साँवर को ले आयी, प्रियतम!
साँवर अग्रज को साथ लिये रथ पर भी जा बैठे, प्रियतम!
बाला यह सब थी देख रही, रहकर कुछ दूर खड़ी, प्रियतम!
निस्पन्द पुतरियाँ उसकी थीं प्रस्तर-पुतरी की-सी, प्रियतम।। ८४०।।

सहसा वह बोल उठी ऊँचे स्वर से पुकार सबको, प्रियतम!
'भूकम्प हो रहा है, देखो, ये टूट रहे द्रुम हैं'; प्रियतम!
'दौड़ो, सब दौड़ो, इस रथ के पहिये में घुस जाओ,' प्रियतम!
'लो थाम इसे, लो बचा इसे, धरती है घूम रही,' प्रियतम ।। ८४१।।

उस बड़ी सखी ने अङ्गुलियाँ उसके मुख पर रख दीं, प्रियतम!
पर तब तक तो बाला पर ही आ टिकी आँख सबकी, प्रियतम!
उसकी उस वाणी में ऐसी थी ऊर्मि वेदना की, प्रियतम!
जो एक साथ ही क्षणभर तो सबका धीरज टूटा, प्रियतम।। ८४२।।

उस विषम परिस्थिति को कातर साँवर की आँखों ने, प्रियतम!
बाला की ओर निहार अहो! सर्वत्र सँभाला था, प्रियतम!
उसका सिर अनुमति देता-सा हिल गया तनिक फिर से, प्रियतम!
चल पड़ा और रथ घड़-घड़ कर धीरे-धीरे आगे, प्रियतम ।। ८४३।।

था प्राण छेदने वाला रव घड़-घड़ का रूप धरे, प्रियतम!
जो उनके साथ न जा पायीं, उन एक-एक का ही, प्रियतम!
कट-कटकर ने कदली-जैसी क्रमशः गिरती जातीं, प्रियतम!
चल पड़ा चक्र अबला-जन में था क्रूर काल-करे का, प्रियतम।। ८४४।

जो काँप-काँपकर किसी तरह उससे कुछ बच पायीं, प्रियतम!
उनको समूल उत्पाटित कर मानो ले साथ चला, प्रियतम!
वह महाभयानक दुख का था जो झञ्झावात उठा, प्रियतम!
बढ़ रहा वेग जिसका था मिल-मिलकर रथकी गति से, प्रियतम॥८४५॥

बाला उनमें ही थी, उसका तन तो उड़ता ही था, प्रियतम!
उसके माथे में भी वह था झञ्झा प्रकोप भारी, प्रियतम!
वह रथके पीछे-पीछे अब भागती जा रही थी, प्रियतम!
'हा-हा' कर हँसती, झर-झर थे साँवर के दृग झरते, प्रियतम॥८४६॥

आया वह पेड़ उदुम्बर का, पथ का था मोड़ जहाँ, प्रियतम!
बङ्किम उस मुद्रा में साँवर रथ पर उठ खड़े हुए, प्रियतम!
वह नीली ज्योति सत्य मानो दो-सी हो गयी अहो! प्रियतम!
बाला में एक मिली, लेकर दूजी को रथ भागा, प्रियतम॥८४७॥

आधे पल में ओझल दृग से रथ हुआ सघन वन में, प्रियतम!
तत्क्षण फिर अट्टहास गूँजा बाला के श्रीमुख का, प्रियतम!
ऊपर उठ गयीं भुजाएँ, पद गतिशील हुए उसके, प्रियतम!
ऐसे मानो हो गया समय उस रासनृत्य का हो, प्रियतम॥८४८॥

'नाचो-नाचो, बहिनों री! तुम, मैं नाच सिखाऊँगी', प्रियतम!
'जय हुई प्रीति की, जय बोलो, मेरी न, अरी! उनकी', प्रियतम!
इस भाँति अचानक बोल उठी गलने लग गयी धरा, प्रियतम!
वह पास पड़ा पत्थर उसकी ज्वाला से पिघल गया, प्रियतम॥८४९॥

आकुल सहचरी सोचती थी, क्या युक्ति करें जिससे, प्रियतम!
इसके जीवन की अब आगे हो किसी भाँति रक्षा, प्रियतम!
ये प्राण नहीं तो साँवर के सहचर तुरंत होंगे, प्रियतम!
आच्छन्न और निरवधि होगा यह विश्व अँधेरे से, प्रियतम॥८५०॥

छाती उसकी फटती थी, पर बोली वह बाला से, प्रियतम !
'री बहिन! चलें वनमें अब तो, हो गयी बड़ी देरी;' प्रियतम !
'हो सका न सुमन-चयन तक भी, कैसे पूजा होगी?' प्रियतम !
'साँवर एकाकी खड़े-खड़े होते उदास होंगे।' प्रियतम ॥८५१॥

हग में प्रफुल्लता कृत्रिम की मुद्रा लेकर वह थी, प्रियतम!
कृत्रिम उल्लास गिरा में भी उसकी था भरा हुआ, प्रियतम!
यों बार-बार बाला का कर झकझोर रही वह थी, प्रियतम!
जैसे-तैसे उसके मन को दे रही भुलावा थी, प्रियतम ॥८५२॥

दैवी इच्छा से कुछ पल में बाला की वृत्ति फिरी, प्रियतम !
कुछ देर एकटक से उसने उसके मुख को देखा, प्रियतम !
एवं पहचान उसे बोली 'री! स्वप्न एक मैंने, प्रियतम !
देखा अत्यन्त भयंकर है, ये प्राण काँपते हैं,' प्रियतम ॥८५३॥

'क्या होनेवाला है सचमुच वैसा ही अभी यहाँ, प्रियतम !
'दुःस्वप्नों का परिहार अरी! कोई अमोघ कह दे, प्रियतम !
'मैं करूँ तुरंत उसे पहले, वन में फिर जाऊँगी,' प्रियतम !
साँवर हों नित्य सुखी, मेरा जो होना हो सो हो, प्रियतम ॥८५४॥

इतने में रथ के पहियों का दीखा वह चिह्न उसे, प्रियतम !
कृत्रिम फुल्लता सखी की वह ठग सकी न अब उसको, प्रियतम !
गम्भीर हुई बाला, उर की ज्वाला फिर धधक उठी, प्रियतम !
आयी इसबार किंतु बाहर धरकर अभिनव बाना, प्रियतम ॥८५५॥

बोली वह-'अरी! देख, कौआ कह रहा मुझे कुछ है;' प्रियतम !
'साँवर सुख से तो पहुँच गये, इतना मैं समझ सकी;' प्रियतम !
'आगे तू पूछ उसे, क्या वह मर गया दनुज राजा?' प्रियतम !
'चल पड़े यहाँ के लिये तथा साँवर रथ पर कि नहीं?' प्रियतम ॥८५६॥

हग लगे पुनः पथराने-से उसके इतने में ही, प्रियतम !
उसकी यह दशा देख, सखियाँ 'रे हाय!' पुकार उठीं, प्रियतम !
इसका परिणाम, अवश्य हुआ सुन्दर, जो द्वार मिला, प्रियतम !
आँखों से उसके दुख को भी बाहर बह चलने का, प्रियतम ॥८५७॥

सहसा वह फूट-फूटकर के विह्वल ऐसी रोयी, प्रियतम !
जो एक साथ पशु-पक्षी तक रोने लग गये वहाँ, प्रियतम !
मानो वह कालकूट विष हो भर गया पवन में ही, प्रियतम !
'चें-चें' कर अहो! लगा खगकुल भद-भद गिरने तरु से, प्रियतम ॥८५८॥

नादित उस ओर हुआ क्षणभर वन महाघोर रव से, प्रियतम !
एवं गिर गये अचेतन हो सब वन्य चतुष्पद भी, प्रियतम !
केवल बाला के, सखियों के क्रन्दन का रव ही था, प्रियतम !
पूरित उन सभी दिशाओं में, निस्पन्द बने तरु थे, प्रियतम ॥८५९॥

वैसे ही रोती हुई चली आगे अब वह वन में, प्रियतम !
रथ के पहिये की रेखा को पकड़े, रुक-रुक करके, प्रियतम !
जितनी-सी व्यथा वारि बनकर बाहर आ जाती थी, प्रियतम !
मानो उसका अनुपात लिये पद में थी गति आती, प्रियतम ॥८६०॥

यद्यपि सहेलियाँ उसको थीं वे सतत सँभाल रही, प्रियतम !
फिर भी कितनी ही बार गिरी खाकर पछाड़ वह तो, प्रियतम !
ग्राहक जब चला गया तन का क्यों फिर वह उसे रखे, प्रियतम !
निष्प्राण-सदृश उसको अब तो सखियों को ढोना था, प्रियतम ॥८६१॥

पथ वही न जाने कितना था हो गया आज लंबा, प्रियतम !
आता न अन्त उसका था, वह सरिता न दीखती थी, प्रियतम !
उस रत्नशैल को छू-छूकर बहती वह जिस थल से, प्रियतम !
बाला जब वहाँ पहुँच पायी, लग रही दुपहरी थी, प्रियतम ॥८६२॥

इन घड़ियों में बाला ने था जो करुण विलाप किया, प्रियतम!
कितना वह हृदयविदारक था, क्या सखियों पर बीती, प्रियतम!
बाला एवं उनमें फिर थे जो-जो संवाद हुए, प्रियतम!
इसको सुनकर फिर तुम आगे क्या और सुन सकोगे? प्रियतम॥८६३॥

अत एव न वह कहकर, नीली कल-कल-निनादिनी की, प्रियतम!
लहरों में जैसे अवगाहन बाला ने किया, कहूँ, प्रियतम!
आकर उस तट पर खड़ी हुई जिस पर गिरिवर अपना, प्रियतम!
धो रहा चरण था, बाला ने अपनी अञ्जलि भर ली, प्रियतम॥८६४॥

मस्तक पर वारि बिखेर, अहो! बोली वह सरिता से, प्रियतम!
'री बहिन! आज मैं आयी हूँ तेरे समीप रोने', प्रियतम!
'देगी तू मुझे उरस्थल की किंचित् शीतलता क्या?' प्रियतम!
'जल रहे प्राण-तन हैं मेरे, क्षणभर शीतल ये हों।' प्रियतम॥८६५॥

'मैंने तेरा अपराध किया, मैं गर्व भरी तब थी;' प्रियतम!
'साँवर को नित्य साथ पाकर फिरती इठलाती थी।' प्रियतम!
'अधिकार नील तन पर करके मेरी मति बौरायी;' प्रियतम!
'कितनी ही बार तुझे पद से मैंने ठुकराया है।' प्रियतम॥८६६॥

'नीला श्रीमुख दृग में रखकर तेरी परवाह न की;' प्रियतम!
'नीला कर अहो! कण्ठ में था गिनती न तुझे मैं थी।' प्रियतम!
'नीले तन-सौरभ से माती आयी न पास तेरे;' प्रियतम!
'नीले तरु पर समुदित फल का रस पी, न मिली तुझसे।' प्रियतम॥८६७॥

'नीले मुख का मधुरव सुनती, कल-कल न सुना तेरा,' प्रियतम!
'नीला था अङ्क मिला, तेरी गोदी न सुहाती थी;' प्रियतम!
'नीले कर सेते थे पद को, सेवा न रुची तेरी।' प्रियतम!
'नीली वह अलकावलि हरती श्रमकण, भूली तुझको।' प्रियतम॥८६८॥

'मेरी निधि वह छिन गयी किंतु, हूँ अब भिखारिणी मैं;' प्रियतम!
'जो सत्य महारानी कल थी इन सब निकुञ्ज वनकी;' प्रियतम!
'मेरा सब गर्व-चूर होकर हूँ बनी आज दीना,' प्रियतम!
'सोने अब आयी हूँ तेरी शीतल गोदी में ही।' प्रियतम॥८६९॥

'तू मुझे निराश नहीं करना, तू मुझे न ठुकराना;' प्रियतम!
'मुझसे जो हुआ अनादर है उसको बिसार देना।' प्रियतम!
'अपनी अप्रतिम शीलता से निस्सीम अनुग्रह से,' प्रियतम!
'तू ठौर मुझे देना अपने नीले शीतल उर में।' प्रियतम॥८७०॥

'सोनेसे पहले कुछ बातें मैं और तुझे कह दूँ;' प्रियतम!
'तू दयामयी है, कर देना मेरी यह सेवा भी।' प्रियतम!
'मुझसे हों अलग भले साँवर, वे तुझे न छोड़ेंगे;' प्रियतम!
'तू तो है, बहिन! वहाँ भी, वे अब जिस नगरीमें हैं।' प्रियतम॥८७१॥

'आयेंगे वे अवश्य तेरे रससे शीतल होने;' प्रियतम!
'उनके पदपद्मों की रजसे भूषित मैं हो न सकी।' प्रियतम!
'मेरी यह अभिलाषा पूरी अब तू ही कर देना;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनके पद धो देना।' प्रियतम॥८७२॥

'कुछ गुप्त हेतुओं से वह सुख उनको मैं दे न सकी;' प्रियतम!
'वे अहो! तरसते चले गये, होकर निराश मुझसे।' प्रियतम!
'पूरी उमंग देकर उनको ले सकी न मैं उर में;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू वह सुख दे देना।' प्रियतम॥८७३॥

'रह गयी सोचती ही मैं तो, उनका अभिषेक करूँ;' प्रियतम!
'आखिर वे चले गये, अवसर यह किंतु नहीं आया।' प्रियतम!
'झूलेगी मुखपर कृष्ण-कुटिल अलकावलि वैसी ही;' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू उसे सिक्त करना।' प्रियतम॥८७४॥

'लोलुप वे सदा बने रहते मेरे मुख-सौरभ के,' प्रियतम!
'उस ओर सदा घेरे रहती अतिशय लज्जा मुझको,' प्रियतम!
'उनका न मनोरथ भट पूरा कर सकी आज तक मैं,' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू ही अब यह करना।' प्रियतम॥८७५॥

'सोने लगती निकुञ्ज में जब, उनकी इच्छा होती,' प्रियतम!
'ऐसा कोई मैं चित्र लिखूँ जो नित्य नवीन बने।' प्रियतम!
'उनका मुख ही ऐसा था, मैं उर पर लिख भी देती,' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू उसे दिखा देना,' प्रियतम॥८७६॥

'सुस्पर्श अप्रतिम है क्या वे मुझसे पूछा करते,' प्रियतम!
'उनके अङ्गों का ही अनुभव मुझको तो होता था,' प्रियतम!
'वाणी तो नहीं, चपलता यह तन की कह देती थी,' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू भी बतला देना।' प्रियतम॥८७७॥

'रजनी के समय सदा वे थे करते विनोद मुझसे,' प्रियतम!
'वल्लभे! कहो तुम, गाती क्या यह गीत वंशिका है?' प्रियतम!
'मैं कहती-'शिव हरि मार बिन्दु मम नाम सम्पुटित है,' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू कल-कल में कहना,' प्रियतम॥८७८॥

"प्रति रजनी में था प्रश्न और उत्तर अवश्य होता, प्रियतम!
"केवल भाषा बदली रहती, 'है चित्-पीयूष कहाँ?'-प्रियतम!
'दो अरुण नवल पल्लव में ही, तू भी यों ही कहना, प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तू यह सेवा करना।' प्रियतम॥८७९॥

'मेरे उर पर कर-किसलय से कर्पूर विलेपन वे,' प्रियतम!
'देने लगते, उनकी आँखें झर-झर झरने लगतीं।' प्रियतम!
'मैं व्यस्त पोंछती जाती थी, तू भी ऐसे करना,' प्रियतम!
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, अपने समीर-कर से,' प्रियतम॥८८०॥

'प्रातः की बेला में मेरी आँखों में वे आते, प्रियतम !
'जो दुहते-से होकर, पलकें उनको ढक लेती थीं', प्रियतम !
'गोकुल परितृप्त बने, तब तक तू भी उनको ढकना, प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, तट के द्रुमजालों से, प्रियतम ॥८८१॥

'दिन के दूसरे पहर में वे रहते अरण्य में थे; प्रियतम !
'मेरा प्यारा भाई मेरी करता सहायता था; प्रियतम !
'प्रेषित मैं एक पत्र करती, तू भी अवश्य करना; प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, नलिनों पर लिख करके; प्रियतम ॥८८२॥

'होती अर्चना दिवाकर की अपराह्णकाल में थी, प्रियतम !
'मेरी आशा-वल्लरी हरी क्रमशः होने लगती; प्रियतम !
'मैं अर्घ्य तरणि को देती थी, तू भी अवश्य देना; प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, लहरें उछाल करके।' प्रियतम ॥८८३॥

'संध्या के समय दीखते वे कानन से घर आते; प्रियतम !
'मेरे समीप आते ही वे कन्दुक उछाल देते;' प्रियतम !
'अञ्जलि में उसे पकड़ लेती मैं, तू भी यों करके; प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको प्रसन्न करना।' प्रियतम ॥८८४॥

'होता प्रदोष में अनुभव, वे मुझको हैं ढूँढ रहे, प्रियतम !
'नीली या उजली साड़ी मैं तत्काल पहन लेती, प्रियतम !
'संकेत जोहती उनका फिर, तू भी ऐसा करना, प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको न खिन्न करना।' प्रियतम ॥८८५॥

"मिलना होता निशीथ में, वे उस समय भूल जाते;' प्रियतम !
"अपना स्वरूप, कहने लगते, 'मैं रमणी हूँ, रमणी !' प्रियतम !
'मैं चेत कराती थी उनको, तू भी सतर्क रहना;' प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको सँभाल लेना।' प्रियतम ॥८८६॥

'उस अपरराज्ञ में भावों की आँधी आ जाती थी, प्रियतम !
'जिसके प्रवाह में मन उड़ता अत्यन्त दूर उनका;' प्रियतम !
'मैं साथ-साथ उड़-चलती थी, तू भी यों उड़-चलना;' प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, उनको रस में भरना।' प्रियतम॥८८७॥

'लगते ही उषा, परस्पर की पूजा चलने लगती;' प्रियतम !
'होता स्वरूप-विनिमय पूरा प्राणों का, तन का भी;' प्रियतम !
'क्षण में फिर पहले-सा बनता तू भी बन-बनकर यों;' प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, यह सेवा भी करना।' प्रियतम॥८८८॥

'सुन्दरी एक-से-एक बढ़ी उनमें अनुरागवती;' प्रियतम !
'इस वन में बसती थीं अपना सर्वस्व दिये उनको;' प्रियतम !
'मैं सबको अहो! मिलाती थी, तू भी व्रत ले लेना;' प्रियतम !
'मेरे प्राणों में प्राण मिला, साँवर-सुख-वर्धन का।' प्रियतम॥८८९॥

'इतना सब कहने का केवल उद्देश्य, बहिन! यह है;' प्रियतम !
'जो सेवा मैं कर सकी नहीं, जो प्रतिदिन थी करती;' प्रियतम !
'उन सबका भार एक तुझपर हूँ डाल रही अब मैं;' प्रियतम !
'तू, भला, अनन्त काल तक यह कर्तव्य निभा देना।' प्रियतम॥८९०॥

'तुझसे मैं नित्य एक रहकर यह सब देखूँगी ही;' प्रियतम
'तू किंतु न यह उनको कहना, हूँ मिली हुई तुझमें;' प्रियतम !
'होंगे संकुचित नाथ मेरी प्रच्छन्न उपस्थिति से;' प्रियतम !
'तू सावधान रहना हरदम, लगने न गन्ध देना।' प्रियतम॥८९१॥

कोई उपाय कर सके, बहिन! तो तू अवश्य करना;' प्रियतम !
वे मुझे सदा के लिये अहो! मन से निकाल पायें;' प्रियतम !
मैं थी न कभी, मैं हूँ न कभी, होऊँगी मैं न कभी;' प्रियतम !
उनकी हो चित्तवृत्ति ऐसी, चिन्ता न रहे मेरी।' प्रियतम॥८९२॥

'मेरे प्राणाधिक सुखी रहें निरवधि, मैं यह देखूँ', प्रियतम!
'इसके अतिरिक्त नहीं मेरी कोई थी चाह कभी;' प्रियतम!
'है नहीं, न होगी ही, मैं यह हूँ सत्य-सत्य कहती;' प्रियतम!
'तेरे नीले उरपर एवं लिख भी यह देती हूँ।' प्रियतम॥ ८९३॥

'कोई न सुने, देखे न इसे क्षणभर भी, क्या इससे;' प्रियतम!
'तू तो सुनती ही है एवं तू देख रही भी है;' प्रियतम!
'तुझसे भी मैं कहती न भला, निरुपाय किन्तु मैं थी;' प्रियतम!
'उनकी सँभाल की चिन्ता थी, अतएव सुना बैठी।' प्रियतम॥ ८९४॥

'भावों की लहरों का कोई इतिवृत्त न होता है;' प्रियतम!
'भावों की ये तरंग आती सीमा में है न कभी;' प्रियतम!
'जो प्राण एक-से हैं अपने उरमें नीलिमा लिये;' प्रियतम!
'उन-उन में ये सङ्क्रमित अहो! उन-उनसे होती हैं।' प्रियतम॥ ८९५॥

'री! बहिन! नीलिमा है भरित तेरे तो कण-कण में;' प्रियतम!
'अतएव आज आकुल तुझसे अपना उर खोल गयी;' प्रियतम!
'तू भूल न जीवन में जाना मेरी इन बातों को;' प्रियतम!
'जो लहर विलीन हुई, वह तो आयेगी नहीं कभी।' प्रियतम॥ ८९६॥

बाला यों कहकर, कर जोड़े, जलमें पद रख, बैठी, प्रियतम!
केवल दो सहचरियों में ही प्राणों की क्रिया बची, प्रियतम!
उसके थी साथ एक पीछे-पीछे बढ़ती जाती, प्रियतम!
थी एक खड़ी तटपर पूरी जड़ होकर देख रही, प्रियतम॥ ८९७॥

बाला ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती, जल था बढ़ता जाता, प्रियतम!
डूबी कटि, डूब गया क्रमशः उसका वक्षःस्थल भी, प्रियतम!
उल्लास भरी ऊँचे स्वरमें रह-रहकर वह हँसती, प्रियतम!
उसके श्रीमुख से एवं यह वाणी झरती जाती, प्रियतम॥ ८९८॥

'साँवर-साँवर ही आगे हैं, साँवर ही पीछे हैं; प्रियतम !
'साँवर-साँवर ही दहिने हैं, साँवर ही बायें हैं; प्रियतम !
'साँवर-साँवर ही नीचे हैं, साँवर ही ऊपर हैं; प्रियतम !
'साँवर-साँवर ही अब केवल सर्वत्र अवस्थित हैं'; प्रियतम ॥८९९॥

नीलाजल लगा चिबुक छूने-चञ्चल हो-हो करके, प्रियतम !
उसके कर-नलिनों की अञ्जलि ऊपर की ओर उठी, प्रियतम !
उसके पीछे-पीछे सटकर जो सखी जा रही थी, प्रियतम !
बाला को उसी सहेली ने भर लिया भुजाओं में, प्रियतम ॥९००॥

नीली लहरें अब बाला के सिर पर से प्रसरित थीं, प्रियतम !
वैसी ही वह फिर भी आगे-आगे बढ़ती जाती, प्रियतम !
मणिबन्ध-अंश पीली अञ्जलि केवल थी दीख रही, प्रियतम !
धीरे-धीरे वह भी नीली लहरों में लीन हुई, प्रियतम ॥९०१॥

इतने में प्रगट हुईं अम्बा, गैरिकवसना जो थीं, प्रियतम !
फैली चिन्मयी नयी माया, तत्काल दृश्य बदला, प्रियतम !
कल-कल-निनादिनी का जल वह घट गया विपल में ही, प्रियतम !
बाला को लिये अङ्क में वे आ रही किनारे थीं, प्रियतम ॥९०२॥

वह डूबी हुई सखी भी थी उनके पीछे-पीछे, प्रियतम !
वे महिमामयी उठीं तट पर, उनके दृग पड़े वहाँ, प्रियतम !
सबके प्राणों में गति आयी, सबको वे लिये-चलीं, प्रियतम !
आया सुन्दरी-सरोवर का वह कूल अर्धपल में, प्रियतम ॥९०३॥

सबको वे वहाँ विराजित कर करुणा से भरी हुई, प्रियतम !
बोलीं 'धीरज, धीरज, मेरी पुत्रियों ! रक्खो, देखो !' प्रियतम !
'इस महादुःख की रजनी का होकर अवसान, उषा; प्रियतम !
'आयेगी, साँवर से मिलकर सुखिनी तुम सब होगी।' प्रियतम ॥९०४॥

वे अम्बा इतना ही कहकर अन्तर्हित हुईं तथा, प्रियतम !
रत्नावासीं से भरा हुआ वह गाँव अदृश्य हुआ, प्रियतम !
उसके वन-परिसर पर भी कुछ अभिनव माया फैली, प्रियतम !
उसकी सत्ता होती न वहाँ उपलब्ध सभी को थी, प्रियतम ॥८०५॥

बाला को, उसकी सखियों को मानो सब भूल गये, प्रियतम !
थीं कौन कहाँ बसती वे, थे माँ-बाप कौन उनके, प्रियतम !
दैनंदिन जीवन था उनका क्या, कहाँ गयीं अब वे, प्रियतम !
आवरण सभी इन बातों पर आया सबके मन में, प्रियतम ॥८०६॥

अज्ञात सभी को थी घटना बिरजा की धारा की, प्रियतम !
उस महाभाव की क्रीड़ा का इतिहास अप्रकट था, प्रियतम !
आकुल फिर वनवासीजन थे साँवर के जाने से, प्रियतम !
यह तो विधान ही था विधि का, अतएव हुआ ऐसा, प्रियतम ॥८०७॥

था चारों ओर अँधेरा ही, यद्यपि सित रजनी थी, प्रियतम !
यों चार पहर के अन्तर से उग आये दिनकर भी, प्रियतम !
वे किंतु निरन्तर मुँदी हुई बाला की आँखें थीं, प्रियतम !
काली थी उसके लिये निशा अब सौ वर्षों वाली, प्रियतम ॥८०८॥

कैसे, प्राणाधिक कहूँ अहो! उन करुण-चरित्रों को, प्रियतम !
आगे के, प्राणों में पल-पल चल रही टीस अब है, प्रियतम !
थोड़ा-सा फिर भी कहना है, तुम-चाह रहे जो हो, प्रियतम !
ले प्यार नित्य तुमसे ही तो देती हूँ मैं तुमको, प्रियतम ॥८०९॥

नवम शतक समाप्त

महाध्वंसका अवशेष

वह उजड़ गया वन था जिसमें बहती रसकी धारा, प्रियतम!
था हा-हाकार भरा उसमें असहाय अनाथों का, प्रियतम!
ज्वालामय पवन बना रहता जलते प्राणों को छू, प्रियतम!
वे अटके थे, बस, आशा पर आने की साँवर के, प्रियतम॥-९९०॥

रञ्जित तमोल से ओठ न थे, चितवन अब वक्र न थी, प्रियतम!
घुँघराले कच की लहर न थी बल खाती वेणी की, प्रियतम!
झनकार न थी आभूषण की वीणा-जैसे स्वर की, प्रियतम!
नीले-पीले परिधानों की थी ज्योति न अब वन में, प्रियतम॥-९९१॥

अब सिरिस-कुसुम-सुकुमार अङ्ग थे नहीं प्रभावाले, प्रियतम!
था अस्थिमात्र मानो लिपटा धूमीले वसनों में, प्रियतम!
पतला-सा सोता आँखों से हरदम चलता रहता, प्रियतम!
मुरछा से वेग कभी उसका थमता, फिर बढ़ जाता, प्रियतम॥-९९२॥

थे बने विहङ्गम मूक, गीत गाती न कोकिला थी, प्रियतम!
शुक था नीरव रहता, सारी पढ़ती न पाठ अब थी, प्रियतम!
'मिल लो गोपी तुम; एक नहीं' रटता पिरोइयाँ था, प्रियतम!
मधुलिह भी भूल गया अब था उड़ना गुन-गुन करना, प्रियतम॥-९९३॥

सब सूख गयी थी वल्लरियाँ, पादप की शाखाएँ, प्रियतम!
मुंडित योगी-सा वट विरहित पत्रों से था रोता, प्रियतम!
'साँवर आते प्रतिदिन पहले मेरी ही छाया में;' प्रियतम!
'फिर आ उनसे बाला मिलती;' यह बात याद करके, प्रियतम॥-९९४॥

सूनी उदास बैठी रहती गिरिवर की दरी वहाँ, प्रियतम!
कमलों की सूखी शय्या पर आँखें अपनी डाले, प्रियतम!
'आकर साँवर ने एक रात बाला को साथ लिये,' प्रियतम!
'विश्राम किया था इस पर ही, इस चिन्ता में डूबी;' प्रियतम॥-९९५॥

थे ऊर्मिहीन सर सब वनके, हिम-सा था हृदय जमा, प्रियतम!
गहरा था दुःख भरा उनमें उस सुख के खोने का, प्रियतम!
साँवर आये थे मेरा रस अपनी अञ्जलि में ले, प्रियतम!
आधा बाला के मुख में भर, पी गये शेष फिर वे।' प्रियतम।।९१६।।

चलता रवि तप्त हुआ धीरे, साँवर के बिना उसे, प्रियतम!
बाला के द्वारा अर्घ्यदान करवा कर कौन कहे, प्रियतम!
इनके निमित्त मैं पा तुमको हूँ ऋणी सदा इनका,' प्रियतम!
संकल्प अतः है, पूजित हों चिरकाल सभी से ये;' प्रियतम।।९१७।।

था योग, अहो! मयंक ने ही आदर पाकर उससे,' प्रियतम!
साँवर को ब्रह्मनिशा तक सित किरणों से सिक्त किया;' प्रियतम!
अब वन में उसकी ओर किंतु बाला न देखती थी;' प्रियतम!
उठती थी आह अतः उरमें, ठंडापन था न रहा;' प्रियतम।।९१८।।

'बड़भागी जगत-प्राण यह है, बाला के अङ्गों के, प्रियतम!
भीतर बाहर का छू सौरभ;' कहकर साँवर हँसते, प्रियतम!
वह रसिक न था, अब फूल न थे बाला तन पर वन में, प्रियतम!
बहता सुवास से रहित अतः होकर वह वैरागी, प्रियतम।।९१९।।

साँवर कहते कुछ बाला से, भरते रव मुरली में, प्रियतम!
मेरे गुण का था अर्थ तभी सत्ता का इस वन में;' प्रियतम!
पर कहाँ गयी ध्वनि अब वह, कुछ था समझ नहीं पाता;' प्रियतम!
इसलिये व्योम चिन्तित असङ्ग केवल 'हा-हा' करता, प्रियतम।।९२०।।

जो उस अरण्य के अधिवासी उद्भिज्ज, जरायुज या, प्रियतम!
प्राणी अण्डज थे, उन सबका मन था न रहा तन में, प्रियतम!
उड़कर साँवर के मुखपर था मँडराता चला गया, प्रियतम!
थी छाँह बची केवल उसकी रोने के लिये वहाँ, प्रियतम।।९२१।।

क्या है कैसा सन्मुख अनुभव बाहर का दूर रहे, प्रियतम !
होता न किसी को भान वहाँ अपनेपन का भी था, प्रियतम !
संसार मिटा, व्यवहार गया, जीवन का चिह्न बचा, प्रियतम !
उनमें जो आह, अश्रुधारा निस्सृत होती रहती, प्रियतम ॥६२२॥

कैसे लिख दूँ उन चित्रों को वाणी की तूली से, प्रियतम !
लिखने बैठी वह, किंतु नहीं चलती इससे आगे, प्रियतम !
कानन के कण-कण में जो है वह दुःखभरी जड़िमा, प्रियतम !
प्राणों में लगी पुनः भरने कहने से दृग-तन में, प्रियतम ॥६२३॥

जो कहीं ठहर जाऊँ किंचित, लेकर मन में इसको, प्रियतम !
होगी फिर तो इति अभी यहीं बाला की गाथा की, प्रियतम !
रह जायें अहो ! फिर सुन्दरतम बातें आगे की वे, प्रियतम !
रोये यह देश, नगर, जिसमें घर था कच्चा उसका, प्रियतम ॥६२४॥

अतएव तनिक वन से हटकर परदेसी* की चर्चा, प्रियतम !
करती हूँ जो था साँवर का वह दूत नवीन बना, प्रियतम !
सुन्दर था श्याम रंग उसका, भूषित था साँवर-सा, प्रियतम !
कुछ बात वहाँ करने-कहने बाला से था आया, प्रियतम ॥६२५॥

प्रेरित हो प्रेरक से उसके कोई बोली दीना, प्रियतम !
'आया क्या वही पुनः, जो था साँवर को ले भागा?' प्रियतम !
स्वर करुण कण्ठ से ज्यों निकला, वन में वह गूँज उठा, प्रियतम !
फिर एक साथ सबकी आँखें खुल गयी अचानक थीं, प्रियतम ॥६२६॥

वे लगीं देखने उस पथ को, साँवर थे जिधर गये, प्रियतम !
था समय वही प्रातः का ही, वे बिदा हुए जब थे, प्रियतम !
उनके समक्ष था एक खड़ा कोई प्रणाम करके, प्रियतम !
चुपचाप हाथ जोड़े, मानो गूँगा हो सत्य अहो ! प्रियतम ॥६२७॥

* जिसकी इच्छा हो इसे 'परदेशी' पढ़ ले ।

वे देख रहीं उसको थीं, वह उनको था देख रहा, प्रियतम!
कुछ बोल नहीं पाता वह था, दुखकी दासी वे थीं, प्रियतम!
जब-चार घड़ी थीं बीत चुकीं, इस भाँति कहा उसने, प्रियतम!
'साँवरका हूँ मैं मित्र, मुझे भेजा उनने ही है।' प्रियतम॥ ६२८॥

जैसे स्वर में सम बँधे हुए तन्त्री के तारों को, प्रियतम!
अभिक ले छेड़-चपल, सहसा झंकृत होते वे हैं, प्रियतम!
वैसे ही 'साँवर' नाम बना उनके श्रवणों में जा, प्रियतम!
उद्बुद्ध रागिणी भावों की करने में हेतु बना, प्रियतम॥ ६२९॥

कितना सम्मान मिला उनसे साँवर के सहचर को, प्रियतम!
अन्तस्तल से उनके निकला था स्नेह-उत्स कैसा, प्रियतम!
अभिषेक हुआ जिससे उसका, है उचित नहीं कहना, प्रियतम!
प्राणों में झाँक देख लेना वह खेल पुनः अपना, प्रियतम॥ ६३०॥

सुनना कुछ चाह रहे हो पर फिर से जब मुझ से ही, प्रियतम!
इतिवृत्त महा है गोपनीय, किंचित् तथापि कह दूँ, प्रियतम!
दीपककी लौ-सी है रसकी गति, जो मिट जाती है, प्रियतम!
हिलने लगती है या बाहर आकर समीरको छू, प्रियतम॥ ६३१॥

जो हो, विलाप के शुचि जलसे पद धुले दूत के थे, प्रियतम!
दौड़ी फिर अर्घ्य लिये वह थी मूर्छा दासी उनकी, प्रियतम!
आने पर होश सिसकियों ने आचमन कराया था, प्रियतम!
विधि रचित वारि-आसन से फिर हो सका समर्हण था, प्रियतम॥ ६३२॥

विस्फारित आँखों से बैठा वह दूत विमूढ़ हुआ, प्रियतम!
था देख रहा, वे सब उसकी करती प्रदक्षिणा थीं, प्रियतम!
दो घड़ी पुनः जब बीत गयी अद्भुत इस अर्चा में, प्रियतम!
थी प्रश्न कुशलका करने नह आ सकी गिरा खिन्ना, प्रियतम॥ ६३३॥

क्रमशः उमड़ा फिर भाव, लगीं सब वे कहने नर से, प्रियतम!
साँवर कानन में थे कैसे रहते, क्या-क्या करते, प्रियतम!
साधारण-से-साधारण भी अतिशय नगण्य-सी थी, प्रियतम!
साँवर की दिनचर्या की जो घटना कहकर रोती, प्रियतम॥६३४॥

सुनकर सब बात दुःख उनका हरने वह दूत चला, प्रियतम!
खुल गयी ज्ञान की पेटी वह साँवर ने जो दी थी, प्रियतम!
सुन्दर सुबोध नवशैली से साँवर की व्यापकता, प्रियतम!
प्रतिपादन कर उनसे उनकी वह उक्ति कही उसने, प्रियतम॥६३५॥

'मन रमा रहे तुम सबका ही केवल जिससे मुझ में,' प्रियतम!
'होकर नयनों का तारा मैं हूँ दूर बसा तुमसे,' प्रियतम!
सुनते ही लोचन बंद हुए कमलों-से उन सबके, प्रियतम!
आवेश एक उनमें आया अप्रतिम दिव्य सहसा, प्रियतम॥६३६॥

बाला उनसे घिर कर बैठी भावों में थी डूबी, प्रियतम!
आया है एक दूत केवल इतना थी जान सकी, प्रियतम!
आँखें न खुलीं, न हिली वह थी, अब तक इन बातों को, प्रियतम!
कितना सुन पायी, सुन न सकी अथवा, यह कौन कहे, प्रियतम॥६३७॥

सत्कृत अतुलित था दूत हुआ उसकी सखियों से ही, प्रियतम!
बाला की संनिधि में ही पर सब बात हुई यह थी, प्रियतम!
वह था तड़ाग का तीर अमल, जिस पर थी जुड़ी सभा, प्रियतम!
उत्तर की ओर किये मुख थीं बाला एवं सब वे, प्रियतम॥६३८॥

मुँह फेर दूत से, मान-राग-प्रेरित हो सहचरियाँ, प्रियतम!
मानो विस्मृत करके यह भी, है पुरुष यहाँ श्रोता, प्रियतम!
कुछ बात लगीं अपनी-अपनी बाला से बतलाने, प्रियतम!
साँवर के साथ हुई उनकी जो कुञ्जनिभृत में थीं, प्रियतम॥६३९॥

जब एक बोलकर पगली-सी हँसती या रो देती, प्रियतम!
हँसना-रोना उसका थमता, कहती थी अन्य तभी, प्रियतम!
जैसे कोई भीतर से सच कहवाता हो उनसे, प्रियतम!
यों एक-एक कर सब-की-सब बोली जो थी, सुन लो, प्रियतम॥६४०॥

ललितायाः उक्तिः—

साँवर अब भूल गये हैं री! वह बात पान वाली, प्रियतम!
तू अर्ध दाँत से कर मेरे अधरों पर रख बैठी, प्रियतम!
पीछे से आये, झटक लिया, खा गये और बोले, प्रियतम!
'हो गया क्रीत मैं नित्यदास इस हिस्से के बदले,' प्रियतम॥६४१॥

अहो! पश्य अस्माकं दुर्दैवं सम्प्रति क्रीतदासोऽपि निज-
स्वामिनीं प्रति ईदृशः ज्ञान-सन्देश प्रेषको भवति इत्युक्त्वा
उन्मत्तेव हसति॥

विशाखायाः उक्तिः—

क्यों याद करें, साँवर परिवा भादों कृष्णा की थी, प्रियतम!
थी केश सँवार रही तेरे, छिपकर वे कह भागे, प्रियतम!
'जिनके कच हैं, करती जो है रचना, वे नित्य बसें,' प्रियतम!
'मेरे उर में, निर्बाध करूँ उनके पद की सेवा,' प्रियतम॥६४२॥

चित्रायाः उक्तिः—

अब समझ गयी, साँवर कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं, प्रियतम!
तुझसे प्रेषित दिन में थी री! मैं मिली, कहा उनने, प्रियतम!
'परिशोध नहीं तुम दोनों के ऋण का कर पाऊँगा,' प्रियतम!
'जैसे कह दोगी, जीवन भर करके, संतोष करूँ,' प्रियतम॥६४३॥

जयतु वञ्चकशिरोमणिः नन्दनन्दनः इति निगद्य
उन्मत्तेव अट्टहासः॥



श्रीललिताजी



श्रीविशाखाजी



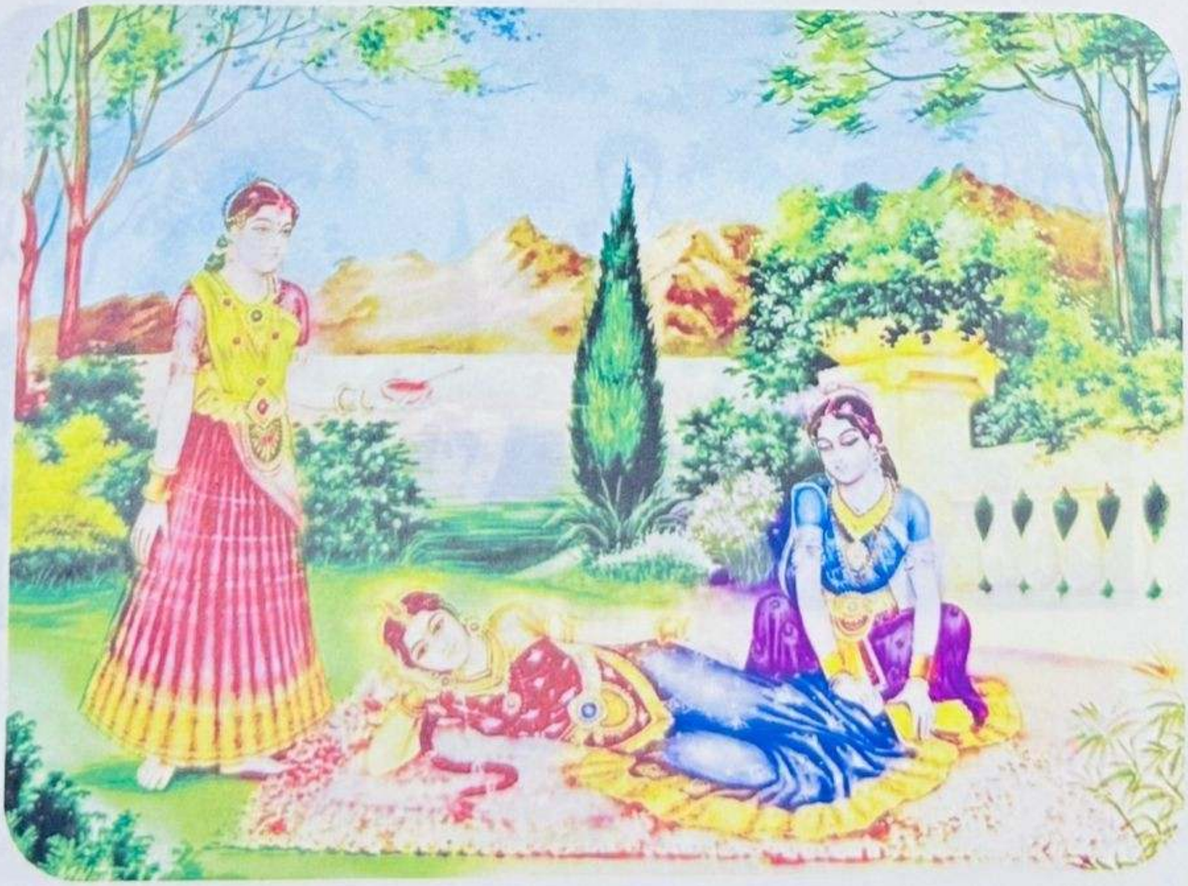
श्रीचित्राजी



श्रीइन्दुलेखाजी



श्रीचम्पकलताजी



श्रीरंगदेवीजी



श्रीतुंगविद्याजी



श्रीसुदेवीजी

इन्दुलेखायाः उक्तिः —

थी रात अँधेरी, साँवर थे अञ्चल से उलझे-से, प्रियतम!
लज्जा में डूबी, बचनबद्ध तुमसे, पर मैं चुप थी, प्रियतम!
पड़कर चरणों में स्वीकृति वे मेरी थे चाह रहे, प्रियतम!
थी सन्धि हुई जिन शर्तों पर, हैं जला रही अब वे, प्रियतम॥६४४॥

चम्पकलतायाः उक्तिः —

भौंरा है, नहीं-नहीं, भौंरी, वह वाग्युद्ध-सा था, प्रियतम!
वे हार गये, मैं जीत गयी, तू ही थी पंच बनी, प्रियतम!
बन्धन वह अहो! कुन्तलों से हाथों का कैसा था, प्रियतम!
क्या आशा थी सपने में भी, इतने झूठे वे हैं? प्रियतम॥६४५॥

रङ्गदेव्याः उक्तिः —

हेमन्तनिशा थी बीत चुकी, षष्ठी कृष्णा पहली, प्रियतम!
री! मैं सपने में देवी की कर रही अर्चना थी, प्रियतम!
उस समय चपल हो बोले वे, 'हूँ नित्य बँधा मैं तो', प्रियतम!
तत्क्षण मैं जगी, उक्ति सच थी, पर अब सब सपने की, प्रियतम॥६४६॥

तुङ्गविद्यायाः उक्तिः —

ऋतुराज-शिशिर की सन्धि हुई दो दिन पहले ही थी, प्रियतम!
मैं खड़ी अटारी पर थी, रवि थे क्षितिज छू रहे-से, प्रियतम!
री! तू जाने, भ्रम हुआ मुझे या सत्य पधारे वे, प्रियतम!
उनका दुकूल बंधक रखना पर अर्थहीन अब है, प्रियतम॥६४७॥

सुदेव्याः उक्तिः —

दुपहरी ग्रीष्म की तपती थी, मेरा उर था तपता, प्रियतम!
तेरे प्रति री! लखकर उनकी सुस्पष्ट वञ्चनाएँ, प्रियतम!
चन्दन-विलेप देकर वे थे हर रहे ताप तेरा, प्रियतम!
उस तालवृन्त पर के अक्षर उनके मिथ्या सब हैं, प्रियतम॥६४८॥

मञ्जुश्यामायाः उक्तिः —

री बहिन! अङ्क से तेरे थी लग कर सोयी-जैसे, प्रियतम!
कैसे क्या था सब हुआ, उसे तू याद तनिक कर ले, प्रियतम।
तब से हूँ देख रही, मेरे उर में हरदम तू है, प्रियतम!
है नित्य बसे फिर वे तुझमें, रोती तथापि मैं हूँ, प्रियतम॥६४९॥

भगिनि! मन्येयं भ्रान्तिः अथवा सत्यानुभूतिः इति न ज्ञायते त्वं तु यदा रोदिषि तर्हि अस्माकं प्रियतमः प्राणाधिकः प्राणेश्वरः प्राणवल्लभः नित्यनवनिकुञ्जेश्वरः नित्यवृन्दावनेश्वरः नन्दनन्दनः सम्प्रति मधुपुर्यां एव वसति इति निश्चीयते इति भगिनीं सम्बोध्य भगिन्याः अङ्के शिरः निधाय फूत्कारपूर्वकं क्रन्दनम् ।।

मधुमत्याः उक्तिः —

नीरस मेरा स्वर था, अब भी नीरस यह तो है ही, प्रियतम !
री! पड़ती थी मधुमय तेरे स्वर की इस पर छाया, प्रियतम !
थे बिके सदा के लिये अतः वे मेरे हाथ भला, प्रियतम !
क्यों चले गये बहका मुझको, इसको वे ही जानें, प्रियतम ।।६५०।।

विमलायाः उक्तिः —

मेरा गोरापन था प्यारा इतना कि एक दिन तो, प्रियतम !
वे खो बैठे स्वस्मृति तक भी मुझको निहारते ही, प्रियतम !
छूटा न रंग मेरे तन का, मन का, पर वे बदले, प्रियतम !
अपना ही साथ न देता है प्रतिबिम्ब अँधेरे में, प्रियतम ।।६५१।।

श्यामलायाः उक्तिः —

था छिपा कलङ्की शशि काले बादल की ओट लिये, प्रियतम !
शङ्कित हो गृह-फुलवारी में मैं बाट जोहती थी, प्रियतम !
तेरी ही री। सहचरी बनी अभिसारकारयित्री, प्रियतम !
अर्पण युग कुड्मल करने का था मिलना लाभ यही, प्रियतम ।।६५२।।

पालिकायाः उक्तिः —

थी नीलवारिधर ने ही यह यौवनवल्ली सींची, प्रियतम !
जब फूल लगे, सौरभ आया इसमें, तब चला गया, प्रियतम !
बोली थी यह, 'ठगना मत,' तब उसने था कहा, भला, प्रियतम !
'सम्बन्ध टूटता है क्या, जो प्राणों का होता है?' प्रियतम ।।६५३।।

भद्रायाः उक्तिः —

आँखें झप जाती थीं मेरी, मिलना वह था पहला, प्रियतम !
नीली किरणों का स्वागत कर पायी जैसे-तैसे, प्रियतम !
उनका था शील कि मेरा री! विश्वास कर सकी जो, प्रियतम !
भादों सित तेरस की छठी-प्रजन की पद्धति में, प्रियतम ।।६५४।।

धन्यायाः उक्तिः —

कितने युग तब से बीत गये, कम्पन है वैसा ही, प्रियतम!
मेरे कर-पद में सृष्ट हुआ जो उनके छूने से, प्रियतम!
उल्लास एक या किंचित् सुख दे सकी कभी तुझको, प्रियतम!
वह मिटा, बात खोखली ही थी पूनो चैती निशि की, प्रियतम॥९५५॥

तारिकायाः उक्तिः —

उस दिन से ही तन्मयता थी मेरे प्रति बढ़ी हुई, प्रियतम!
जो मेरी साँस चित्र उनके उर में लिख देती थी, प्रियतम!
जब हुआ ज्ञान-रवि से ब्रज का भावित शशि नीला भी, प्रियतम!
तारक की आभा में तब है क्या भरी बड़ी शोभा, प्रियतम॥९५६॥

रूपमञ्जर्याः उक्तिः —

लावण्य अरी! त्रिभुवन में है अप्रतिम नित्य तेरा; प्रियतम!
हो रहा अनादिकाल से हूँ न्योछावर इसपर मैं; प्रियतम!
है उक्ति निरर्थक उनकी यह भादों सित परिवा की प्रियतम!
विश्वास करूँ किसका, कपटी जब हुए कुञ्जराजा, प्रियतम॥९५७॥

लवङ्गमञ्जर्याः उक्तिः —

लगते वसन्त की रजनी थी अँधियारी नवमी की, प्रियतम!
तेरे समीप उनको लेकर केवल मैं पहुँच सकी, प्रियतम!
किसका मुख-सौरभ वासित है करता निकुञ्जथल को, प्रियतम!
उनके उस रसमय कौतुक का है पर्यवसान यहाँ, प्रियतम॥९५८॥

चन्दनमञ्जर्याः उक्तिः —

है पारिजात सुरभित या ये तेरी कुञ्चित अलकें, प्रियतम!
निर्णय जैसे जो हुआ, उसे तू एक जानती है, प्रियतम!
पड़ गयी भुलावे में तेरी ममता से दबी हुई, प्रियतम!
क्या पता मुझे था, उनकी यह झूठी अधीनता थी, प्रियतम॥९५९॥

कर्पूरमञ्जर्याः उक्तिः —

देकर उरका कण-कण उनकी मैंने रुचि थी रख दी, प्रियतम!
आषाढ़ी दूज असित का दिन कैसे मैं भूलूँगी, प्रियतम!
'इस भाँति नित्य तेरे प्रति भी मैं नेह निभाऊँगा,' प्रियतम!
आशा यह जिसने दी थी, दी उसने ही तोड़ उसे, प्रियतम॥९६०॥

रतिमञ्जर्याः उक्तिः —

आमों में बौर लगा था, वे मुझसे थे पूछ रहे, प्रियतम!
अर्चनकी विधि, मैं क्या उत्तर इसका देती उनको, प्रियतम!
मेरी वह किंतु मूक मुद्रा बन गयी धरोहर थी, प्रियतम!
उनकी ही वाणी में, पर अब समझी, वह चकमा था, प्रियतम॥६६१॥

गुणमञ्जर्याः उक्तिः —

विजयादशमी थी, उनकी भी जय हुई अनोखी थी, प्रियतम!
हारे-ही-हारे नित्य अरी! तुझसे अबतक वे थे, प्रियतम!
उस दिन पर खिसक गयी कटि से किङ्किणी अचानक ही, प्रियतम!
वे जीत गये, यह आज मिला है पुरस्कार मुझको, प्रियतम॥६६२॥

केलिमञ्जर्याः उक्तिः —

अञ्जन अनामिका से लेकर वे चले आँजने थे, प्रियतम!
तेरे लोचन, इतने में कर दोनों काँपे उनके, प्रियतम!
बायें को तू सँभालती थी, सुखमय अवलम्बन दे, प्रियतम!
दाहिने को मैंने थामा था, उसका बदला यह है, प्रियतम॥६६३॥

विलासमञ्जर्याः उक्तिः —

शत-सहस निहोरों से दबकर साहस बटोर पायी, प्रियतम!
नाची थी दस पल, नीरज-मुख उनका यह देख खिला, प्रियतम!
राका-शशि को साखी रखकर मेरे कर उर में ले, प्रियतम!
जो दान दिया था मुझे, मोल है रखता इतना ही, प्रियतम॥६६४॥

लासिकायाः उक्तिः —

'कैसी होती है कविता यह, तुझमें मैं देख सका;' प्रियतम!
'अब निरवधि रस भरती रहना इन कर्णपुटों में तू;' प्रियतम!
उनके मुख से निकला था यह, सुनकर वर्णन मेरा, प्रियतम!
तेरे दृग का, फूली मैं, पर थे भाल-लेख ऐसे, प्रियतम॥६६५॥

प्रेममञ्जर्याः उक्तिः —

तेरस आषाढ़ी शुक्ला का अपराह्न काल वह था, प्रियतम!
आठों कुञ्जों में घूम-घूम अत्यन्त थकी मैं थी, प्रियतम!
प्रस्वेद भरा था गालों पर मेरे, समीर चुप था, प्रियतम!
उस समय मिले थे वे, पर यह सर्वथा भूल बैठे, प्रियतम॥६६६॥

कुन्दमञ्जर्याः उक्तिः—

मेरा हँसना उनको इतना प्रिय था कि हाथ रखते, प्रियतम !
मेरे चरणों पर, फिर भी जब मैं रोक हँसी लेती, प्रियतम !
कैसी-कैसी मुद्रा रचते, आखिर मैं हँस पड़ती, प्रियतम !
वह समझ न पायी, क्रन्दन की बन रही भूमिका थी, प्रियतम ॥९६७॥

मञ्जुलीलायाः उक्तिः—

भूली-सी बैठी सोच रही थी, सत्य कौन मैं हूँ, प्रियतम !
फागुन शुक्ला षष्ठी का था मध्याह्न हुआ न अभी, प्रियतम !
पीयूष-सरित था, सागर था उमड़ा क्षणभर सहसा, प्रियतम !
है बड़वानल पर उसमें भी, जाकर अब समझ सकी, प्रियतम ॥९६८॥

मदनसुन्दर्याः उक्तिः—

वह तेरे सरस सरोवर का मध्यस्थ कुञ्जथल था, प्रियतम !
श्यामा थी मेरे साथ, और मिलने आये वे थे, प्रियतम !
उनकी उस अतुल रसिकता का, फिर आज विरसता का, प्रियतम !
दोनों ही चित्र सामने हैं री ! हँसूँ कि रोऊँ मैं, प्रियतम ॥९६९॥

पद्ममञ्जर्याः उक्तिः—

'स्वर्णिम मृदुला इस बेली के उपयुक्त नीलतरु है, प्रियतम !
द्रुम यह निसर्ग का भी स्वभाव जब नहीं छोड़ता है, प्रियतम !
वे तो फिर अविचल हैं ही,' मैं बोली, वे भी बोले, प्रियतम !
था 'एवमस्तु' पर वह झूठा सावन सित बारस का, प्रियतम ॥९७०॥

अशोकमञ्जर्याः उक्तिः—

सुन्दर अशोक की छाया में निर्मित निकुञ्ज वह था, प्रियतम !
री ! तेरे और साँवरी के वे बीच अवस्थित थे, प्रियतम !
"हो नित्यसुहागिन तुम सब तो," है उक्ति सत्य उनकी, प्रियतम !
सिन्दूर माँग पर हुतभुक्-सा जल रहा किंतु यह है, प्रियतम ॥९७१॥

सुधामञ्जर्याः उक्तिः—

अनुरूप नाम के ही तेरे है सुधाभरी तुझमें, प्रियतम !
वे कहते थे, मैं भोली थी, यह सत्य मान बैठी, प्रियतम !
अतएव फुल्ल हो कह देती मैं मधुर खरी-खोटी, प्रियतम !
गजदन्त दिखाने-खाने के हैं दो, अब समझी हूँ, प्रियतम ॥९७२॥

मौदिन्याः उक्तिः —

करती है जो गठबन्धन, वह लेती है नेग, भला, प्रियतम!
बोली मैं अभिनय में थी, फिर उनका उत्तर यह था, प्रियतम!
'प्रियतमा नित्य तेरी है ही, मैं भी अब हूँ तेरा;' प्रियतम!
ऐसा ही अबतक लगा, किंतु है खेल खेल ही तो, प्रियतम॥६७३॥

माधव्याः उक्तिः —

उस दिनकी आँखमिचौनी में तू निर्णय दे बैठी, प्रियतम!
अस्पृश्य हुए माधव हैं, ली छू लता माधवी ने, प्रियतम!
दो पलका वह वियोग उनको अखरा, बोले मुझसे, प्रियतम!
'तू मुझे बचा ले और कौन ले;' क्या वह सपना था, प्रियतम॥६७४॥

शशिरेखायाः उक्तिः :-

कानन मयंक-किरणों से था भूषित, मैं बैठी थी, प्रियतम!
वे राग भरे लोचन से थे मुझको ही देख रहे, प्रियतम!
'तेरा अधरस्मित उज्ज्वल है सुन्दर शशिकर से भी;' प्रियतम!
उनका कहना हगका झरना, कोरा मेरा भ्रम था, प्रियतम॥६७५॥

हारहीरायाः उक्तिः :-

अवगाहन कर तू सरसे थी निकली, जल-बूँदें थीं; प्रियतम!
तेरे कुन्तल से झरती, यह मैं देख कह उठी थी, प्रियतम!
'है भरी कृष्णता जिसमें भी, चूता है रस उससे;' प्रियतम!
'रीता पर फिर हो जाता है;' बोले वे, सच वह है, प्रियतम॥६७६॥

सुकेरयाः उक्तिः :-

इस शारदीय पूनो निशि में उस इन्दुनीलमणि को, प्रियतम!
मैं जड़ूँ जम्बुसरितावाली इस पुरट-अँगूठी में, प्रियतम!
कीमत मैंने यह चाही थी कुन्तल सँवारने की, प्रियतम!
'ऐसा ही हो' वे बोले, क्या था यही अर्थ उसका, प्रियतम॥६७७॥

कुन्दलतायाः उक्तिः :-

मैं साध्य अनादि लिये यह थी मेरे उस परिणय का, प्रियतम!
उनके प्रच्छन्न पाणिधारणवाले उस अभिनय का, प्रियतम!
हो पर्यवसान नित्य तेरे, उनके सुखवर्धन में, प्रियतम!
था वचन दिया उनने भी, पर है सारहीन आशा, प्रियतम॥६७८॥

सौदामिन्याः उक्ति :—

उनके उत्तर को अब समझी, मैंने था प्रश्न किया, प्रियतम !
'क्यों अहो! प्रीति की गति सीधी होती है नहीं कभी,' प्रियतम !
'साँचे के ही अनुरूप वस्तु रस की ढल जाती है;' प्रियतम !
'टेढ़ा मैं हूँ, छू मुझे नित्य टेढ़ी चलती यह है;' प्रियतम ॥६७९॥

हंसिन्याः उक्ति :—

'मिलने से पहले अमिलन का रहता है दुःख बड़ा;' प्रियतम !
'मिलते हो किन्तु न रहता है दो-पन का भेद वहाँ;' प्रियतम !
जीवन की धारा ऐसी ही समझे बैठी मैं थी, प्रियतम !
अब पता लगा, शिक्षा उनकी वञ्चना भरी यह थी, प्रियतम ॥६८०॥

सुलोचनायाः उक्ति :-

आँखों में तन्द्रा-सी आयी उनकी, मैंने देखा, प्रियतम !
विश्राम करें, जग-जगकर अब हो गये भ्रमित ये हैं, प्रियतम !
अतएव बहाना कर अपने लोचन मैंने मूँदे, प्रियतम !
री! तत्कालीन उक्ति उनकी क्या वह बनावटी थी, प्रियतम ॥६८१॥

मञ्जुलायाः उक्तिः-

लोचन भर-भर आते उनके, पुलकित थे अङ्ग सभी, प्रियतम !
वे लिखते, पुनः मिटाते थे मृगमद के चित्रों को, प्रियतम !
केवल वक्षःस्थल चित्रण में पूरी हो गयी निशा, प्रियतम !
उल्लास दृगों का उस दिन का उनके क्या कृत्रिम था, प्रियतम ॥६८२॥

चारुशीलायाः उक्ति :-

तेरी ग्रीवा में सुमनों का वे पदक धराते थे, प्रियतम !
मैं भूल गयी अपने को ही, होकर तन्मय उसमें, प्रियतम !
लौटी जब फिर इस तन में थी, तो चुकी दुपहरी थी, प्रियतम !
उनका मुझको उर में भर यह सब कहना ठगना था, प्रियतम ॥६८३॥

विद्युन्मालायाः उक्तिः-

'है तड़ितपना तुझमें, मेरा है रंग नीलघन का;' प्रियतम !
'तेरा घर मेरा उर ही है, तू आ छिप जा इसमें।' प्रियतम !
उनने था कहा निशा में यह भादों सित षष्ठी की, प्रियतम !
मैं तो वैसी-की-वैसी हूँ, बदला पयोद नीला, प्रियतम ॥६८४॥

सरोजिन्याः उक्तिः—

थी साँझ, महावर लगा रहे वे थे तेरे पद में, प्रियतम !
उनका, मेरा मन डूब गया उस चिह्न सरोरुह में, प्रियतम !
आगे जब हम शशि चला गया, रवि लगा झाँकने था, प्रियतम !
था एक समय वह भी, अब है यह दिवस आज का भी, प्रियतम ॥ ९८५ ॥

मदनालसायाः उक्तिः—

कोई क्या भाँप सकी अब तक, ऐसा होता क्यों था, प्रियतम !
आती जब मुझे जँभाई, दृग मीलित होते उनके, प्रियतम !
अपनी भावना सरस उनने थी कही एक मुझसे, प्रियतम !
पर थी विडम्बना मेरी वह सच होती, क्यों जाते, प्रियतम ॥ ९८६ ॥

इन्दिरायाः उक्तिः—

दो घड़ी शेष रजनी थी, तू, मैं, वे-थे तीन जने, प्रियतम !
तू लेट गयी दृग बंद किये, बैठी मैं थी, वे थे, प्रियतम !
रेखा है ऊर्ध्व वाम पद में तेरे जो, फल उसका, प्रियतम !
कह रहे कान में थे मेरे, झूठा क्या है वह भी, प्रियतम ॥ ९८७ ॥

मनोहरायाः उक्तिः—

हेमन्त-अष्टमी उजियारी थी प्रथम मासवाली, प्रियतम !
हिमकर निकुञ्जलतिका की ले था ओट नमन करता, प्रियतम !
संदेश तुझे कुछ देता था, अनुमति लेता-लेता, प्रियतम !
उस समय कह उठे थे वे जो मुझसे, कैसे भूलूँ, प्रियतम ॥ ९८८ ॥

अवशिष्टानां सहचरीणां उक्तिः—

वैशाखी सित नवमी थी, यह देवी का स्वप्न हुआ, प्रियतम !
बहुकाल पुनीत उसी व्रत के परिणाम सभी हम हैं, प्रियतम !
साँवर ने हमें जगाया था, लेकर भुज बन्धन में, प्रियतम !
बोले; इस नित्य मिलन की ही यह नित्य भूमिका है। प्रियतम ॥ ९८९ ॥

सहसा सब सहचरियाँ क्रन्दन कर उठीं करुण इतना, प्रियतम !
जो बात दूत की दूर, विकल हो नीर सरोवर का, प्रियतम !
बढ़कर कूलों को प्लावित कर, छूकर कटि तक, उनको, प्रियतम !
बह चला वनस्थल के द्रुम की मूलों से उलझ गया, प्रियतम ॥ ९९० ॥

'साँवर का किंकर हूँ, ज्ञाता मैं परमतत्व का भी,' प्रियतम !
जो दूत लिये मन में यह था अभिमान, जला उसमें, प्रियतम !
साँवर से जुड़ा हुआ जीवन कैसा हो जाता है, प्रियतम !
वह आज तनिक-सा देख सका बाला की सखियों में, प्रियतम ।। ९९१ ।।

खुल गया द्वार अब अन्तर का, आलोक मिला सच्चा, प्रियतम !
लोचन के आगे छाया था जो तिमिर अनादि, मिटा, प्रियतम !
साँवर हैं क्या ? बाला है क्या ? रस है क्या ? तत्व सही, प्रियतम !
यह मिला किसी को जिधर, वही पथ आज मिला उसको, प्रियतम ।। ९९२ ।।

बाला पुतली-सी बैठी थी, आँखों से रेखा-सी, प्रियतम !
अविराम भावना हृत्तल की विगलित हो थी आती, प्रियतम !
हो निर्निमेष वह दूत लगा भरने अपने दृग में, प्रियतम !
थोड़ी-सी भरते ही उसको अनुभूति विचित्र हुई, प्रियतम ।। ९९३ ।।

मानो बिजली-सी चमक गयी, पीला पट फहर उठा, प्रियतम !
साँवर का जो पहने वह थी लँहगा नीला, उसमें, प्रियतम !
फिर पीले अम्बर के अन्दर नीली साड़ी उसकी, प्रियतम !
थी स्यूत हुई, था भरा पुनः पीताभ-चीर उसमें, प्रियतम ।। ९९४ ।।

नीले-पीले वसनों का क्रम निर्धारित हो जैसे, प्रियतम !
तह-पर-तह बने अतुल सज्जित अगणित अनन्त वे थे, प्रियतम !
फिर उसी तरह पदपृष्ठों की कोमल अङ्गुलियों की, प्रियतम !
स्वर्णिम छवि में घन था, घन में फिर थीं पिङ्गल लहरें, प्रियतम ।। ९९५ ।।

कटि से ऊपर आँखें जब थीं उठतीं, तब था लगता, प्रियतम !
बाला में हैं साँवर पूरित, साँवर में है बाला, प्रियतम !
भीतर, फिर भीतर, वैसे ही ज्यों-ज्यों दृग थे बढ़ते, प्रियतम !
क्रमशः असंख्य थे साँवर, थी क्रम से बाला उनमें, प्रियतम ।। ९९६ ।।

जब लगा दीखने था ऐसे उस दूत मनीषी को, प्रियतम!
हो गया भ्रमित, साँवर हैं या बाला सन्मुख मेरे, प्रियतम!
'अधिदेवि! पाहि हे, पाहि सदा साँवर के प्राणों की, प्रियतम!
'देवी के देव! पाहि' कह कर ली मूँद आँख उसने, प्रियतम॥९९७॥

सुन पड़ी मधुरतम वंशी की इतने में तान उसे, प्रियतम!
जो निकट, निकटतर उसके थी क्रमशः होती जाती, प्रियतम!
मादकता भरी हुई उसमें ऐसी थी, जो न कहीं, प्रियतम!
थी मिली कभी उसको, मोहित होकर वह झूम उठा, प्रियतम॥९९८॥

लोचन बरबस खुल गये तथा दीखा सुन्दर वन है, प्रियतम!
गो-चारण कर धीरे-धीरे साँवर हैं लौट रहे, प्रियतम!
आ गये समीप, रही दूरी जब दो हाथों की ही, प्रियतम!
हँस पड़े और बोले, 'भैया! मेरा घर तो यह है।' प्रियतम॥९९९॥

'देखो, प्रस्तुत कर नीराजन, वह बाट देखती है', प्रियतम!
'मेरी मैया आकुल, 'मेरा साँवर आता होगा,' प्रियतम!
'केवल हैं तीन पहर बीते, लेकर अपनी गायें' प्रियतम!
'मैं था अरण्य में घूम रहा, चिन्ता में है जननी।' प्रियतम॥१०००॥

दीखी प्रवाहिणी कृष्णा फिर लहराती थी बहती, प्रियतम!
शोभित निकुञ्ज सख्यों की थी अवली तट पर उसके, प्रियतम!
बाला के दक्षिण कंधे पर कर रखकर, साँवर थे, प्रियतम!
उससे कहते कुछ, थी बाला आँखों में प्यार लिये, प्रियतम॥१००१॥

दोनों हँसते फिर चले गये, आगे उसने क्या-क्या, प्रियतम!
देखा, कैसे कह दूँ सब कुछ, है बात बड़ी लम्बी, प्रियतम!
इतनी-सी कह देती हूँ, वह अनुभव कर धन्य हुआ, प्रियतम!
बाला को लेकर नित्य यहीं साँवर हैं खेल रहे, प्रियतम॥१००२॥

होगये दिवस कितने उसको आये इस कानन में, प्रियतम !
हो गयी उसे विस्मृति इसकी, डूबा रहता रस में, प्रियतम !
बाला की सहचरियाँ जो कुछ कहतीं, सुनता रहता, प्रियतम !
बाला के सम्मुख जाकर तो केवल रोने लगता, प्रियतम ॥१००३॥

किसलिये, अचानक भान हुआ, आया था यहाँ सही, प्रियतम !
निकली मन से फिर बात वही साँवर के रहने की, प्रियतम !
ले रहा हिलोरें सागर था दुख का, जिसमें सब थीं; प्रियतम !
वे डूब रही, था पास खड़ा वह, याद रही इतनी, प्रियतम ॥१००४॥

'हूँ निपट अनधिकारी इनका दर्शन कर लेने का'; प्रियतम !
'सपने में भी'; अनुभव ऐसा अब द्रुत लगा करने, प्रियतम !
'मौखिक शरणागति से ही वे साँवर ढर जाते हैं,' प्रियतम !
'अतएव दया कर दी उनने, मुझको ही भेज दिया,' प्रियतम ॥१००५॥

'जाना है किंतु यहाँ से अब, मेरे-जैसा कोई,' प्रियतम !
'कैसे रह सकता है पद की छाया में बाला के'; प्रियतम !
'आँसू से जो सींचूँ उर को, चिरकाल रहे वर्षा'; प्रियतम !
'आशा मेरी वह एक कहीं अङ्कुरित भले तब हो'; प्रियतम ॥१००६॥

'सुन सका न बाला की वाणी मेरा यह भाग कहाँ ?', प्रियतम !
'विनती करने का भी मुझको अधिकार नहीं सच है।' प्रियतम !
'जो स्वतः कहीं कह दे कुछ यह, जीवन अनन्त तक का,' प्रियतम !
'सम्बल मिल जाय मुझे, फिर तो कोई न मिले मुझ-सा'; प्रियतम ॥१००७॥

टप-टप झर कर दृग थे उसके अवनी गीली करते, प्रियतम !
मन-ही-मन विनय सुनाता था अत्यन्त अधीर हुआ, प्रियतम !
'हे साँवर नाथ! दया मुझपर इतनी-सी और करो,' प्रियतम !
'ये श्रवण सदा के लिये तृषित रह जायें नहीं मेरे।' प्रियतम ॥१००८॥

ललिता की एक बहिन उससे छोटी जो थी श्यामा, प्रियतम !
करुणा की धारा से स्वर में कह उठी नहायी-सी, प्रियतम !
'री! बहिन, दूत अब जाता है साँवर की सेवा में;' प्रियतम !
'उनका संदेश लिये यह था आया, तू भी दे-दे।' प्रियतम॥१००९॥

सागर के नील अतल तल से ऊपर वह उठ आयी, प्रियतम !
अपनी उस बहिन कनिष्ठा की ठोड़ी को छू करके, प्रियतम !
रोती कुछ देर रही अतिशय विह्वल भरकर सुबकी, प्रियतम !
धीरज समयोचित धर उसकी फिर लाड़ चली रखने, प्रियतम॥१०१०॥

दशम शतक समाप्त



किशोरी मुखर हुईं......

अञ्चल से पोछ अश्रु, बोली बाला, लेकर माला, प्रियतम !
साँवर ने जो पहनायी थी जाते-जाते उसको, प्रियतम !
क्या दूँ संदेश, भला, उनको, अच्छा, कहना उनसे, प्रियतम !
सुख से रहना, सपने में भी छूये न शोक तुमको !, प्रियतम ।।१०११।।

है कुञ्ज हृदय यह बना हुआ, जिसमें रहते तुम हो, प्रियतम !
भ्रम होता है या सदा मुझे, मैं जान नहीं पायी, प्रियतम !
दो बनकर हो तुम खेल रहे या हूँ दीवानी मैं, प्रियतम !
निर्णय इसका अब कौन करे, कर लेना तुम मन में, प्रियतम ।।१०१२।।

सचमुच ही हो यदि चले गये दासी को छोड़ यहाँ, प्रियतम !
है उचित किया तुमने, तब तो पाओगे सुख इससे, प्रियतम !
सुन्दर तुम हो, दृग में, उर में, निर्मल अनुराग लिये, प्रियतम !
मुझमें सुन्दरता का भ्रम था हो गया अतः तुमको, प्रियतम ।।१०१३।।

सद्‌गुण है मुझमें एक नहीं, दोषों की हूँ प्रतिमा, प्रियतम !
रीझे तुम थे फिर भी केवल मुझपर, सबको भूले, प्रियतम !
लज्जा में गड़ जाती जब तुम देकर सर्वस्व मुझे, प्रियतम !
'प्राणेश्वरि !' कह उर में भरते गुण-रूप-विरहिता को, प्रियतम ।।१०१४।।

जब रूप नहीं, गुण-लेश नहीं, भ्रम दूर करूँ कैसे, प्रियतम !
कैसे समझाऊँ मैं तुमको, थी समझ नहीं पाती, प्रियतम !
फिर भी प्रतिदिन तुमसे इसका संकेत किया करती, प्रियतम !
थक जाती, जब लेती सँवार अपने इन अङ्गों को, प्रियतम ।।१०१५।।

हो जाऊँ तनिक कदाचित् मैं सुन्दर सँवारने से, प्रियतम !
ये कहीं बसन-भूषण-चन्दन मेरा कुरूप ढक दें, प्रियतम !
आदर्श गुणों से भूषित जो सहचरियाँ हैं मेरी, प्रियतम !
उनको करती थी याद कहीं छू लूँ छाया उनकी, प्रियतम ।।१०१६।।

होता था किंतु सदा ही यह अनुभव न, बनी मैं हूँ, प्रियतम!
गुणवती, सुरूपा, जिसको तुम दे दो सब कुछ अपना, प्रियतम!
इतने पर भी था प्यार मिला मुझको तुमसे ऐसा, प्रियतम!
जो ले न सकी अबतक कोई, आगे तुम ही जानो, प्रियतम ॥१०१७॥

अतएव सत्य ही हो यदि तुम मुझसे अब विलग हुए प्रियतम!
उस राजाकी नगरी में जा बस गये कहीं पर हो, प्रियतम!
मिल गयी सङ्गिनी हो तुमको कोई मनभायी-सी, प्रियतम!
है भाग खुला तब तो मेरा, सुखिया हूँ आज हुई, प्रियतम ॥१०१८॥

विधि ने मेरी विनती सुन ली, आखिर तुम चेत सके, प्रियतम!
मेरे प्रति जो था मोह महा, छूटा फंदा उसका, प्रियतम!
प्राणाधिक! भूल सके हो यदि सचमुच इस दासीको, प्रियतम!
दे प्यार किसीको, नाथ! अहा! कितने सुख में होगे, प्रियतम ॥१०१९॥

दे रही कल्पना ही जब यह सुख है अपार मुझको, प्रियतम!
हो जाय कहीं यह सत्य, भला, फिर तो क्या है कहना, प्रियतम!
लगता है किंतु असंभव यह, तुम भूल सको मुझको, प्रियतम!
है पता अनादिकाल से कुछ तुम हो कैसे, मेरे प्रियतम" ॥१०२०॥

जो दूत बना है, उससे, या अनुताप लिये उरमें, प्रियतम!
कहती है जो मुझसे री! 'वे हैं चले गये' उससे, प्रियतम!
कहती हूँ, 'अच्छा, सुनो तनिक, पर मत कहना, सबसे'; प्रियतम!
जीवन है क्या, जाकर देखो उनका, जुड़कर मुझसे" प्रियतम ॥१०२१॥

'वक्षःस्थल की धड़कन में है, बस, नाम भरा मेरा;' प्रियतम!
'आँखों की काली पुतली में हूँ भरी हुई मैं ही;' प्रियतम!
'उनके प्रत्येक रोम में हूँ परिपूरित केवल मैं;' प्रियतम!
'उनकी प्रत्येक वृत्ति में है इस दासीका मुख ही?' प्रियतम ॥१०२२॥

'कोई है छिपी शक्ति उनमें, जिससे कोई उनको ;' प्रियतम !
'पहचान नहीं पाता, तुम भी भोले हो या भोली;' प्रियतम !
'उनका मेरा वियोग होना सम्भव है नहीं कभी;' प्रियतम !
'रोते-रोते खुलकर आँखें यह सत्य सुलभ होगा।' प्रियतम ॥१०२३॥

'रोती क्यों हूँ फिर मैं, इसका कुछ मर्म बताती हूँ;' प्रियतम !
'संकोच नहीं है तनिक मुझे इसके कह देने में;' प्रियतम !
'क्रन्दन अनादि यह है मेरा, होगा न अन्त इसका;' प्रियतम !
'तुम समझ सको तो लो समझो जीवन यह है मेरा।' प्रियतम ॥१०२४॥

'है प्रेम-पाठशाला उरमें, पढ़ती थी, हूँ पढ़ती;' प्रियतम !
'है प्रथम पाठ, उच्चारण कर लिखना उन वर्णों को;' प्रियतम !
'खड़ियामिट्टी से नहीं, अश्रु भीतर से आता है;' प्रियतम !
'गीली-सी काँचमयी बनकर, अक्षर लिख जाता है;' प्रियतम ॥१०२५॥

'अक्षर का बोध हुआ जिसको, लिखती है शब्दों को;' प्रियतम !
'सीधे-सीधे रजताभ तनिक उन वारि-बिन्दुओं से;' प्रियतम !
'संयुक्त हुए फिर आते हैं बनकर सरसीले वे;' प्रियतम !
'आँखों की स्वर्णकणावाले से लिखकर पढ़ती वह है;' प्रियतम ॥१०२६॥

'अब है विधेय-उद्देश्यमयी वह भावपंक्ति आती;' प्रियतम !
'रहता है गूढ़ अर्थ निरुपम अज्ञात किंतु उसका;' प्रियतम !
'जो है विशुद्ध वह सत्वमयी अविराम नयनधारा;' प्रियतम !
'लिखते-लिखते उससे सबकी ताली मिल जाती है।' प्रियतम ॥१०२७॥

'है हेतुरहित जो सूक्ष्म, अमल, वह महाभाव विद्या;' प्रियतम !
'प्रतिपल है जो बढ़ती, अखण्ड, सीमाविहीन जो है;' प्रियतम !
'वस्तुतः अनिर्वचनीय सदा अनुभवमय है गहरी;' प्रियतम !
'अभिनव सुन्दर 'अथ' है उसका कहने के लिये यही;' प्रियतम ॥१०२८॥

'आगे क्या है, कोई भी क्या कह सकती है इसको; प्रियतम!
आगे जाकर जो डूब गयी, फिरती है क्या पीछे, प्रियतम!
कहती है जो जितना कुछ भी, है बात इधर की ही, प्रियतम!
कहनेवाली मुझ-सी सचमुच है डूबी हुई नहीं'; प्रियतम॥१०२९॥

इतना कहती-कहती बाला आकुल हो दौड़ चली, प्रियतम!
श्यामल तमालकी शाखाको कर में लेकर बोली, प्रियतम!
'जीवनधन! चलो, वहाँ, अब तुम, है जहाँ स्रोत नीला, प्रियतम!
दी थी तुमने जो यह तुमको पहनाऊँगी माला', प्रियतम॥१०३०॥

हूँ आर्द्र किये रहती इसको नयनों की बूँदों से, प्रियतम!
मुरझा न उठे यह किंचित् भी, इस भय से भीत हुई, प्रियतम!
हूँ सीख सकी अब तक मैं यह केवल इतना-सा ही, प्रियतम!
"जो वस्तु मिले तुमसे उसको वैसी ही है रखनी;" प्रियतम'॥१०३१॥

'पर नाथ! मुझे लेकर तुमको जाना है इस वन से, प्रियतम!
ठहरी क्यों हूँ फिर मैं, अच्छा, कह देती हूँ यह भी, प्रियतम!
यह माला ही बन्धन है, मैं देकर किसको जाऊँ, प्रियतम!
कोई न मिली मुझको ऐसी, कर पर जिसके रख दूँ, प्रियतम'॥१०३२॥

है नहीं फेंक देना सम्भव इसको, न साथ लेना, प्रियतम!
इसमें, तुममें है भेद नहीं, थी जुड़ी उरस्थल से, प्रियतम!
मैंने देखा, हूँ देख रही, कण-कण में तुम इसके, प्रियतम!
हो भरे हुए तुम ही हो या यह बनकर खेल रहे, प्रियतम'॥१०३३॥

हूँ सोच रही इनकी ही यदि वह उक्ति सत्य निकले, प्रियतम!
फिर भी तुम तो आओगे ही, आकर पर जो देखो, प्रियतम!
माना था प्राणेश्वरी जिसे, है फेंक दिया उसने, प्रियतम!
वह हार बना था जो मैं ही, आकुल कितने होगे, प्रियतम'॥१०३४॥

'पगली थी, भोली थी, दुखिया,' कहकर कुछ ऐसे ही, प्रियतम !
तुम लौट-चले जाने वाले होते यदि पुनः कभी, प्रियतम !
होती न मुझे इसकी चिन्ता, जाती मैं चली कभी, प्रियतम !
रोओगे पर तुम तो ऐसा, फट जाय हृदय नग का, प्रियतम ॥१०३५॥

'मुरझा जब धूल सनी माला अवनी पर पड़ी हुई, प्रियतम !
कह देगी मेरी बात विदा हो जाने की तुमसे, प्रियतम !
मानिनी हुई इन कुञ्जों में हूँ छिपी नहीं अब मैं, प्रियतम !
अब दूर, दूर, अत्यन्त दूर जा चुकी अकेली हूँ, प्रियतम' ॥१०३६॥

'उस ओर जिधर जाकर कोई है लौट नहीं पायी, प्रियतम !
है कहीं नहीं इतिहासों में ऐसा वर्णन मिलता, प्रियतम !
जीवित रह जाओगे क्या तुम रहने के लिये यहाँ, प्रियतम !
उस महाप्रलय को भ्रमसे भी मैं सोच नहीं सकती, प्रियतम' ॥१०३७॥

"कोई कह दे, 'फिर भोली री! क्यों साथ न ले जाती'? प्रियतम !
वह समझ नहीं पाता कुछ भी रस-रीति अतः कह ले, प्रियतम !
है नहीं कभी उसने देखा मेरा मिलना तुमसे, प्रियतम !
होता है निरावरण कैसा राका की रजनी में, प्रियतम" ॥१०३८॥

'अपनी ग्रीवा में जब तक तुम माला को थे पहने, प्रियतम !
थे सभी कुसुम अविकृत इसके आवरणहीन हँसते, प्रियतम !
अपनी इस दासी को तुमने पहना दी, इससे ही, प्रियतम !
मैं थी जैसी, ये फूल बने, पड़कर छाया मेरी, प्रियतम' ॥१०३९॥

'जो देख रहे तुमको थे वे प्रतिबिम्ब-गृहीत हुए, प्रियतम !
पर छाँही अधिक लगी प्यारी, भूला स्वरूप उनको, प्रियतम !
अभिमान भरी मैं तुमसे थी आराधन करवाती, प्रियतम !
अपने शरीर का दोष अतः इनमें ही वह आया, प्रियतम' ॥१०४०॥

'अब उसी उरःस्थल पर इनको है मुझे भुला देना, प्रियतम!
मिलकर तुमसे ये पुनः मुझे, तुमको पहचानेंगे, प्रियतम!
एवं उस धागे को, जिसमें सब नित्य पिरोये हैं, प्रियतम!
रोकर, हँसकर फिर हम दोनों खेलेंगे खेल नया, प्रियतम'॥१०८१॥

'इस वनमें नहीं, उधर आगे, आगे-से-आगे जा, प्रियतम!
है नित्य रसोदधि नील जहाँ क्रमशः गहरा-गहरा, प्रियतम!
है सदा एक-से-एक ऊर्मि ऊँची उठती रहती, प्रियतम!
जो है अनादि एवं अनन्त, उसमें क्रीड़ा होगी, प्रियतम'॥१०८२॥

इतना कहकर फिर छोड़ चली द्रुमकी डाली बाला, प्रियतम!
आगे कुछ और बढ़ी, मुड़कर हँसती-हँसती बोली, प्रियतम!
'हो प्राणनाथ! तुम? नहीं, नहीं, यह है मयूर बैठा, प्रियतम!
बिगड़ी है बुद्धि, अहो! मेरी, है कृष्ण मधुप यह तो, प्रियतम'॥१०८३॥

'कुछ सोच रहा है, जैसे वे गम्भीर कभी होते, प्रियतम!
प्रायः है रंग-ढंग इसका मिलता-जुलता उनसे, प्रियतम!
है म्लान दीखता किंतु हाय! इस समय न जाने क्यों, प्रियतम!
सम्भव है यह मेरा प्रलाप सुनकर है खिन्न हुआ, प्रियतम'॥१०८४॥

मैं देख न हाय! सकी, दृग हैं बह रहे सतत इसके, प्रियतम!
'भौंरा प्यारे! रोओ मत तुम, कह दो सब कुछ मुझसे,' प्रियतम!
'जो कुछ भी लिये हृदयमें हो, संकोच न तनिक करो,' प्रियतम!
'मैं हूँ उनकी प्यारी दासी, जो चाहोगे, दूँगी,' प्रियतम॥१०८५॥

'है कोष पूर्ण, सर्वदा अतुल, अक्षय, असीम उनका,' प्रियतम!
'स्वामिनी किंतु यह है दासी सर्वथा सदा उसकी,' प्रियतम!
'उज्ज्वल तारोंकी यह कुंजी प्राणाधिक ने मेरे,' प्रियतम!
'देखो बाँधी अपने कर से हँसकर है अञ्चल में,' प्रियतम॥१०८६॥

'अतएव असम्भव भी सम्भव करके दूँगी तुमको,' प्रियतम!
'विश्वास करो, उनकी दासी है सत्य सदा रहती,' प्रियतम!
'हे भौंरा! कठिन कीमत देनी आँखों की बूँदों की,' प्रियतम!
'अनमोल, भला, ये हैं, इनका प्रतिदान नहीं होता,' प्रियतम॥१०४७॥

'कोई विरला होता है, जो लेता है समझ इसे,' प्रियतम!
'खोता न कभी इनको वह है बाहर लाकर दृग से,' प्रियतम!
'मिटकर शरीर की सुधि, बरबस गिर पड़ती हैं जब ये,' प्रियतम!
'लेती हूँ बीन दौड़कर मैं, पाऊँ जो देख कहीं,' प्रियतम॥१०४८॥

'फिर हार बना जीवनधन के उर पर रख देती हूँ,' प्रियतम!
'हँसकर उरमें भर फिर मुझको पहना रोते वे हैं,' प्रियतम!
'उनके करतल पर सिर रखकर रो उठती हूँ अब मैं,' प्रियतम!
'है सुख अचिन्त्य हम दोनों के हँसने, उस रोने का,' प्रियतम॥१०४९॥

'इसलिये मिलिन्द! कहो, देकर यह भेंट अनूप मुझे,' प्रियतम!
'लेने की क्या अभिलाषा है, सब कुछ हूँ लिये खड़ी,' प्रियतम!
'देने में ही सुख है मुझको लेने से अधिक कहीं,' प्रियतम!
'उनका, मेरा स्वभाव कुछ है चिरकाल एक-सा ही,' प्रियतम॥१०५०॥

वाणी बाला की रुद्ध हुई, लज्जा में समा गयी, प्रियतम!
कहती-कहती कह दी उसने, जो बात न थी कहनी, प्रियतम!
होकर कुछ सावधान-सी फिर बोली, 'मधुकर तुम हो!' प्रियतम!
'बचना छाया से भी मेरी, भ्रम से भी मत छूना,' प्रियतम॥१०५१॥

'है मुझे प्रशंसा प्रिय अपनी, कर गयी स्वयं मैं हूँ,' प्रियतम!
'निर्मल मति हो, इससे इसपर विश्वास किया तुमने,' प्रियतम!
'हो गये प्रभावित ठगिनी की ठग-भरी सरलता से,' प्रियतम!
'फिर-चले पकड़ने चरण महामलिना इस अधमा के,' प्रियतम॥१०५२॥

'है सुधासिन्धु में, छिल्लर की कणिका में अन्तर जो'; प्रियतम !
'रविशशि के किरण दान में, फिर जुगनू के उड़ने में'; प्रियतम!
'चिन्तामणि में, उस छिन्न काँच मलपूरित में जो है'; प्रियतम!
'इतना पृथक्त्व शीलका है उनके एवं मेरे,' प्रियतम॥१०५३॥

'लेती-लेती न थकी मैं, वे हारे न कभी दे-दे'; प्रियतम !
'क्या मिला? सदा बोली मैं, वे, 'दे कुछ न सका' बोले,' प्रियतम !
'थी गर्व लिये 'स्वाहा सब कुछ करके जीती मैं हूँ'; प्रियतम !
'न्योछावर मैं न हुआ, धिक् है जीवन!' कहते वे थे,' प्रियतम॥१०५४॥

'इतने पर भी लज्जाहीना समता करने बैठी,' प्रियतम !
'उनसे अपनी, अलि हे रसविद! भारी अपराध हुआ,' प्रियतम!
'करती थी दम्भ सदा मैं हूँ, करती रहती अब भी;' प्रियतम !
'दे प्यार नहीं पायी क्षणभर सपने में भी उनको।' प्रियतम॥१०५५॥

रो उठी विकल बाला, कहकर अब 'साँवर! साँवर! हे प्रियतम !
देना वरदान, न हो मुझसे अपमान किसी का भी, प्रियतम!
दूँ भौंरे को छूने कैसे ये किंतु चरण अपने, प्रियतम!
जिनको रसमत्त हुए तुमने पोंछा था अलकों से, प्रियतम॥१०५६॥

'थे अभी क्षितिज के पार हुए दिनकर समेट किरणें,' प्रियतम!
लहरें श्यामा सरिता की थीं कहतीं मुझसे, 'ठहरो', प्रियतम!
पर तुम कहते, 'प्रियतमे! चलो, यह रात अँधेरी है''; प्रियतम!
'वन घोर गहन है सम्मुख का, पथ भी टेढ़ा कुछ है', प्रियतम॥१०५७॥

भारी असमंजस में अब थी, कैसे क्या करूँ, अहो! प्रियतम!
थी त्वरा भरी तुममें, दृग में मनुहार लहर के थी, प्रियतम!
'अनसुनी करूँ उसकी बिनती या और तनिक ठहरूँ'; प्रियतम!
'हँसते थे तुम, मैं चिन्तित थी कुछ रुककर फिर बोली;' प्रियतम॥१०५८॥

जल्दी क्या है? तुम ठगते हो, शुक्ला रजनी यह है, प्रियतम !
देखो, शशधर है प्राची में, बस, आनेवाला ही, प्रियतम !
वह आये, मत आये, श्यामल मुख ही प्रकाश देगा, प्रियतम !
जब हो तुम मेरे साथ सदा, क्या भ्रम है इस वनका; प्रियतम ॥१०५९॥

'रस से पूरित मीठी बातें कहकर हँसते चलना, प्रियतम !
ग्रीवा में देकर मेरी यह कर वाम मृदुल अपना, प्रियतम !
वनदेवी कर देगी रचना सुन्दर नवीन पथ की, प्रियतम !
पहुँचेंगे सीधे हम दोनों अपने निकुञ्जगृह में,' प्रियतम ॥१०६०॥

'मानो डर हो मनमें, ऐसे बोले अब तुम मुझसे, प्रियतम !
'मेरे प्राणों की रानी हे! अहि एक भयंकर है,' प्रियतम !
'हम दोनों खड़े जहाँ अब हैं, बस, उसी गगनतल में,' प्रियतम !
'रहता है छिपकर वह अथवा धरणी में धँसा हुआ,' प्रियतम ॥१०६१॥

ऐसा मायावी है, जिसको विरला ही जीत सके; प्रियतम !
'वह इसी समय पीने पानी आता है इधर यहीं,' प्रियतम !
'छाया भी पड़ते ही उसकी आती है बेहोशी;' प्रियतम !
ऐसी न मिटे, जो कोटि मरें पचहार हकीम भले, प्रियतम ॥१०६२॥

'उसके आने से पहले ही तटिनी को छोड़ चलें,' प्रियतम !
'देखेंगे खेल कभी फिर यह सुन्दर इन लहरों का,' प्रियतम !
'क्यों व्यर्थ बिकट झगड़ा भारी लें मोल अभी इससे;' प्रियतम !
'डर जाओगी तुम देख उसे उसने जो दौड़ पड़े;' प्रियतम ॥१०६३॥

मैं सदा हठीली जो ठहरी, बोली; 'अच्छा, देखूँ,' प्रियतम !
'कैसा है बतला दो केवल, पूरब से, पश्चिम से,' प्रियतम !
'उत्तर से या दक्षिण, नीचे अथवा वह ऊपर से;' प्रियतम !
'आयेगा तृषा बुझाने या सुख यह हरने मेरा;' प्रियतम ॥१०६४॥

कहकर, हँसकर मैं बैठ गयी, हँसते तुम खड़े रहे, प्रियतम!
बङ्किम चितवन से उत्तर की फिर धरा दिखा करके, प्रियतम!
यह कहा, 'जीवनेश्वरि! देखो, फटती-सी यह कुछ है,' प्रियतम!
'सम्भव है इस पथसे आये', इतने में दीख पड़ा, प्रियतम॥१०६५॥

सचमुच अतिशय काला विषधर फन काढ़े निकल पड़ा, प्रियतम!
डरकर मैं तुमसे चिपट गयी, बोले तुम, 'भय न करो।' प्रियतम!
'छू छाँह नहीं सकता मेरे प्राणों की देवी की,' प्रियतम!
'चञ्चलता प्राणाधिके! नहीं करना पर यहाँ भला,' प्रियतम॥१०६६॥

'यह देख रंग काला मेरा' है परपक्षी कोई,' प्रियतम!
'ऐसा है सोच रहा कपटी, डरता है इससे ही,' प्रियतम!
'काले-टेढे को होता है भय काले-टेढे से,' प्रियतम!
'गोरी-सरला तुम हो, मुझसे अतएव जुड़ी रहना,' प्रियतम॥१०६७॥

मैं भूल नहीं पाती जल से पूरित उन नयनों को, प्रियतम!
'गोरी-सरला' कहकर मुझको तुम देख रहे जब थे, प्रियतम!
प्राणों के संवेदन ऐसे केवल निधि है मेरी, प्रियतम!
कैसे कितने सुन्दर वे हैं किस भाँति कहूँ तुमसे, प्रियतम॥१०६८॥

जो हो, अपलक होकर अब मैं यों देख रही अहि को, प्रियतम!
सहसा उसके मुख में प्रतीति ऐसी हो गयी मुझे, प्रियतम!
'यह चिरपरिचित मुसकान सदा जो लिये अधर पर हो' प्रियतम!
मानो है छिपी वहाँ भी, बस, विकसित होगी क्षण में,' प्रियतम॥१०६९॥

इतने में उसकी आँखों में काली परछाँटी-सी, प्रियतम!
दीखी त्रिभङ्ग इन अङ्गों की मुद्रा अनुपम लोनी, प्रियतम!
फिर तो उस विषधर के तन के सारे अवयव में ही, प्रियतम!
भासित तुम एक लगे होने चञ्चल झलमल करते, प्रियतम॥१०७०॥

अत्यन्त अचम्भित थी, कैसे संघटित हुआ यह था, प्रियतम!
क्षण एक उसे, फिर बार-बार तुमको थी देख रही, प्रियतम!
उस महाउरग-उरमें तुम तो प्रत्यक्ष खड़े ही थे, प्रियतम!
मैं सोच रही थी, है सच यह, अद्भुत है या सपना, प्रियतम॥१०७१॥

'मेरे प्राणों के प्राण! सुनो, अब कहा पुनः तुमने, प्रियतम!
क्रीड़ा देखो हँस-हँसकर, पर आगे मत बढ़ जाना;' प्रियतम!
'दुर्दमन कहीं झपटे, डस ले विषमय दो दाँतों से;' प्रियतम!
मेरे जीवन का क्या होगा, अनुमान तनिक कर लो।' प्रियतम॥१०७२॥

हो गयी विमूढ़ा, कौतुक था यह भूल भुलैया-सा, प्रियतम!
आखिर तुमसे कह गयी, मुझे जैसे था दीख रहा, प्रियतम!
तुम हँसे, कहा, 'प्रियतमे! दया तुमने मुझपर की है;' प्रियतम!
'हगपुतरीमें हो नित्य मुझे रखती, फल है उसका।' प्रियतम॥१०७३॥

'पर भाग चलें अब तो, विषधर हो गया बली मुझ-सा;' प्रियतम!
'आँखें डाली तुमने इस पर, भर दिया मुझे इसमें;' प्रियतम!
'बल मेरा चला गया इसमें, दुर्धर्ष हुआ यह है;' प्रियतम!
'इसलिये चलो अविलम्ब, अहो! कहना मेरा मानो।' प्रियतम॥१०७४॥

'अब तो छदमी पीछे से ही हमपर जो टूट पड़े;' प्रियतम!
'कर पाऊँगा क्या मैं इसका, की भूल बड़ी तुमने;' प्रियतम!
'अतएव अङ्कमें लेकर मैं तुमको भागूँ ऐसा;' प्रियतम!
'जो छू न सके हम दोनों को, यह है उपाय इतना।' प्रियतम॥१०७५॥

चिन्तित अब हुई, कदाचित् यह फिर भी न पिण्ड छोड़े, प्रियतम!
दुर्दैव-योगवश तेज अधिक गति बने सर्प की ही, प्रियतम!
क्षत नील पीठपर ही कर दे धीरे से, रच माया, प्रियतम!
मैं जान न पाऊँगी, तुम तो कहने से रहे इसे, प्रियतम॥१०७६॥

थी बात बहुत-सी सोच रही, इतने में कानों में, प्रियतम!
आयी फुफकार भयंकर-सी ध्वनि, सिहर उठी मैं थी, प्रियतम!
बोले तुम, 'मेरे प्रति ही अब है रोष हुआ इसको,' प्रियतम!
'तुमने कर दी कुछ देर अतः भिड़ना ही है, इससे।' प्रियतम!॥१०७७॥

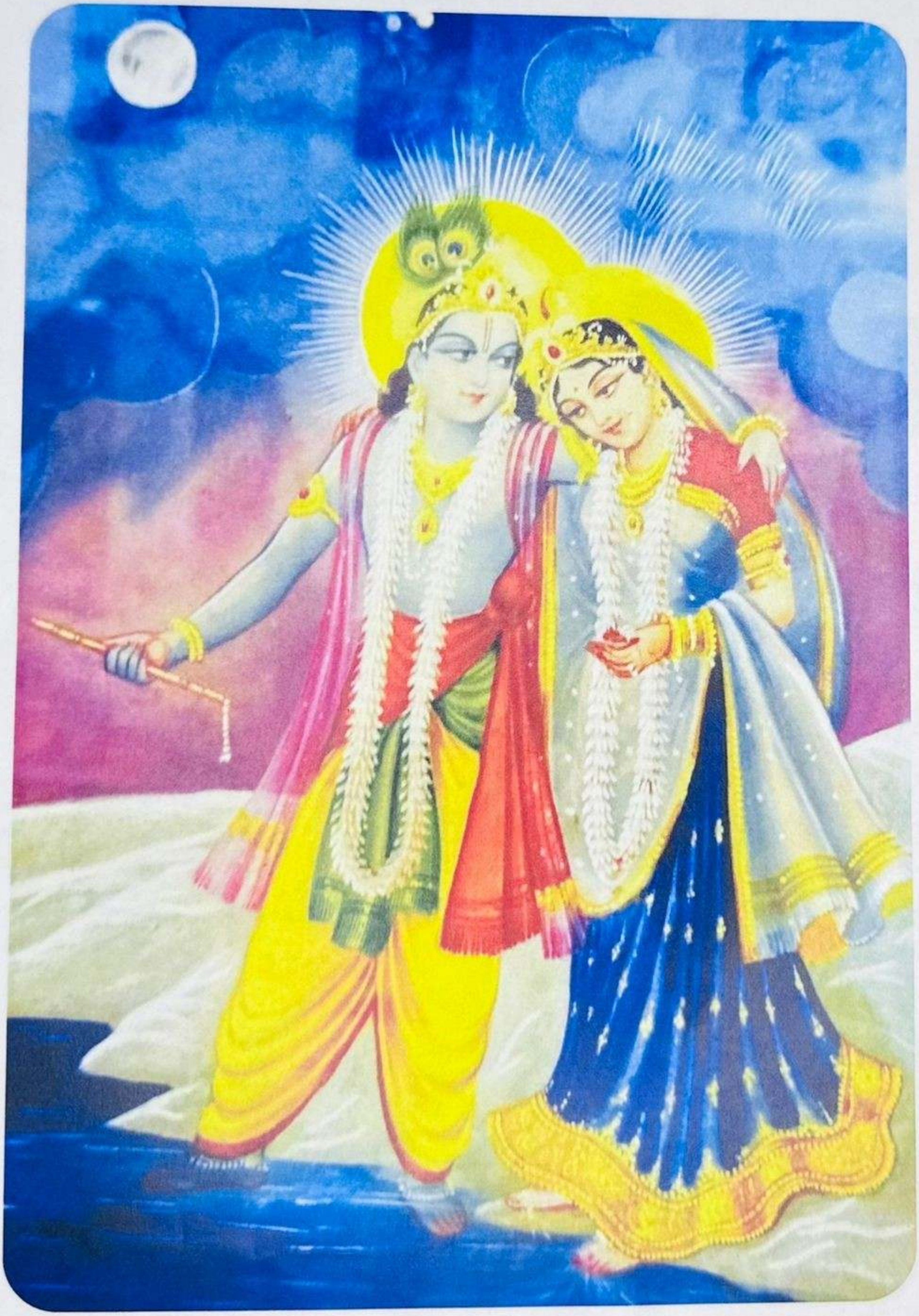
कहकर दुकूल कटि में तुम थे कसते जाते, हँसते, प्रियतम!
सहसा मनमें आया, देखूँ कितना बल है अहि में, प्रियतम!
अबला हूँ, किंतु नित्य मेरे भीतर-बाहर तुम हो, प्रियतम!
क्या सर्प सकेगा कर, इसपर मैं ही जो लपक पड़ूँ, प्रियतम॥१०७८॥

मेरे ही द्वारा मिला इसे बल है, कहते थे हैं, प्रियतम!
फिर भले मुझे भ्रम हो, पर है ये-ही-ये दीख रहे, प्रियतम!
कह देने पर तो रोक मुझे लेंगे अवश्य ही ये, प्रियतम!
चुपचाप अचानक जा समीप देखूँ क्या है कैसा, प्रियतम॥१०७९॥

अन्तर था सात हाथ का ही, क्षणभर नीरज-मुख को, प्रियतम!
मैं देख वेग चपला का ले उछली उसके आगे, प्रियतम!
बोली स्वं, 'कर ले तू जो चाहे, सन्मुख मैं हूँ,' प्रियतम!
'है सर्प सही तो काट मुझे, भ्रमजाल नहीं तो है।' प्रियतम॥१०८०॥

क्षण एक मुँदी आँखें मेरी, तुम तो पीछे थे ही, प्रियतम!
भर लिया भुजाओं में, मुझको अनुभूति हुई ऐसी, प्रियतम!
दृग खोल तुरंत चकित होकर बोली, 'वह कहाँ गया?' प्रियतम!
बैठे मेरे कच सींच रहे तुम थे लोचन-जल से, प्रियतम॥१०८१॥

उस समय अहो! हम दोनों का कैसा था हाल हुआ, प्रियतम!
तुम याद उसे कर लेना, मैं रख लेती हूँ मनमें, प्रियतम!
क्या है कहना किससे, भौंरा समझेगा क्या इसको, प्रियतम!
दे प्राण मिला तुममें, मुझमें तो जान भले ही ले, प्रियतम॥१०८२॥



प्रक्षालित किये तरंगों ने फिर पद हम दोनों के, प्रियतम!

रोता है पर यह इसीलिये कुछ तो कहना ही है, प्रियतम!
लज्जित हूँ बहुत अधिक यद्यपि उतना भी कहने में, प्रियतम!
जो काल परे कलना से है, कितना था बीत चुका, प्रियतम!
तुम ही जानो, समाधि जब थी टूटी, तुम यों बोले, प्रियतम!।१०८३।।

'जिन महाभावमय नयनों में हूँ बसा सदा ही मैं,' प्रियतम!
'जाता है उपल पिघल जिनसे पावक होता हिम है,' प्रियतम!
'जो हैं अतीत फिर वर्तमान भावी के दृश्यों में,' प्रियतम!
'सागर रसमय उच्छलित, नित्य भरती स्वभाव से ही,' प्रियतम।।१०८४।।

'उन आँखों में ही सना हुआ उनसे ही प्रेषित मैं,' प्रियतम!
'था हुआ, अतः गल गया उरग, अचरज इसमें क्या है?' प्रियतम!
'बच रहा रंग काला उरमें भरने के लिये वहाँ,' प्रियतम!
'प्रियतमे! कहूँ क्या, मेरी है हो रही रुद्ध वाणी,' प्रियतम।।१०८५।।

प्रक्षालित किये तरंगों ने फिर पद हम दोनों के, प्रियतम!
व्याकुल होकर आ चिपट गयी रेणुका किंतु अमला, प्रियतम!
'क्यों छोड़ चले तुम मुझे यहीं, दम्पति हे!' थी कहती, प्रियतम!
उज्ज्वल वितान था तान रहा ऊपर हिमकर, कर से, प्रियतम।।१०८६।।

मनमें मैं व्यथित हुई-सी थी कह गयी, 'न छोड़ूँगी,' प्रियतम!
'कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है,' प्रियतम!
'आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे,' प्रियतम!
'दूँगी कह जो, कर लेंगे, फिर यह तो है पद थामे।' प्रियतम।।१०८७।।

'कितनी मृदुला, कितनी हलकी, कितनी उजली यह है!' प्रियतम!
'जड़ बनी अपनपौ खोकर है मेरे ही लिये पड़ी,' प्रियतम!
'साँवर की यह दासी इसकी निष्ठा कैसे भूलें,' प्रियतम!
'हे धूलि! परम मङ्गल हो, ये स्वीकार करें तुमको।' प्रियतम।।१०८८।।

हे प्राणनाथ! हो गयी देर, अब चलो कुञ्ज में, हे प्रियतम!
हे श्यामचन्द्र! किरणों का हूँ स्वागत करती कहती, प्रियतम!
'देते रहना शीतलता ही अविराम यहाँ सबको', प्रियतम!
फिर रास दिखाऊँगी तुमको,' कह चली, चले तुम भी, प्रियतम॥१०८९॥

कुछ बात बताकर तुम हँसते, बन जाती फूल हँसी, प्रियतम!
मेरे आगे बन जाता था सुन्दर पथ सुमनों का, प्रियतम!
रखते पर पद तुम रज में थे कुसुमों को बचा-बचा, प्रियतम!
था हेतु बताया, 'प्यारी! हैं प्राणोपम रजकणिका।' प्रियतम॥१०९०॥

'जब दयामयी तुमने इच्छा कर ली ये साथ चलें,' प्रियतम!
'त्यागूँ कैसे इनको फिर मैं, हूँ जहाँ, रहेंगी ये।' प्रियतम!
'मेरे प्राणों की रानी के पद में जो चिपक गयीं,' प्रियतम!
'उनको क्या दे सकता हूँ मैं, कणिया हूँ नित्य बना।' प्रियतम॥१०९१॥

रो उठी बात सुनकर मैं थी, जैसे-तैसे पहुँची, प्रियतम!
तटिनी निकुञ्ज में शय्या थी पत्रों की बिछी हुई, प्रियतम!
मैं लेट गयी, तुम जा बैठे मेरे ही पदतल में, प्रियतम!
हो गद्गद बोले, 'दान महा प्रियतमे! मुझे यह दो।' प्रियतम॥१०९२॥

'हूँ लिये लालसा मैं भी यह, अपने केशों से ही,' प्रियतम!
'ये पोंछ चरण असमोर्ध्व रहूँ बड़भागी, सुखी सदा,' प्रियतम!
'मेरा ही स्वत्व रहे इनपर, केवल छू सँ वे ही,' प्रियतम।
'जिनका मन बुद्धि अहं काला जलदाभ बने मुझ-सा।' प्रियतम॥१०९३॥

'जैसे सुख हो तुमको, कर लो, उसमें ही हूँ सुखिनी,' प्रियतम!
'जीवनधन! अहो! कभी तुमको मैं म्लान नहीं देखूँ,' प्रियतम!
'अस्तित्व रहे, बस, कण-कण का मेरे मनके, तनके,' प्रियतम!
'देनेके लिये नित्य तुमको प्रतिपल नवीन सुख ही,' प्रियतम॥१०९४॥

भावित इस भाँति हुई मेरी पलकों से अनुमति ले, प्रियतम!
लालित सुरभित कुन्तल से तुम कर रहे-चरण ये थे, प्रियतम।
था भान न हुआ हमें यह भी, कब बीत गयी रजनी, प्रियतम!
'हे मधुप! अतः छूना मत तुम मेरा पद, है विनती;' प्रियतम ॥१०९५॥

'हो गयी निमीलित बाला की उत्पल-दल-सी आँखें;' प्रियतम!
'कहती जाती यद्यपि अब भी वह बात रसीली थी;' प्रियतम!
सुन सकीं उसे पर वे जो थीं स्वाहा सर्वस्व किये, प्रियतम!
मोहित जो था जल-बुद्बुद से या हैं, सुन ले कैसे, प्रियतम ॥१०९६॥

'पाटल-से होठों का हिलना देखा दिनकर ने है;' प्रियतम!
'निर्लिप्त, किंतु फिर भी विमुग्ध आकाश लिये ध्वनि है;' प्रियतम!
'छूकर है उसे अनिल चञ्चल, है नीर सरस उससे;' प्रियतम!
'उसकी सहिष्णुता की सुगन्ध ली छिपा मेदिनी ने;' प्रियतम ॥१०९७॥

दो दण्ड वहाँ सब ओर रही छायी नीरवता-सी, प्रियतम!
केवल थी स्वगत बात करती वह भावमयी पुतली, प्रियतम!
मानो फिर लहर लगी उठने उसमें नवीन सहसा, प्रियतम!
बोली खिन्ना-सी, किंतु मधुरतारों से भी स्वर में, प्रियतम ॥१०९८॥

'बक गयी अनर्गल मैं क्या-क्या, विक्षिप्त हुई मति है,' प्रियतम!
'रोता है दीन हुआ षट्पद, मैं कथा लगी कहने,' प्रियतम!
'बतला दो, बतला दो, अलि हे! हर लूँगी सभी व्यथा,' प्रियतम!
'कहती ध्यानस्थ हुई क्षण कुछ, कह उठी पुनः पगली। प्रियतम ॥१०९९॥

'हे भृङ्ग! न जब तुम कहते हो, हूँ पूछ रही उनसे;' प्रियतम!
'देंगे कह वे।' पल भर रुककर रच दी रस की सरिता;' प्रियतम!
'मैं गुप्त मनोरथ जान गयी, जो लिये हुए तुम हो;' प्रियतम!
'वह तो देही देती हूँ, फिर किंचित् अपनी रुचि से।' प्रियतम ॥११००॥

द्रुमलता तथा भुजलता बनो उनकी इस दासी की, प्रियतम!
सुख-सङ्ग मिले उनका तुमको, खण्डित न काल से हो, प्रियतम!
मेरी इस अरुण कञ्चुकी के बंदों में बँधी हुई, प्रियतम!
अनुरक्ति नित्य सहचरी रहे सौरभ देती तुमको, प्रियतम॥११०१॥

गिर गयी धरा पर, कहकर यह, तन-सुधि खोकर बाला, प्रियतम!
सहचरी बड़ी जो उससे थी दुखिया उसके दुख से, प्रियतम!
उसका सिर गोदी में अपनी लेकर बोली रोती, प्रियतम!
हे दूत! विरह में उनके है क्या दशा हुई इसकी, प्रियतम॥११०२॥

'दीखे क्षणभर तुम थे इसको, बोला कुछ फिर भूला,' प्रियतम!
'अनुभव तमाल को कर साँवर, कर गयी बात उससे,' प्रियतम!
'आँखें जब पुनः पड़ी तुमपर, थी भ्रमित हुई तुमसे,' प्रियतम!
'हैं वे, है मोर, नहीं भौंरा, उर खोल गयी अलि से,' प्रियतम॥११०३॥

'वरदान दिया है मधुकर को इसने, तथापि मानो,' प्रियतम!
'अपने ही लिये इसे तुम हे! साँवर के दूत सखा,' प्रियतम!
'अक्षरशः होगा सत्य सदा, कहती मैं हूँ ललिता,' प्रियतम!
'उनसे कहना, जो है देखा या सुना यहाँ तुमने।' प्रियतम॥११०४॥

कहकर मुरझित हो गयी सखी वह भी वैसी दीना, प्रियतम!
वह दूत बहाता जल दृग से दोनों की पदरज में, प्रियतम!
दो दण्ड लौटकर चला गया उन्मत्त हुआ बन से, प्रियतम!
है ज्ञात सभी बातें तुमको, कह गयी तनिक फिर भी, प्रियतम॥११०५॥

जब जगी स्वप्न से थी बाला उस पादप के नीचे, प्रियतम!
पीये मद-सी उठ पड़ी, चली, पग थे डगमग उसके, प्रियतम!
फिर भान हुआ, साँवर आये, दे गलबाँही बोले, प्रियतम!
प्रियतमे! चलो, लीला देखें धारामय उस सर की, प्रियतम॥११०६॥

अब पुनः वही बाला बैठी ललिता निकुञ्ज में है; प्रियतम !
तुम भी हो साथ, किंतु मानो है देख रही सपना, प्रियतम !
पीपर है, ऊपर है जिसकी जड़, है शाखा नीचे, प्रियतम !
उसके नीचे अर्चन कर है सुधा देती तरु से, प्रियतम ॥११०७॥

"है तत्व बताया तुमने ही, तुम-ही-तुम हो मेरे;" प्रियतम !
"है या केवल राधा-राधा, फिर नित्य युगल भी हो;" प्रियतम !
"यह 'मैं' प्रतिबिम्बित है प्रतिमा राधा की माया में," प्रियतम !
"है किंतु बिम्बसे भिन्न कहाँ सत्ता छाया की, हे प्रियतम" ॥११०८॥

राधिकारमण निरवधि जय, जय, जय अम्बुजनयन, सदा प्रियतम !
जय सतत नन्दनन्दन जय, जय, जय नाथ निरंतर, हे प्रियतम !
गोपिकाप्राण सर्वदा तथा जय मन्मथमथन अहो! प्रियतम !
चिरकाल विश्वरञ्जन जय, जय, जय कृष्ण अहर्निश, हे प्रियतम ॥११०९॥

जय राधावन कुञ्जविहारिन्, कुञ्चित कुन्तल मुरलीधारिन् ।
प्राणेश्वरीनयनस्मृतिकारिन् जय विहारिणी भावविनोदिन् ॥
नाची रसना, रसराज इसे जैसे जब नचा गये, प्रियतम !
गँठजोड़ अनन्तकाल तक यह इसका उनसे ही है, प्रियतम !
वे चाहेंगे, वैसी होगी यह महाभावलीला, प्रियतम !
जय अहो! यशोदानन्दन जय मोहन जय वनमाली, प्रियतम ॥१११०॥

प्राणाधिक जय कृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वर !
कुञ्जेश्वरि राधे जय प्राणेश्वरि हे राधिके ॥

दूसरा पाठ—

हे प्राणाधिक श्रीकृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वरः ।
हे प्राणाधिक मत्कृष्ण, जय कुञ्जजनेश्वरः ॥११११॥

एकादश शतक समाप्त

पर्यवसान...

लेकर सुंदर लट एक पुनः अपने कुञ्चित कचसे प्रियतम।
देकर फिर पद उसे मेरी श्यामा भगिनी का हे प्रियतम॥
दी पाँखें बाँध मृदुल उससे फड़-फड़ थीं जो करतीं प्रियतम।
ऐसी द्रुत गतिसे संभवतः जैसे वे टूट गिरें प्रियतम॥

होता न प्रभाव कहीं मेरी भगिनी का तुम-सा ही प्रियतम।
थी पाँखें भले बन्धनमें, पर उड़ जाते प्राण कभी प्रियतम॥
हो दैवदलित यदि रह जाते, नीरस हो जाते ये प्रियतम।
कैसे नहलाती मैं तुमको प्रतिपल नव-धारासे प्रियतम॥

जो हो इन पदोंमें तुमने, मुझसे है खेल किया प्रियतम।
ये पद सभी प्राणोंसे हैं प्रिय अधिक अतः मुझको प्रियतम॥
होकर वियोग इनका न कहीं पड़ जाय रंग फीका प्रियतम।
आनन्द साथ लेकर ही मैं गाऊँगी इन सबको प्रियतम॥

पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की हस्तलिपि



श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला

तुम उनकी अनुकृति-सी प्रतीत होती हो

"बहिनजी! मुझे तुम्हारे और पोद्दारजीमें बहुत अधिक साम्य अनुभव होता है। आकृति, स्वभाव, वर्ण, कद, स्वर बोलनेके ढंगमें कभी-कभी तुम उनकी अनुकृति-सी प्रतीत होती हो मुझे, और मैं यह सब देखकर चमत्कृत हो उठता हूँ अनेक बार...। इसका सीधा अर्थ यही है कि मेरी अभिव्यक्तिका माध्यम केवल तुम ही बन सकती हो। तुम मेरे पोद्दार प्रभुकी सर्वमंगलमहीयसी चिच्छक्तिका ही तो अंश हो। साथ ही जागतिक धरातल पर भी आद्यन्त दैहिक-सुख-शून्य आह्वत-काम महापुरुषकी सृष्टि हो - तुम्हारे इस जड़ अविद्यात्मक देहमें भी अभिव्यक्ति है, उसी रसमयी अहंताकी। अतएव मेरी भावात्मक एकात्मता तुमसे कालके प्रवाहमें सदा-सर्वदा अक्षुण्ण रहेगी। तुम रहोगी मेरी अद्भुत-आसक्तिका बिन्दु...।"

– परमपूज्य श्रीराधाबाबाके उद्गार

राधा-राधा

श्रीकृष्णस्वरूपिणी मेरी बहिन
मञ्जुश्यामा री !

मेरे हाथ अनभ्यास के
कारण काँप रहे हैं। मैं लिख
पाऊँगी कि नहीं — यह नहीं
जानती। जो हो, मैं प्रयास
कर रही हूँ। जो हो —

तेरे चित्र के रूपमें जो
प्रतिभास — छायावत् प्रतिबिम्ब
पार्थिव शरीर के स्थान पर, कहीं
भी, तनिक भी साक्षात् व्रजेन्द्र-
नन्दन के अतिरिक्त कुछ भी
नहीं दीख रहे, सो भी जब वे
मेरे सामने आते हैं, अन्यथा कहीं
भी, व्रजेन्द्रनन्दन के अतिरिक्त
कुछ भी नहीं दीख रहा है [illegible]
[illegible] सचमुच के कोमल [illegible]
में दीखते रहते हैं निरन्तर। आँख
खोलने पर छायावत् क्षीण क्षीण
क्षीणतम छायावत् हृदयकी प्रतीति
होती है। इसीसे मैं ही तेरे बालक
लिखा पाती हूँ। कितने दिन लिखा
पाऊँगी — कह नहीं सकती। मेरा
बड़ा ही उन्माद आँखों में ही
बाहर होता है। आँख बन्द होते ही
केवल केवल व्रजनन्दन का
[illegible] — [illegible]
बन आता है और कुछ भी व्रजेन्द्र
नन्दन के अतिरिक्त नहीं दीख

रहा है — जीवन मैं लिख
जा रही हूँ। केवल तेरे स्थानपर
मेरी लालसा श्रीकृष्णस्वरूपिणी
बहिन का जो चित्र है, उसीमें
झलमल झलमल करता [illegible]
[illegible], [illegible]
[illegible] अपने दीख जाता है
तो अभी लिख गया और —
जानु मेरा उन्माद
जगा है बड़े प्रकार
शान्त होगा कि नहीं
कह नहीं सकती। शान्त
होने का अनुभव
एक ही उपाय दीखता है
मैं अविलम्ब तुम्हारे
पितामही के स्थान
की छायावत् प्रतिबिम्ब
देख, जो भी आँख खुले
पाती, अन्य की बिल्कुल
नहीं, मैं शरीर के
स्थान पर झलमल झल
करती हुई वह शरीर
कुछ दीख जाता है,
शान्त हो जाता है

श्री राधाबाबा की हस्तलिपि

श्रीकृष्णस्वरूपिणी बहिन *

"श्रीकृष्णस्वरूपिणी मेरी बहिन मन्जुश्यामा री! मेरे हाथ अनाभ्यासके कारण काँप रहे हैं। मैं लिख पाऊँगी कि नहीं – यह नहीं जानती। जो हो, मैं प्रयास कर रही हूँ... जो हो ...।

तेरे पिताके रूपमें जो प्रतिभास-छायावत्-प्रतिभात् पार्थिव शरीरके स्थानपर, कहीं भी, तनिक भी साक्षात् व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दीख रहा है। सो भी जब वे मेरे सामने आते हैं, अन्यथा कहीं भी, व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं दीख रहा है। सर्वत्र सर्वत्र सर्वत्र वे केवल व्रजेन्द्रनन्दन ही दीखते रहते हैं, निरन्तर। आँख खोलनेपर छायावत् क्षीण-क्षीणतर-क्षीणतम छायावत् दृश्यकी प्रतीति होती है। इसीसे जैसे-तैसे व्यवहार निभा पा रही हूँ। कितने दिन निभा पाऊँगी – कह नहीं सकती। मेरा बढ़ा हुआ उन्माद आँखोंमें ही व्यक्त हो रहा है। आँख बन्द करनेपर केवल-केवल महाभावका सच्चिदानन्दमय समुद्र – महासमुद्र बच जाता है और कुछ भी व्रजेन्द्रनन्दनके अतिरिक्त नहीं दीख रहा है। बीचमें लिख जा रही हूँ, केवल तेरे स्थानपर मेरी साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूपिणी बहिनका जैसा रूप है, उसीमें झलमल करता हुआ तेरा यह पार्थिव गात्र, सर्वथा छायावत् ही अभी दीख जाता है, वही अभी दीख गया और अस्तु, मेरा उन्माद पर्याप्त बढ़ चुका है, शान्त होगा कि नहीं कह नहीं सकती। शान्त होनेका अनुमानतः एक ही उपाय दीखता है, मैं अविलम्ब तुम्हारे पिता शरीरके स्थानपर छायावत प्रतिभात स्मृत, सो भी आँख खुलने पर ही, अन्यथा बिल्कुल नहीं, शरीरके स्थानपर झलमल करता हुआ वह शरीर मुझे दीख जाता हो, या स्मृत हो जाता हो।"

---

* परमपूज्य श्रीराधाबाबा द्वारा महाभावावेशमें पूज्या श्रीमती सावित्रीदेवी फोगलाके प्रति लिखा गया आलेख।

परमपूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके उद्‌गार

"इस सावित्रीने मुझे संसार-सेवी बना दिया - यह न होती तो मैं न जाने कबका सम्पूर्ण जागतिक बन्धनोंसे मुक्त हो चुका होता। सावित्री मुझे सर्वाधिक प्रिय है। मेरी आत्यन्तिक ममता है इसके प्रति, इसके लिये मैं कुछ भी कर सकता हूँ...। अवश्य ही इसपर भगवान्‌की अद्भुत कृपा है, जो एक दिन प्रकट होकर ही रहेगी।"

* * *

"इस सावित्रीने तो आकर मुझे संसार-बन्धनमें जकड़ दिया है, नहीं तो पता नहीं मैं कहाँ गंगा-किनारे झोपड़ी बनाकर ऐसे रहता कि किसीको पता भी नहीं चलता।"

परम पूज्य श्रीराधाबाबाके उद्‌गार

"बाईकी सम्पूर्ण चेष्टा मेरी चेष्टा है, इसमें तनिक भी सन्देहको स्थान नहीं। कदाचित बाई कोई गलत निर्णय भी ले लेगी, भौंड़ी-से-भौंड़ी बात भी कहेगी, तो उसका भी पूरा-का-पूरा उत्तरदायित्व मेरा होगा। इसमें गुण-दोष दर्शन करके, अपनी कसौटी पर इसे कसनेका व्यर्थ श्रम करनेके स्थानपर, मेरे इस सत्यको ज्यों-का-त्यों हृदयंगम कर लेना ही मुझसे जुड़े प्रत्येक प्राणीको साधनपथ पर आगे बढ़ायेगा। तर्क और अश्रद्धाकी यहाँ तनिक भी गुंजाइश नहीं। साथ ही मेरी यह सत्य - स्वीकृति मान्यता सापेक्ष कदापि नहीं है। श्रीकृष्णकी रुचि ही इसमें सक्रिय है।"

श्रीभाईजीकी प्रतिमूर्ति

(स्वामी श्रीकृष्णप्रेमजी)

"बाई (पू० अ० सौ० सावित्रीबाई) ऊर्ध्वरेता ऋषिकी संतान है। वस्तुतः हमलोग इसकी अन्त:करणकी पवित्रताको देखने और समझनेकी सामर्थ्य नहीं रखते।

सम्पूर्ण भारतवर्षमें मात्र १९ व्यक्ति ही ऐसे हैं जिन्हें भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका षोडशाक्षरी मन्त्र परम्परासे प्राप्त है। उन १९ परम दुर्लभ व्यक्तियोंमेंसे एक ये बाई है। इसे षोडशाक्षरी मन्त्र परम्परासे प्राप्त है। स्वयं पू० गुरुदेव (श्रीराधाबाबा) ने इसपर कृपा करके इसे षोडशाक्षरी मन्त्र प्रदान किया था। ये अपनी शक्तियोंको भूले रहती है। इसमें ऐसी अतुलनीय शक्ति है कि ये यदि केवल संकल्प भर कर ले, तो विश्वका बड़े-से-बड़ा कार्य - असम्भव-से लगनेवाले कार्यको भी सहज ही सम्पन्न कर सकती है।

जैसे मुझपर कृपा करके पू० गुरुदेव (श्रीराधाबाबा) - श्रीपोद्दार महाराज (पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के स्वरूप-महत्त्वकी, उनके महिमाकी बातें मुझे सुनाया करते थे, वैसे ही कभी-कभी इस बाईकी भी महिमा सुनाया करते थे, और मैं इसके परमोज्वल त्यागको देखकर इसके चरणोंमें न्यौछावर हो जाया करता था। हमलोग इसके परमपवित्र चरणरजको स्पर्श करनेके भी अधिकारी नहीं हैं। ये श्रीपोद्दार महाराजकी प्रतिमूर्ति है।"

वन्दे कृष्णस्वरूपिणीं

(स्वामी श्रीकृष्णप्रेमजी)

कृष्णस्वरूपिणीं वन्दे हनुमद्गुप्तसंततिम्।
नित्यां धर्मस्वसारं वै मञ्जुश्यामां सहोदराम्॥

"श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी सन्तति (पुत्री) सावित्रीकी मैं निश्चय ही वन्दना करता हूँ, धर्मनिष्ठा ही जिसका सर्वस्व है, तथा जिसके रूपमें नीलसुन्दर कृष्ण ही मेरी चिरन्तन सहोदरा बहिन मञ्जुश्यामा बने हुए नित्य विराजित हैं॥२॥"

बात सन् १९३७ ई० की है। श्रीसेठजी जयदयालजी गोयन्दकाके साथ पू० गुरुदेव

श्रीराधाबाबा गीताप्रेसमें ठहरे थे। श्रीसेठजीने पू० गुरुदेवको जिस कमरेमें ठहराया था, वह वही कमरा था, जिसमें आठ वर्ष पूर्व श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री अ० सौ० सावित्रीबाईका प्रसव हुआ था।

प्रभातकाल था, और निरे ब्रह्ममुहूर्त्तमें ही पू० गुरुदेव स्नानादि क्रिया सम्पन्नकर, अपने इष्टदेवके ध्यानमें निरत हो गये थे। उन दिनों उनके ध्यानकी पद्धति यही थी कि वे अपने इष्टके चित्रकी छविको पहले एकटक देखते और तब उसे नेत्र मूँदकर अपने हृदयदेशमें पूरा-का-पूरा ज्यों-का-त्यों उतार लेते थे। ऐसे करना पू० गुरुदेवका नित्यका नियम था।

उस दिवस गुरुदेवका ध्यानमें मन अत्यधिक ही एकाग्र हो उठा था। ध्यानक्रिया क्रमशः इतनी प्रगाढ़ हो उठी कि उन्हें खुली आँखों ही चित्र जीवन्त अनुभव होने लगा। सर्वप्रथम उनकी दृष्टि चित्रपटके होठोंमें अटकी और उन्हें ऐसा अनुभव हुआ मानों वे होठ सजीव, अलौकिक एवं दिव्य हैं। उन होठोंके अणु-अणुमेंसे परम मधुर शीतल प्रकाश फूट रहा है। धीरे-धीरे होठोंसे लेकर सम्पूर्ण चित्रपट ही जीवन्त, चिन्मय होता चला गया।

उस दिवस पू० गुरुदेवके लिये एक और आश्चर्य संघटित हुआ। चित्रपटके सजीव होनेके उपरान्त शनैः-शनैः उन्हें अपने सम्पूर्ण अङ्ग-संस्थानोंमें भी विलक्षण नारीत्वका समावेश होता दृष्टिगोचर होने लगा। अबतक तो चित्रपटमें मुरली-मनोहर श्रीकृष्णके साथ उन्हें श्रीराधाजी ही दिखती थीं। वे स्वयं तो उन्हें इन दोनों छवियोंके द्रष्टा, पृथक् शरीररूपमें ही अनुभव होते थे। परन्तु आज तो यह चमत्कार ही था कि उनके स्वयंके शरीरके स्थानपर भी उन्हें एक विलक्षण, कमनीय नारी दृष्टिगोचर हो रही थी।

वह नारी चित्तहारी सुन्दर शृङ्गारसे सुसज्जित थी। उनका मुख पूर्ण विकसित अरविन्दके सदृश शोभा पा रहा था। उनके रोमछिद्रोंसे सौरभके झौंके लहक रहे थे। उनके अधरोंमें अभिनव-अमृतके सदृश मधुर मधु परिपूरित था। उनकी वय चौदह वर्ष एवं कुछ माहकी ही थी। उनके इस प्रफुल्लित मुखचन्द्रका दर्शन कर रहे थे – चिन्मय-वपु वनमाली। पू० गुरुदेवके प्राणवल्लभ प्राणाराम प्रियतमके लोचन-चञ्चरीक उनके आनन-सरोजपर मुग्ध होकर मँडरा रहे थे, मानों वे युगों-युगोंसे पिपासातुर हों। चरम उत्कण्ठातुर उनकी मधुपान-लालसा क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती ही जा रही थी।

सहसा एक अतिशय सरस मधुर वाणी उनके श्रवणेन्द्रियोंमें गूँज उठी – "हे अनाविल सुख-स्वरूपिणी मेरी प्राणेश्वरी! तुम ही एकमात्र मेरे जीवनकी अवलम्बनरूपा हो।"

इस वचन-माधुरीकी महावेगशाली ऊर्मियोंमें पू० गुरुदेव पूर्णतया ही निमग्न हो गये। उनके नेत्र स्थिर एवं निमीलित हो उठे। उन्हें सर्वथा ही विस्मृत हो गया कि वे संन्यासीवेशमें

कोई पुरुषदेह हैं।

पू० गुरुदेवकी यह आन्तरिक भावदशा फिर यावज्जीवन ज्यों-की-त्यों ही बनी रही। एक दिवस मेरे पूर्वाश्रमके मामाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीको वे अपने आन्तरिक स्थितिका रहस्य खोलकर सुना रहे थे – "गोस्वामीजी! उस दिवसके पश्चात् मैं अपनी कायामें रहकर भी कभी अपनी कायामें नहीं रहा। जैसे साँप अपनी त्यागी हुई केंचुलीको स्वयं देखता है, साँपकी केंचुलीमें साँपका मुख, आँख आदि सभी आकृतियाँ ज्यों-की-त्यों साँपके समान ही होती हैं, परन्तु साँप उससे सर्वथा असंपृक्त – कुछ और ही होता है, ठीक इसी प्रकार आज मेरी स्थिति समझ लीजिये।"

पू० गुरुदेवके कथनका अर्थ यही था कि जीव जब भागवती लीलाका पात्र बन जाता है एवं उसे कोई चिन्मय लीलादेह प्राप्त हो जाती है, उसी क्षण उसकी प्रारब्ध कर्मराशि भी जल जाती है। इसके फलस्वरूप होना तो यही चाहिये कि तत्क्षण ही जीवको मिली प्रारब्ध-भोग देह भी विनष्ट हो जाय; परन्तु कभी-कभी भगवान् ऐसे विलक्षण कृपापात्र जीवोंसे अपना कार्य करानेकी महाइच्छा कर बैठते हैं। अतः वे स्वयं उस देहको पकड़ लेते हैं और उसमें रहने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें जीव भगवान् में एकमेक हुआ, भगवान् के सम्बन्धसे उस देहमें रहता भी है, एवं नहीं भी रहता। "नहीं रहता" – इस अर्थमें कि वह अपनी देहको भागवती स्मरणमें सर्वथा-सर्वांशमें ही भूल चुका होता है, और उसे अपने नाम-रूपका भी विस्मरण हो जाता है; एवं "रहता है" – इस अंशमें कि भगवान् में वह पूर्णतया ओतप्रोत है और भगवान् उस देहको ग्रहण किये हुए हैं।

श्रीगोस्वामीजीके साथ-साथ लेखक भी उस दिवस पू० गुरुदेवसे यह सत्सङ्ग-वार्त्ता सुन रहा था। पू० गुरुदेव कह रहे थे – "गोस्वामीजी महाराज! सरिताके आप्लावनके कारण जो स्वामी चक्रधर नामक पोखरा उस दिवस विलीन हो गया, उस पोखरेका रूप, संज्ञा, उसके जलका स्वाद एवं उसके जलकी गंभीरता कुछ भी पहलेवाली नहीं रही; किन्तु अप्रतिम स्नेही श्रीकृष्णने अपने प्यारवश इस पोखरेको आज भी बाह्यरूपमें ज्यों-का-त्यों, वैसे-का-वैसा ही बनाया हुआ है। यहाँतक कि उस गीताप्रेसके कमरेमें प्रथम रसप्लावनके समय ही उन्होंने संकेत कर दिया था कि वे स्वयं इसी कक्षको अपनी प्रसूतिगृहकी संज्ञा देते हुए, आजके आठ वर्ष पूर्व, स्वयं मेरी सेवार्थ श्रीपोद्दार महाराजकी पुत्री – धर्मभगिनी अ० सौ० सावित्रीबाईके रूपमें जन्म ले चुके हैं।"

श्रीगोस्वामीजीके सम्मुख पू० गुरुदेवने अपनी उक्तिको काव्यरूपमें प्रस्तुत करते हुए कहा –

होता न सुभाव कहीं मेरी इस भगिनी का तुम सा ही, प्रियतम।
थी पाँख भले बन्धनमें, पर उड़ जाते प्राण कभी, प्रियतम॥
हो दैवदलित यदि रह जाते, नीरस हो जाते ये, प्रियतम।
कैसे नहलाती मैं तुमको प्रतिपल नव-धारामें, प्रियतम॥

(विहगीकाव्य छन्द १०५)

"गोस्वामीजी! यदि मेरे प्राणपति श्रीकृष्ण मेरी भगिनीका स्वभाव भी अपने समान ही प्रेम-समर्पणमय बनाकर नहीं आते, तो मेरा यह देह भले ही यहाँ पड़ा रह सकता था, प्राण कभी ही इस कलेवरको छोड़कर उड़ जाते। और दैवविधानसे यदि प्राण रुके रह जाते, तो वे सर्वथा नीरस होकर ही रह जाते। मैं अपने प्राण-प्रियतमको रसकी नित-नूतन धारामें नहला नहीं पाती।"

अपनी रचित काव्यधाराका प्रवाह आगे बढ़ाते हुए पू० गुरुदेवने कहा था –

जो हो इन रूपोंमें तुमने मुझसे है खेल किया, प्रियतम।
ये रूप सभी प्राणोंसे हैं प्रिय अधिक अतः मुझको, प्रियतम॥
होकर वियोग इनका न कहीं पड़ जाय रंग फीका, प्रियतम।
अतएव साथ लेकर ही मैं जाऊँगी इन सबको, प्रियतम॥

(विहगीकाव्य छन्द १०६)

"जो भी हुआ हो, इन रूपोंमें मेरे प्रियतम श्रीकृष्णने मुझसे जो खेल किया है, ये सभी रूप मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हैं। अतः इनका कहीं मुझसे वियोग होकर प्रीतिका रंग फीका नहीं पड़ जाय, इस आशंकासे इन सभीको अपने साथ लेकर ही जाऊँगी।"

मैया तन्मय होगी दोनों दृगकी इन पुतलीमें, प्रियतम।
जिनमें अनादि कालसे ही रहती यह दासी है, प्रियतम॥
मेरी यह बहिन मिलेगी आ तुममें फिर बेसरमें, प्रियतम।
हम दोनोंकी, एवं पिंजड़ा नीली द्युतिमें वपुकी, प्रियतम॥

(विहगीकाव्य छन्द १०७)

"गोस्वामीजी! इसे निश्चय ही एक अमोघ एवं अकाट्य विधान मान लीजियेगा कि मेरी अ० सौ० मैया रामदेई (श्रीपोद्दार महाराजकी धर्मपत्नी) निश्चय ही सच्चिदानन्दकन्द मेरे प्रियतम श्रीकृष्णके नेत्रोंकी दृगपुतलीमें तन्मय हो जायेगी, जिसके दृश्यरूपमें अनादिकालसे मैं उनकी दासी रहती हूँ, एवं मेरी बहिन (श्रीपोद्दार महाराजकी सुपुत्री अ० सौ० सावित्रीबाई) प्रथमतया प्रियतममें, स्वयंमें एवं फिर हम दोनोंकी बेसरमें आ मिलेगी। श्रीपोद्दार महाराज

स्वयं जो पिंजड़ा बने मुझ पक्षिणीको अपनेमें आश्रय दिये हैं, श्रीकृष्णके वपुकी नीली द्युतिमें तल्लीन हो उठेंगे।"

ये सभी मन्तव्य छिपाये हुए पू० गुरुदेव यहाँ श्रीसावित्रीबाई (पू० पोद्दार महाराजकी सुपुत्री) की वन्दना करते हैं एवं निकुञ्जलीलामें श्रीराधारानीकी कायव्यूहस्वरूपा भगिनी मञ्जुश्यामाके रूपमें उन्हें संकेतित कर रहे हैं।



मैं देखी सुता वृषभान (हनुमान) की

(श्रीमती ललिता गोस्वामी)

"पूज्या बाई" – यही सम्बोधन करूँ? उनकी ही पाली-पोसी हूँ। मैं ही क्यों, मेरे परिवारकी सभी बालिकाएँ उन्हींके हाथों लालित-पालित हुईं। इस सम्बोधनको "भूवा" (बुआ) का नाम देकर संकुचित या सीमित क्यों करूँ? मेरी माँकी निकटतम, अन्यतम स्नेही व आदरणीया भी वही थीं, तो क्या सम्बोधन "भूवा" से "मौसी" का करती। कभी आवाज देकर पुकारा ही नहीं। मन कहता था – ये तो बाबाका "बा" अक्षर और भाईजीका "ई" अक्षर मिलकर बना हुआ एक दिव्य नाम है, जो सर्वथा सार्थक भावसे भावित है। अतः इस नामको जागतिक सम्बन्धोंकी संकुचित सीमामें क्यों बाँधूँ? बाबा बाईके रूपमें विराजित थे और भाईजी क्रियान्वित थे उनके कार्यों में।

प्रात:काल ५ बजे बजनेवाली फोनकी घंटी हमेशा मातमी संदेश देती रही है। १७ दिसम्बरको भी मुकुन्द काका का अवरुद्ध कण्ठसे हिचक-हिचककर निकलनेवाला शब्द पिघलते शीशे-सा ही कानोंमें पड़ा था। वृद्ध जर्जर काका कह रहे थे – "गीतावाटिका पूर्णतः अनाथ हो गयी। हमारी आशाका, हमारी पारमार्थिक सम्पदाका एकमात्र संबल, हमारी बाई चली गयी। बेटा! आज हम निराधारोंका एक सशक्त सहारा छिन गया।"

यह सत्य है कि मेरी लेखनी काकाकी पीड़ाको अंकित नहीं कर पा रही, पीड़ांकन हो भी नहीं सकता। १५०० मील दूर बैठकर जीवनके निरंतर जर्जर कर देनेवाले झंझावातोंसे घिरे काकाकी पीड़ा, ७५ वर्षोंका साथ छूटनेकी पीड़ा – इन कागज-कलमके माध्यम से कहाँ उद्भासित कर पाऊँगी? निरर्थक प्रयास होगा ऐसा करना।

काका जैसे न जाने कितने परिचित-अपरिचत सिसक रहे थे। यह रोना किसी संबंधी, परिचिता या स्नेहीके विछोहकी-सी पीड़ा देनेवाली नहीं, अपितु हृदयको सांघातिक आघात देनेवाली, आत्यन्तिक वेदनाका संचार कर देनेवाली पीड़ा थी। यह जीवनपर्यन्त पल-पल प्रत्येक श्वासके साथ सही जायगी। संतोंका साथ, दिव्य आत्माओंका संग, हम इस जन्ममें पूर्वके किये गये सत्कर्मोंके परिणामस्वरूप प्राप्त करते हैं। उस दिव्य स्वरूपको जागतिक नेत्रोंसे नहीं पहचाना जा सकता। जागतिक उपलब्धियाँ या उनका परिणाम इस जीवनमें हम नहीं पा सकते। वे आते हैं हमारे जीवनमें किसी अदृश्यकी आज्ञासे और जितना हमारा आँचल होता है, उतनी ही सौगात हमें देकर विदा हो जाते हैं। परम आवश्यकता होती है एकमात्र विश्वासकी।

पू० बाईके रूपमें पू० भाईजी हमारे समक्ष थे, मेरे इस उद्घोषको कोई काट नहीं सकता, नकार नहीं सकता। पूज्या बाईके रूपमें हमारे बाबा विराजित थे – सदेह, मेरी इस उक्तिकी भी कोई प्रवंचना नहीं कर सकता। मेरी माँ ने भविष्यमें बिछुड़नेकी पीड़ाको सम्मुख रखते हुए, बाबासे एकबार पूछा था – "बाबा! आज हम कुछ भी आवश्यकता पड़नेपर, समस्या आ जानेपर, आपसे निदान माँगते हैं। आपके न रहनेपर क्या करेंगे?" बाबाने कहा था – "तुम बाईसे उसका निराकरण माँगना, वह मेरा ही सुझाव होगा।"

क्या संत कभी व्यर्थ प्रलाप करते हैं? मेरे बाबा तो सपनेमें भी कभी झूठ नहीं बोलते थे। इस उक्तिको मैंने गाँठ बाँधकर रखा और अनेक बार आजमाया। ७० पार कर चुकी पू० बाईने, १५०० मील दूरसे फोनपर मुझे जब भी कोई निर्देश या आश्वासन दिया, वह मेरी समस्याका समाधान कर गया। दो उदाहरण हैं – स्वाती (मेरी पुत्री) का विवाह और माँ की बीमारीमें राधाष्टमीपर चले आनेका निर्देश।

धन्या त्रयोदशीकी प्रातः मैंने फोनपर उनको प्रणाम कर आशीर्वाद माँगा और साथ ही जीवनमें अनजानेमें, अनचाहे किये गये अपराधोंकी क्षमा माँगी थी। मेरा रोम-रोम कह रहा था – "ललिता! तेरे बाबा एकबार फिर विदा हो रहे हैं।" बाई धीरेसे दुलारते हुए बोली – "बच्चोंका अपराध भी कोई अपराध होता है?" मैं आगे कोई वार्तालाप न कर सकी। जान रही थी यह दीपावली बाईके जीवनकी अंतिम दीपावली है।

वह मुस्कुराता चेहरा, प्रशस्त ललाट और नेहभरी मृदुलतायुक्त मुस्कान, अब सिर्फ किसी चित्रपटमें तब्दील हो जायगी। अपने पू० पिताके चित्रोंके साथ उसे भी विराजित कर, माल्यार्पण कर हम अपने कर्तव्योंकी इतिश्री मान लेंगे।

उनकी अलौकिकताको शब्दों में निरुपण मैं नहीं कर सकती। उनके दिव्य गुणोंकी गंध इस बगीचेके कण-कणको सुवासित करती रही है, और करती रहेगी। अपने महान पिताके हाथों रोपी हुई वह एक वल्लरी थी, जिसकी हर डालीसे नित्य नूतन सुगंधित पुष्प झरते रहते थे, महकाते रहते थे इस वातावरणको। कोई पाससे भी गुजरे तो उसकी सुवाससे भर उठता था। पूज्या बाईका जीवन निर्झरणीसा ही निर्बाध गतिसे बहनेवाला था। "परमार्थ चाहिए" – अँजली भरो और कण्ठमें गटक लो। "अर्थ चाहें" – तो पू० पिताकी प्रदत्त समस्त सिद्धियाँ उसकी चाकर थीं। किसीको "स्नेह चाहिए" – चले आओ, नेह-निकुञ्ज-निवासी उसका अग्रज उसके गलेमें लटकी कोथलीमें स्नेहका अपार भण्डार बाँधकर धर गया था। प्रेमका शहंशाह था वह और वह थी उसकी सर्वाधिक प्रिय अनुजा। कभी बाबाके नेह-जलसे भीगे नेत्रोंकी याद आये, तो पू० बाईकी आँखोंमें झाँक लो... बहुत साम्य दीखेगा।

आगे हमारे जीवन-रात्रिकी कालिमा, इन विभूतियोंकी स्मृति दीपशिखाके सहारे ही गुजरेगी। पू० भाईजी गये तो कड़कती दुपहरी थी, सूर्य था। जगतके प्रपंचोंने हमें झुलसाकर, जला-भुनाकर अधमरा कर दिया। वह दुपहर हमने सह ली। बाबाके गैरिक आँचलके फटे जीर्ण-शीर्ण वितान तले, हम सुस्ता लिया करते थे। जीवन संध्याके प्रारम्भमें ही वे भी चले गये। हमारे कण्ठोंमें क्रन्दन करनेकी शक्ति भी नहीं रही थी। तब पू० बाई अपनी हथेलीमें सांध्यदीप लेकर खड़ी हो गयी थीं – "डरो मत! मैं हूँ ना!!"

अब निविड़ रात्रि अमावास्याकी, अकेले कदम-दर-कदम बढ़ना है, स्मृतियोंके दीपके सहारे, बस, स्मृति-दीपके सहारे।



श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सव

श्रीराधाष्टमीका उत्सव पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य श्रीबाबाको अत्यन्त ही प्रिय था। आरम्भमें यह बहुत ही छोटे रूपमें मनाया जाता था, पर कालान्तरमें पूज्या बाई (श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला) की उत्सवके प्रति भावनात्मक एकात्मकता तथा तादात्म्यके कारण, एवं उनके अभूतपूर्व उत्साह और सक्रियताके फलस्वरूप इसका विस्तार होता गया। पूज्या बाईके नेतृत्व एवं निर्देशनमें प्रतिवर्ष कुछ-न-कुछ वैशिष्ट्य बढ़ानेका उपक्रम होता। यह पंडाल, इसका एक-एक टिन, बल्ली, रस्सी, ईंटा – सब उसी गतिशील प्रगतिका परिणाम है।

महोत्सवका स्वरूप विस्तृत हो जानेपर इसके आयोजनमें, यद्यपि पूज्य श्रीभाईजी एवं पूज्य श्रीबाबाकी आन्तरिक प्रसन्नता रहती थी, किन्तु इसके आयोजन एवं प्रसारमें उनकी व्यक्तरूपसे कोई सक्रियता कभी नहीं दिखाई दी। उन्होंने स्वयं न कभी उत्सवका आयोजन किया, न कोई निर्देश कभी दिया; किन्तु पूज्या बाईकी उत्साहजन्य सक्रियताका, सदा मनके ऊपरसे भी दोनोंने संरक्षण ही किया। वस्तुतः श्रीराधाष्टमी-महामहोत्सवका जो भव्य स्वरूप आज हमारे समक्ष है, उसकी आधारभूमि पूज्या बाईकी ही निर्मिती है।

इस भव्य उत्सवके आयोजनमें आर्थिक व्ययका प्रश्न भी रहता ही था, किंतु इस प्रश्नपर भी पूज्य श्रीभाईजीने कभी कोई संकोच प्रदर्शित नहीं किया। नवीन झाँकियोंके निर्माणमें कितना भी खर्च लगे, कभी हाथ रुका नहीं। लगभग महीनेभर पहलेसे झाँकियोंके प्रारूपपर आपसमें चर्चा होती। बहुत सुगुप्त झाँकियोंके प्रस्तुतिकरण, पूज्य बाबाके अनुभूत मानसिक संवेदनाओंका चित्रण, चित्रोंकी योजना आदि पर विचार किया जाता। संस्थान (श्रीराधामाधव सेवा-संस्थान) के विशेष परिपत्रकी सामग्री पू० बाबासे, बाई आग्रहपूर्वक ले आतीं और तदनुसार उनके चित्र तथा झाँकियोंके निर्माणमें बाईके साथ सब पूरे उत्साहसे रात-दिन लगे रहते। पूज्या बाईके निर्देशनमें चित्रकार रातों जागकर अपने जीवनकी धन्यताके मापदण्ड आदमकद चित्रोंका निर्माण करते। अल्पनाकार सम्पूर्ण गीतावाटिकाको सतरंगी बनाते, सप्तमीकी रात्रिको – सुरम्य सज्जा, नीली प्रवाहिणीका प्रतीकात्मक संतरण, रावलग्रामका प्रसूतिगृह, पूज्य बाबाका निजस्व, स्वानुभूत व्रजक्षेत्रका निदर्शन, जन्मकी प्रतीक्षा, साक्षात् बिम्ब द्वारा साक्षात् विग्रहका पूजन, फिर बधाई और दधिकर्दम।

उत्सवके समय अपनी-अपनी जिम्मेदारी निभाना अधिक उपयुक्त लगता था, पूज्य

श्री भाईजीको। अतः प्रत्येक कार्यकर्त्ता अपने-अपने स्थानपर ही तैनात रहता। वही होती उसकी अर्चना, जिसे निर्विवाद स्वीकार करतीं श्रीवृषभानुनन्दिनी ; क्योंकि उसके पीछे अमोघ आशीर्वाद था, पूज्य श्रीभाईजीका। उनके जीवनकालमें जहाँ रसका मेह बरसता था, आज वहाँ...।

वह उजड़ गया वन था जिसमें बहती रसकी धारा, प्रियतम!

....

थे बने विहङ्गम मूक गीत, गाती न कोकिला थी, प्रियतम!
शुक था नीरव रहता, सारी पढ़ती न पाठ अब थी, प्रियतम!



श्रीगिरिराज परिक्रमाका प्रतिनिधित्व

(श्रीमती राधा भालोटिया)

गिरिराज परिक्रमाके आरम्भके दिनोंमें बाई ही गोटीसे परिक्रमाकी संख्या गिना करती थी। आज जहाँ वेदी है, उसी स्थानपर पाटे पर बैठकर बाई गिनती, और बाबा परिक्रमा करते रहते। ४७ फेरीसे एक मील होता था। तदनुसार ही विश्रामस्थल आदि थे। बाबा शारीरिक स्वस्थता होनेपर नियमानुसार ही परिक्रमा एवं विश्राम करते। "कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल..." की संकीर्तन तालपर बाबाके चरण थिरकते रहते, और गिरिराजकी तरहटीमें अपने आराध्य-युगलकी सन्निधिमें चलती रहती, उनकी यह गिरिवर-उपासना।

आजीवन राधाबाबाने उन गिरिराजकी परिक्रमा की। अपने भावक्षेत्रमें बाबाने श्रीभाईजीकी एकमात्र पुत्री श्रीमती सावित्री देवी फोगलाको श्रीराधाकी अनुजा मंजुश्यामाके भावसे ही सम्पोषित किया। परिक्रमामें उसीके प्रतीक-स्वरूप एक वेदीका निर्माण करवाया, और प्रतिदिन परिक्रमा आरम्भ करनेके पूर्व अपना कौषेय वस्त्र उस वेदीपर रखकर, अनंगमंजरीके रूपमें श्रीमती सावित्री देवीकी उपस्थितिको उसमें मानकर उसे अक्षुण्ण रखा।

अपनी अन्तिम गम्भीर रुग्णावस्थामें जब वे उठनेमें असमर्थ हो गए थे, तब अपनी उसी भाव धारामें निमग्न सिद्ध संतने अपना वह कौषेय वस्त्र सावित्री बाईको प्रदान कर, उन्हें अपनी परिक्रमाका प्रतिनिधि मान लिया। उनके द्वारा अपनी परिक्रमाके नियमका निर्वाह ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया, अपने आराध्य-युगल परिनिष्ठित हृदयसे। उसके बाद ही संवरणकी उन्होंने अपनी इहलीला।

आज वे स्थूल रूपसे हमारे बीचमें नहीं हैं, परन्तु उनके भावोंसे वाटिकाका अणु-अणु, परमाणु-परमाणु अनुप्राणित है। चिर-विदाके तीन दिन पूर्व, उन महाभावस्वरूप संत द्वारा प्रदत्त प्रतिनिधित्वका निर्वाह, अब सावित्री बाईके जीवनकी शेष निधि है; और उसी शक्तिदानको अपना संबल मानकर उन्होंने इस गिरिराज-अर्चनाका उसी रूपमें निर्वाह करनेका व्रत लिया है। प्रथम बार उन महामानवकी पार्थिव उपस्थितिसे लेकर इस अनुपस्थितिमें भी, आज भी जब परिक्रमा सम्पन्न होती है तब अवश्य ही वे अपने चिन्मय स्वरूपसे उसमें उपस्थित रहते हैं। भावुक भक्तोंको इसकी अनुभूति अनेक बार हुई है। संत और भगवान पृथक अस्तित्व रखते नहीं, और कृपा-दानकी कोई सीमा नहीं – कोई परिधि नहीं – "मसकहिं करहिं बिरंचि प्रभु बिधिहिं मसक ते हीन।" निश्चित ही गिरिराज पूजनकी यह संत-निष्ठा आज भी बाईके

प्रतिनिधित्वमें भी उतनी ही महीयसी है, और इस सत्यका अनुकरण-अनुसेवन किसीको भी उसी गिरिवर-कृपाका अधिकारी बना देगा।

अनुपमेय है श्रीराधाबाबाकी अपने परिकरोंके लिए निर्धारित यह कृपा-दान पद्धति, जहाँ स्वयं अलक्षित रहकर भी रसकी धाराका प्रसरण निर्बाध रखा।



नील तरु की छाँह तले

(संकलनकर्त्री – अ० सौ० श्रीमती राधा भालोटिया)

(पू० अ० सौ० श्रीमती सावित्रीदेवी फोगलाके भाव-प्रसून)

एकनिष्ठता के बिना भाव शुद्ध नहीं हो सकता, शुद्धि बिना सिद्धि नहीं, और भाव-सिद्ध हुए बिना रसास्वादनका पड़ाव दूर बहुत दूर है। कृष्ण-तरुवरकी छाँह तले बीते बाईके जीवनकी कुछ झलकियाँ ही प्रस्तुत हैं, इन पत्रावलियों पर। कैसी और कितनी अनुपम-नेहपगी धाराके कासार पर क्रीड़ा करनेवालोंके जीवनमें भी मरु-झंझाका प्रकोप आता रहा है। अवश्य ही नील मेघाच्छादित गगनकी छाँह निरवधि उनपर रहेगी... आतपकी प्रखरता कुछ समयके लिए भले उन्हें झुलसा दे।

– राधा भालोटिया

(क) शक्तिपात

कट्टर वेदांती स्वामी चक्रधरजी महाराज गीतावाटिका आनेसे पूर्व जब गोरखपुर आकर गीताप्रेस पहुँचे और गीतावाटिकाका पता पूछ रहे थे, तब गीताप्रेसकी नींवके साथ अपने प्राणोंको जोड़कर, अन्तिम श्वास तक इस गीता-यज्ञमें आहुति डालनेवाले पं० लाधूरामजी शर्मासे उनका प्रथम साक्षात्कार हुआ। संन्यासी वेषको देखते ही चरण स्पर्श किया पंडितजीने और थके हुए स्वामीजीकी आदर अभ्यर्थना की। गीतावाटिका बाबूजीके पास आनेकी उनकी इच्छाका ज्ञान होनेपर, उनके लिए वाहनकी व्यवस्था करवाकर, उन्हें वाटिका भेजा। वाटिका पहुँचकर बाबा बाबूजीसे मिलनेके पूर्व, बाहर पोर्टिकोमें बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे। वहीं पोर्टिकोमें ही प्रथम दर्शन, शक्तिपात, आत्मस्वरूप ज्ञानदानकी विधि सम्पन्न हुई। और तबसे बाबा बन गए, परिवारका अंग। वही स्नेह, वही संलालन प्राप्त होने लगा हमें, उनसे भी। विरक्त और गृहस्थका व्यवधान समाप्त हो गया, बहने लगी प्रीतिकी अनाविल धारा। बाबूजी, बाबा एवं माँ – इस त्रिवेणीने मुझे जैसा स्नान कराया उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्योंकि **"गिरा अनयन नयन बिनु बानी।"**

रतनगढ़की बात है – माँ, बाबूजी और मेरी दादी – तीनों चौकमें बैठे थे। मैं भी वहीं थी। सहसा बाबूजी बोल उठे – "माँजी! या सावित्री तो आकर मनै संसारमें बाँध लियो,

नहीं तो पतो नहीं मैं कठै गंगा किनारे अइयाँ झोपड़ी बाँधकर रेतो, कि कोई न भी बेरो कोनी पट्तो।"

(माँजी, इस सावित्रीने तो आकर मुझे संसार-बन्धनमें जकड़ दिया है, नहीं तो पता नहीं मैं कहाँ गंगा-किनारे झोपड़ी बनाकर ऐसे रहता कि किसीको पता भी नहीं चलता।)

इसी तरह एक दिन बाबा कुटियामें थे, मैं भी बैठी थी। सहसा बाबा बोल उठे - "बहिनी, एक दीपक जलाया है पोद्दार महाराजने मेरेमें, और दूसरा दीपक मैंने जलाया है तुम्हारेमें।" उनकी इस उक्तिका क्या अर्थ है, वह मैं नहीं जानती, पर वे मुझे कहा करते थे -

मन्जु बहिन है एक, मेरी नित्य सहोदरा।
सभी भाँति वह नेक, है श्रीकृष्णमयी सदा॥
उसकी जो है चाह, मेरी रुचि है बस वही।
मैं, तुम व्रजवननाह! उसकी ही निधि नित्य हैं॥
लेकर स्वत्व-गुमान कहीं उसीने माँग की।
मेरा मौन-वितान वहीं तभी फट जायगा॥

बाहरी परिवेशमें, व्यवहारको देखकर उसके अन्तरतमका अनुमान लगाना सदा सत्य-सन्नद्ध हो, और औचित्यका स्पर्श करे ही, यह आवश्यक नहीं। बाबूजी-बाबाका सम्बन्ध उनके आचार-व्यवहार, मनुहार-तकरारकी अनगिन स्मृतियोंसे जुड़ा मन, ग्रहण कर ही नहीं सका बाबाके साथ अपने सम्बन्धोंको, स्व-निर्मित किसी श्रद्धा-शिखरका आरोहण। बाबूजी द्वारा स्वीकृत, उनके निजजन-प्रियजनके नाते ही जुड़े हमलोग बाबासे। इसी कारण उसमें अधिकार भावना प्रबल रही। उसमें सभी रसोंका, प्यार-खीझका समावेश रहा। आगन्तुकोंमें, बाबूजीके जीवन-कालमें परिवारकी इस वृत्तिके अधिग्रहणका स्वरूप रहा सहज, और उनके अन्तर्धानके पश्चात बदलने लगीं वृत्तियाँ। परवर्ती साधन प्रतिष्ठा स्मृति-संस्थापन-कालमें, नवीन श्रद्धा-संरक्षण, योजना-निर्माणकी प्रखर वेगवती वन्यामें - स्नेह, रस, प्रपंचशून्य साधनात्मकताकी घनी छायावाले विरुध धराशायी हो गए, और स्थापित हो गयीं विविध आस्थाओंसे सम्पोषित विभिन्न अहंतामूलक कँटीली झाड़ियाँ। उन कगारोंपर भाव-द्रुमावलियाँ अंकुरित होनेका उपक्रम तो करतीं, परन्तु उनका मूल अछूता, अस्पृष्ट ही रह जाता तलसे। रागके आलबालसे सुरक्षित पादपोंसे भी टकराया अवश्य वह कंटक-प्रवाह; परन्तु अन्तमें बदलना ही पड़ा उसे अपना मार्ग। आवश्यकता होनेपर उसमें हस्तक्षेप होता, अन्तर्जगत द्वारा भी। एक बात तो निर्विवाद थी और है ही - होता है सब मेरे बाबूजीकी मर्जीसे ही, आज भी उनकी रुचि ही ग्रहण कर पाती है मूर्तरूप -

जैसे, जब, जो कुछ करवावें और नचावें थनन-थनन।
कटु बुलवावें, गीत गवावें, कहलावें अति मधुर वचन॥

हाँ, वैयक्तिक स्वतंत्रताके प्रवाहमें बहनेकी खुली छूट भी देते थे, देते हैं बाबूजी ; जिससे आत्मशोधनका रसायन लेकर शुद्ध किया जा सके तन-मन, और सुदृढ़ हो सके विश्वास -

हम निश्चय तुमको पाएँगे, चाहे जो कुछ भी हो जाए।

जो हो, बाबूजीका असीम अनाविल स्नेह शब्दोंमें ससीम नहीं किया जा सकता। वे अनेक बार मेरी माँ से कहा करते थे - "इस सावित्रीने मुझे संसार-सेवी बना दिया। यदि यह न होती, तो मैं न जाने कबका सम्पूर्ण जागतिक बन्धनोंसे मुक्त हो चुका होता। मेरी आत्यन्तिक ममता है इसके प्रति, इसके लिए मैं कुछ भी कर सकता हूँ... अवश्य ही इसपर भगवानकी अद्भुत कृपा है, जो एक दिन प्रकट होकर ही रहेगी। सावित्री मुझे सर्वाधिक प्रिय है।"

स्वयं बँधे ममतामें, मुझको बाँध किया मायासे मुक्त।
रहे देख वो मुझे, देखता भोगोंको ज्यों बिषयासक्त॥

जैसे विद्युल्लहरी कौंधती है और पुनः विलीन हो जाती है कृष्ण मेघपुंजमें - ठीक वैसे ही मेरा तो सबकुछ समाहित था मेरे बाबूजीमें, और उसकी ही छाया पड़ रही थी बाबापर -

तेरे घरमें तो मैं स्वयं नित्य हूँ और रहूँगा ही प्रियतम।
अब अहो! प्रतिच्छाया मेरी रानीको यह दूँगा प्रियतम॥
इनकी दृगपुतरी बेटीजी श्रीजीके साथ सदा प्रियतम।
मेरी यह छाया भी खेले, मैं तो खेलूँगा ही प्रियतम॥

बाबूजीके प्यारकी उस अशेष वैचित्र्यमयी गरिमाकी ही परिणति यह हुई कि बाबाको अपने नीलदेवताकी छाया, युगलित भावकी प्रतिमूर्ति मंजुश्यामाका प्रतिबिम्ब प्रतिभासित होने लगा मुझमें ; और प्रतिष्ठित कर दिया उन्होंने वह चिन्मय भाव मेरी इस टट्टी-मूतकी थैलीमें। मेरे जन्मके पूर्व ही मेरी माँ को भी साक्षात्कार करा दिया था, बाबूजीने शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी श्रीमन्नारायणका। मेरे स्वरूपकी प्रतिष्ठा भी की बाबाने, शारदीय उत्सवमें नारायणके तुमुल नाम संकीर्तनके मध्य ही की। बाबाने दो श्लोकोंकी संरचना कर दी अपनी कृष्ण-कज्जल-रंजित आँखोंसे, जो मुझमें देखा उसे व्यक्त करनेके लिए -

मद्गोविन्द प्रतिच्छाये हे मद् राधा सहोदरे।

अनुक्षणं मञ्जुश्यामे जय वै मत्प्राणोपमे॥
कृष्णस्वरूपिर्णी वन्दे हनुमद्गुप्तसन्ततिम्।
नित्यां धर्मस्वसारं वै मञ्जुश्यामां सहोदराम्॥

कई बार बाबा मुझसे कहा करते थे – "बहिनजी! मुझे तुम्हारे और पोद्दारजीमें बहुत अधिक साम्य अनुभव होता है। आकृति, स्वभाव, वर्ण, कद, स्वर बोलनेके ढंगमें कभी-कभी तुम उनकी अनुकृति-सी प्रतीत होती हो मुझे, और मैं यह सब देखकर चमत्कृत हो उठता हूँ, अनेक बार। इसका सीधा अर्थ यही है कि मेरी अभिव्यक्तिका माध्यम केवल तुम ही बन सकती हो। तुम मेरे पोद्दार प्रभुकी सर्वमंगलमहीयसी चिच्छक्तिका ही तो अंश हो। साथ ही जागतिक धरातल पर भी आद्यन्त दैहिक-सुख-शून्य आहत-काम महापुरुषकी सृष्टि हो। तुम्हारे इस जड़ अविद्यात्मक देहमें भी अभिव्यक्ति है, उसी रसमयी अहंताकी। अतएव मेरी भावात्मक एकात्मता तुमसे कालके प्रवाहमें सदा-सर्वदा अक्षुण्ण रहेगी। तुम रहोगी मेरी अद्भुत-आसक्तिका बिन्दु –

री बहिन, बताऊँ क्या कैसे यह राग अनूठा है मेरा।
यह वही सुने जो है राधा साँवर पदकी चेरी-चेरा॥
जिसने इनके अतिरिक्त कहीं कुछ भी न स्वप्नमें भी हेरा।
सर्वस्व जलाकर राख बना, उसपर जो है डाले डेरा॥
तू देख बाट उस शुभ-क्षणकी, जब तेरी पावन आँखों में।
नीली वह ज्योति भरे कुछ बल, मन-बुद्धि रूप इन पाँखों में॥
तू देख न मुझे सकी, पर है न दोष तेरा, लाखों में।
कोई ही निरख सका, सो भी ज्यों शशि दीखे तरुशाखों में॥
पर प्रिय चिन्ताहीन रहो, जुड़ी, मुझसे जुड़े।
होंगे सभी विलीन चिद्व्रजभाव-पयोधिमें॥

श्रीकृष्णस्वरूपिणी मेरी बहिन मन्जुश्यामा री! मैं सत्य... सत्य कह रहा हूँ – तू मुझे नहीं पहचान सकी, परन्तु यह तेरा दोष नहीं। अरी लाखोंमें कोई इस दिशाकी ओर उन्मुख होता है, मुझे जान पाता है – "कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः।" परन्तु मेरी लाडली! तू तनिक म्लान मत होना री, तू तो मेरी नयन पूतरी बहिन है। मुझसे जुड़े तो सभी देर-सबेर उस भाव महासिन्धु में विलीन होकर रहेंगे।" बाबाकी यह उक्ति मुझे मेरे लिए परम सत्य एक दृष्टान्तकी स्मृति दिला देती है।

एक बार एक राजाने अपने राज्यमें एक प्रदर्शनी लगाई। भाँति-भाँतिकी सुन्दर वस्तुओंको

एकत्रित कर, आत्यन्तिक कलात्मक सज्जाके साथ उन्हें प्रस्तुत किया। सुखके सभी उपकरण एकत्रित कर दिए। आँखोंके लिए जागतिक समस्त सौन्दर्यकी सारी वस्तुएँ, श्रवणके लिए सुमधुर गायक, स्वर-लहरी, वाद्य-संगीत, प्राणके लिए अनुपम मादक गन्ध, जिह्वाके लिए सुस्वादु रसमय पदार्थ, नाना वस्त्रालंकार, मनोहारी, आकर्षक विविध प्रलोभनके पदार्थ। दुस्त्यज प्रपंच-राज्यके भोग पदार्थोंको एकत्र कर मुनादी पिटवा दी, जो भी चाहे आकर इस प्रदर्शनीसे अपनी रुचिकी वस्तुको ले जा सकता है। दरबारकी ओरसे गुलाबके पुष्पोंकी मालाएँ रखी हैं। अपनी-अपनी अभिलषित वस्तुको माला चढ़ाकर उसे वरण कर ले जाया जा सकता है। ताँता लग गया लोगोंका, सब अपनी-अपनी इच्छित वस्तु उठाकर ले जाने लगे।

यह सूचना पाकर अन्य राज्यका एक व्यक्ति भी वहाँ आ पहुँचा, उसने भी आकर सूचना-पट्ट ध्यानसे पढ़ा और चुपचाप एक माला उठाकर राजाके गलेमें डाल दी – वरण कर लिया स्वयं नृपतिका और घोषणा कर दी – "अब कोई व्यक्ति यहाँसे कुछ भी नहीं ले जा सकता।"

लोगोंने पूछा – "क्यों भई ? यह तो राजाकी आज्ञा है।" उसने उत्तर दिया – "हाँ, आज्ञा अवश्य थी ; परन्तु अब मैंने उस आज्ञा देनेवालेको ही अपने लिए वरण कर लिया है, और वे मेरे हो गए हैं। तब स्वाभाविक ही उनकी सारी वस्तुएँ भी मेरी हो गईं। अब अन्य किसीका उसपर कोई अधिकार कहाँ रहा ?" प्रसन्न होकर भूपतिने उस व्यक्तिको कण्ठसे लगा लिया, कहा – "वस्तुतः यही परीक्षा करनेके लिए मैंने यह खेल किया था, केवल एक आप खरे उतरे।" मैंने भी तो अपने बाबूजीका – स्वयं नृपतिका चयन कर लिया है, उन्हें ही अपना बना लिया। मेरे लिए अब क्या अप्राप्त है ?

साधनाकी दृष्टिसे विचार करें तो भी ठीक यही दशा है। अखिल विश्व-ब्रह्माण्डके सिरजनहारने हमारे प्रलोभनकी सारी सामग्री एकत्रित कर दी इस जगतमें। ऐलान भी कर दिया – "ले लो, उठा लो, जो चाहो, जितना लेनेकी सामर्थ्य हो।" और उन्मत्तकी तरह दौड़ते हम आजीवन उलझकर रह जाते हैं, इन नश्वर वस्तुओंमें, मात्र पदार्थोंमें। ध्यान ही नहीं जाता कभी इस ओर कि क्यों न वरण कर लें हम उसका, जिसने संरचनाकी है इस प्रलोभनके जालकी, इन सम्पूर्ण सुख-सुविधाओंकी। जो अनुपम, अद्वितीय सृजनकर्ता है, उसे पानेपर मटक-मटककर वस्तु-संग्रहकी आवश्यकता नहीं रहेगी –

अधिष्ठान सब जगका, नित्य मायामें रचता नाना वेश।
परद्रष्टा अनुमन्ता जो मती-मोहना ईश्वर परमेश॥
निज अधीन प्रकृति योगमाया अघटन घटना कर।

नित नूतन है वेष धारता, विश्वविमोहन बाजीगर॥

विस्मृत कर जाते हैं हम यह सत्य भी -

शोहरतकी बुलन्दी भी पल भरका तमाशा है।
जिस डाल पै बैठे हो वो टूट भी सकती है॥

अपने पूर्वाश्रमके रक्त-संबंधियों एवं संन्यासी वेश धारण करनेपर, अपने और बाबूजीसे जुड़े सभी व्यक्तियोंको जगत और अध्यात्मके क्षितिजपर अवस्थित होकर भविष्यका संकेत दिया है, वर्तमानकी जीवन-शैलीके लिए मार्गदर्शन किया है बाबाने -

"देखो! जागतिक सम्बन्धों, दैहिक सुख और कामना-वासनाकी पूर्तिकी दुरभिसन्धिमें रचे-पचे रहकर उस चिन्मय राज्यमें प्रवेश पानेकी इच्छा दिवा-स्वप्न मात्र रह जाएगी।"

(ख) उस पार मिलेंगे निश्चय ही

प्रीतिका पथ निराला है - सबसे पृथक् है, और इस प्रीति-पथका पथिक भी वही हो सकता है, जिसपर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दनकी कृपाका एक कण ढलक पड़ता है। कृपा-कणिकासे अभिषिक्त होते ही वह जुड़ जाता है, प्रीतिकी उद्‌गम-स्थली भानुराजनन्दिनीसे, फिर भानुनन्दिनीके प्राणोंकी धारा ही प्रसरित होने लगती है जुड़ने वालेमें। राधा-महाभावोदधिमें प्रतिपल उच्छलित दिव्य नवीन ऊर्मियोंमें, निमग्न हो जाते हैं वह जुड़े हुए प्राण, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ - सबकुछ।

बाबा स्वयं थे ऐसे ही सम्पूर्ण उस रसमें निमग्न-प्राण। मुंडित योगी, कट्टर वेदान्तीके रूपमें प्रवेश किया था बाबाने बाबूजीकी वाटिकामें, और मेरे समर्थ बाबूजीने अपने चमत्कारी स्पर्शसे वेदान्तकी उस शुष्क ऊसर जमीनको परिणत कर दिया रससिद्ध भाव-उर्वरा धरित्रीके रूपमें। योग्यता प्रदान कर दी उसे भी सृजनकी, पुष्प-प्रस्फुटनकी, और सहज ही उस धरापर सित किसलय तुलसिका, दूर्वांकुरके रूपमें फूट पड़े स्नेहके अनगिन अंकुर, जिनके मध्य अवस्थित थे पुरट-लता-संश्लिष्ट तमाल-तरु मेरे बाबूजी! बाबाके आराध्य, आश्रय, स्वजन, बंधु, जीवन, प्राण, प्राप्तव्य, दातव्य - सबकुछ!!

एक तुम्हारे चरण-कमलमें हुआ विसर्जित सब संसार।

बस, अपनी इसी अप्रतिम निधिको प्राप्त कर निहाल हो चुके थे बाबा, परन्तु कृपणताका प्रवेश नहीं था वहाँ, स्पर्श नहीं कर सकी थी संकीर्ण मनोवृत्ति उनका। अपने अतुल उस अक्षय कोषको दोनों हाथसे लुटाना ही था, उनका अप्रतिम सुख और लुटाते ही रहे वे उसे

अन्तिम श्वास तक। अपनेसे जुड़नेवाले प्रत्येक व्यक्तिको उस ऊल-कूलविहीन रस-निधिके तटपर ला पटका, जहाँसे उच्छलित उर्मियाँ उठाकर निमज्जित कर ही देंगी उसे आत्मस्वरूप अर्णवमें। कालमान भले कुछ भी हो, परन्तु सुनिश्चित है उस पार मिलन! आज भी अपनी उसी टेकको लिए, महाप्रयाणके पाथेय-रूपमें बाबूजीकी स्मृति अपने अन्तरतममें सँजोये, उनके उस "विभूति-विग्रह" को साक्षी बनाकर, अपनी चिर विश्राम-स्थलीमें विराजित रहकर हाथ उठाये आश्वासन दे रहे हैं वे -

उस पार मिलेंगे निश्चय ही।

बाबाने अपने काव्यके माध्यमसे न जाने कितनी बार मेरे सामने यह सत्य दोहराया है, मुझे भावीकी निश्चित सुन्दर पावन-योजनासे अवगत कराया है -

पर रह चिन्ताहीन, मुझसे तनिक जुड़े जुड़ी,
होंगे सभी विलीन, व्रज रस महासमुद्र में,
महाभाव रस-सिन्धुमें।

मेरे बाबूजीमें भी स्पष्ट परिलक्षित थी अपनी सामर्थ्यकी ठसक, फिर उनसा दाता भी दूसरा कौन हो सकता है? उनकी कृपा-शक्तिके प्रकट होते ही मालिन्यके स्तूप कब धराशायी हो जाते, कोई जान तक नहीं पाता। बाबाकी इस इच्छाको पूरी करनेकी, मानों उन्होंने भी प्रतिज्ञा कर ली थी। उन्होंने भी पुकारकर कहा -

मत निराश हो, मत घबरा रे! मत कर मनमें जरा विषाद।

बाबूजीका रचित एक पद है -

भगवत्कृपा दीनका धन है, है सबका उसपर अधिकार।

बाबाने उसे बदलकर कहा - "बहिनजी! इसका एक पाठ-भेद यह भी है, तुम तो इसे ऐसे ही पढ़ना -

हनुमत्-कृपा अनन्यका धन है, है उसपर मेरा अधिकार।

मैं अपने लिए भी ऐसा ही मानता हूँ, अपनी वस्तुका मैं यथारुचि उपयोग कर सकता हूँ। पर देखना! ध्यान रहे "जगन्नाथ-यात्रा" में निष्ठा चाहिए। आत्मप्रतिष्ठाके कूलपर अवस्थिति रुद्ध कर देगी प्रवेशका द्वार, साथ ही उस बिन्दुपर चातकका एकांगी प्रेम भी अनिवार्य है।"

बधिक बध्यौ पर्यौ पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।

तुलसी चातक प्रेम-पट मरतहु लगी न खोंच॥

बाबा स्वयं भी इसके प्रबलतम सम्पोषक, समर्थक रहे -

तुम ही मेरे प्राणप्रिय हो, प्रियतम सदा तुम्हारी मैं।
वस्तु तुम्हारी तुमको देते, पल-पल हूँ बलिहारी मैं॥

यही वांछित था उन्हें प्रत्येक मिलने आनेवालेसे। वे सदा कहते थे - "यह स्थली, यह प्रदेश मेरे व्रजकुलचन्द्रमाका नित्य विहार-स्थल है, यहाँ अन्यका अस्तित्व नहीं - अभिन्नता है यहाँकी प्राणवायु। इस नीलबिन्दुमें ही समाहित हो जाय सब कुछ, समाप्त हो जाय पृथकत्वका बोध सदा-सर्वदाके लिए। उपादान बन जाऊँ मैं भी इस कायव्यूह संरचनामें... बस शेष रह जाय एकमात्र यही लालसा...।" यही है इस राग राज्यमें प्रवेशका मंत्र।

(ग) प्रियतम-सा रसिक असम्भव है

बाबाने मेरे जीवन और भावीकी एक गाथा लिखकर दी मुझे और कहा - "बहिन री, तू निश्चिन्त रह। देख मेरे प्राणनाथ, मेरा यह लाड़ अवश्य-अवश्य ही रखेंगे। तू मेरी अनुजा उन्हें प्राणाधिक प्रिय है। और तू, मैं और प्रियतम अलग-अलग अस्तित्व रखते ही नहीं।"

देखो निकुंजराजा, अबला रोती है, दासी तेरी।
जो है तुझसे अभिन्न रूपा, पर बहिन कनिष्ठा मेरी॥
जा फँसी मृण्मयी कायामें, हाथोंमें लिए बटेरी।
जो दी मैंने ही यों कहकर, तू बाँट इसे श्यामे री॥
भोली अनादि वह है, उसने नीचेकी ओर न हेरी।
उरमें रख मुझे चली पथमें थी, राशि-राशि झड़बेरी॥
काँटे लग गए मृदुल पदमें, फिर भी देती थी फेरी।
मेरी रुचि अतएव, उधर रजनी पड़ गयी अँधेरी॥
हो चुकी भ्रमित थी और हुआ दिग्भ्रम, आगे थी भेरी।
मिट्टीकी मिस्रित है अनादि वन, तन जो आठ पसेरी॥
मायाकी खोदी खाईसे, जिसमें ही बिना बँडेरी।
वह भेड़ समूह गिरा कह-कह मैं, तू मेरी, वह तेरी॥
सरला भगिनी इस चिन्तासे, हो गई मुझे है देरी।
सीधे मैं लाँघ चलूँ कूदी, सन्मुख थी किन्तु चँगेरी॥

फल जामुन आम भरे उसमें, टकराई भगिनी मेरी।
गिर गई गर्तमें यूँ जैसे, फँदेमें फँसे बघेरी॥
उस टोनावारीने उसपर, मिट्टी फिर खूब बिखेरी।
दृग बन्द बहिनके हुए, हुई विस्मृति तेरी फिर मेरी॥
भूला स्वरूप आरम्भ हुई, जादूकी घेराघेरी।
आवरण तीन आए स्यामा, बन गयी अजाकी चेरी॥
है भूल नहीं उसकी वह तो, कर रही टहल थी मेरी।
लीला थी अहो सगाईकी, अनुपम वह तेरी-मेरी॥
हम थे नट-नटी बने, आया अभिनव बाजार ठठेरी।
कठ-पैंठ बिक रहे थे बरतन, बिकती थी बाँस-मँडेरी॥
तुमने क्रय किया एक कलसा, मैंने की बड़ी दिलेरी।
मण्डपके जोग लकड़ियाँ लीं, सत्रह मन सात पसेरी॥
आई घर लादे काठ, पीठ छिल गई कनक-सी मेरी।
आगे सब नेग हुए सुन्दर, बज-बज कर वीणा भेरी॥
उसका ही था बायना भला, स्यामाने की न सबेरी।
यों ही चल पड़ी लिए पायस, बिधि रे बलिहारी तेरी॥
अब हे प्राणाधिक विनती है, तुम लाड़ रखो यह मेरी।
है स्वप्न भले पर तुम उससे, प्रत्यक्ष कहो सुन ले री॥
प्रियतमा राधिका मेरी हैं, पर बड़ी बहिन हैं तेरी।
उनके उरमें तू नित्य बसी, तेरी पीड़ा है मेरी॥
है भिन्न नहीं तीनों सत्ता, उनकी मेरी फिर तेरी।
तीनोंमें है एकत्त्व नित्य, तीनों सच भी हैं ये री॥
है खेल अनिर्वचनीय नहीं, केवल अचिन्त्य भी ये री।
बातें हैं तत्त्वबोधकी ये, इनमें न लगी मति तेरी॥
जो हो रहकर तू सरस नित्य, देखेगी लीला मेरी।
अपनी रसमयी बहिन को तो तू, अभी देख यह ले री॥
यों प्राणवल्लभाकी भगिनी, सुखिनी हो उसे कहे री।
"प्रियतम-सा रसिक असम्भव है", यह सत्य बात है तेरी॥

हे निकुंजाधिपति! देखो सही यह तुम्हारी दासी रो रही है। अबलाके इस अश्रुमोचनकी ओर दृष्टिपात तो करो। प्रियतम! सुनो! तुम्हारी अभिन्नस्वरूपिणी, तुम्हारा ही प्रतिचित्र -

मेरी अनुजा, इस पंचतन्मात्रसम्भूत माया-परिचालित काया पिंजरे में फँस गई है। इसने अपने हाथोंमें अब भी वह बटेरी (बाँटनेकी वस्तु) जो मैंने "अरी श्यामे! तू इसे बाँट तो दे री," यह कहकर बाँटनेको दी थी, उसे थाम रखी है।

मेरी रुचिके आदरका उल्लास उरमें सँजोए यह रागबिद्ध-हृदया, भोली-भाली मेरी बहिन चल पड़ी थी। उसकी मनशून्य दृष्टि नीचेकी ओर जाती ही नहीं है। उसकी आँखें तो टिकी रहती हैं अहर्निश मुझपर, और जानते हो! मेरा तो सर्वरसपूर अनादि निकेतन है, उसका उरस्थल ही। वहीं अपनी दृष्टि जमाए यन्त्र-प्रतीक-सी अपने सुकुमार पद रख रही थी वह, उस महाकण्टक-समाकीर्ण पथपर। मृदुल उसके चरणतल काँटोंसे छिद गए, परन्तु वह इस पीड़ासे सर्वथा असंपृक्त रहकर बार-बार मेरी इच्छाके प्रति अपनी गरीयसी प्रीति उरमें सँजोए, फेरी लगाती ही जा रही थी। उधर रजनीने अपना तारक विजड़ित कृष्ण-वितान तान दिया। मंजु मेरी बहिन अत्यधिक श्रमित हो गई थी, साथ ही उसे दिशाभ्रम भी हो गया था।

जड़ अविद्यात्मक मायाकी गहरी खाई खुदी थी, सामने मिट्टीका टीला (भींटा) था। उस माया-जालमें, मृण्मयके उस मोहपाशमें मृत्तिका भाण्ड तन और विषयोन्मुख मन (आठ पसेरी =४०, सेर =१ मन) आबद्ध हो गए। उस गुफागर्भ-सी खाईके चारों ओर कोई बँडेरी (बीचका धारक तत्त्व) नहीं थी, और त्रिभुवन परावृता मायाके वशीभूत भेड़ समूहसा जनसमुदाय – "यह मेरे"-"यह तेरे" का कोलाहल करते हुए उसमें गिरता चला जा रहा था।

मेरी अपरमात्म वस्तु संस्पर्शशून्य भगिनी – "अतिकाल हो गया है, मैं भी इस खाईको लाँघ चलूँ तो शीघ्र पहुँच जाऊँगी।" – इस भावनासे भावित हो कूद पड़ी उस खाईके उस पार पहुँचनेको। परन्तु हाय रे दुर्भाग्य! उसने सामने रखी चँगेरीके जामुन, आम्र जैसे कषाय-सुमिष्ट फलोंकी ओर दृष्टि नहीं डाली, और उस प्रलोभनसे टकराकर वह भी उसी गर्तमें जा गिरी। उसकी स्थिति ऐसी हो गई मानों कोई बाघिन पिंजड़ेमें बंद हो गई हो।

जगन्मोहिनी मायाने उसपर सर्ववशीकारिता शक्तिसे देहाध्यासकी पर्याप्त धूल डाल दी। मेरी प्राणप्रिया बहिनके पद्मदलायत नेत्र निमीलित हो गए और आँखें बन्द होते ही, लुप्त हो गया उसका ज्ञान। विस्मृति हो गई उसे – पहले तुम्हारी और फिर मेरी भी। क्रमशः आत्मस्वरूपका भी विस्मरण हो चला और उस मायिक चाकचिक्यकी परिधिमें, उसके घेरेमें प्रवेश कर गई वह। त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके सत्त्व, रज, तम – तीनों आवरण आ गए उसके सामने और "**निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः**" की भावभूमिपर उन्मुक्त विचरण करनेवाली मेरी कनिष्ठा बहिन, बन गई मायासेविनी – दासी अज्ञानकी।

परन्तु मेरे असंख्य प्राणोंके प्राण! देखो, इसमें उसका क्या दोष? वह तो मेरी सेवा

टहल ही कर रही थी। मेरी और तुम्हारी प्रीति-सगाईकी लीला ही तो थी वह, जब हम दोनों ही नट-नटीका वेष धारण कर उस काठकी पेठ बाँस-ठठेरीके अभिनव बाजारमें गए थे। न जाने कैसे-कैसे काठ-मिट्टीके बरतन, बाँस-मड़ैया आदिका क्रय-विक्रय वहाँ हो रहा था। तुमने भी तो एक कलसा खरीदा था, उसे रससे पूरित कलश बनानेकी ही तो अभिसन्धि थी तुम्हारी। पर मैंने तो और भी ज्यादा दिलेरी दिखाई थी।

मैंने मण्डप निर्माणके लिए सत्रह मन सात पसेरी लकड़ियाँ लीं, और स्वयं अपनी पीठपर लादकर उन्हें घर तक लेकर आई। मेरा कनकाभ पृष्ठ-देश उस भारसे छिल गया। जानते हो! इसके पीछे क्या रहस्य था? देखो! परमपुरुष-प्राप्ति-मार्गीको चौबीसों अविद्यामूलक जड़ प्रकृति-तत्त्वोंका समाहार करना ही पड़ता है। यही हैं ये सत्रह मन सात पसेरी अर्थात् चौबीस जड़ तत्त्व। इनमें समाविष्ट हैं पाँच भूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक मन और एक जड़ अव्यक्त प्रकृति - यह हुई १७। मन और पाँच तन्मात्रा - रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द, एक महत्तत्त्व और एक अहंकार, ये हैं प्रतीक सात पसेरीके। कुल मिलाकर इनका योग होता है चौबीस और इनमें प्रत्येककी सत्ता जड़ है। इस जड़त्वका स्थूल संस्पर्श, राजपथका परित्याग कर कण्टकाकीर्ण अरण्य-पथपर पद-विन्यास ही तो है; उस भार-वहनमें तो क्षत-विक्षत होनेका नियति-विधान निश्चित है। वही मेरे साथ भी हुआ। मैंने तो स्वेच्छासे इस कष्टका वरण किया था - स्वयं मोल लिया था, वह घायल होनेका सिद्ध योग। परन्तु तुम्ही बताओ प्राणनाथ! मैं क्या करती? तुम्हें प्राप्त करनेका दूसरा मार्ग है कहाँ? परन्तु देखो प्राणवल्लभ! अपने इस खेलमें मेरी बहिन आहत हो गई, उसकी पीड़ा मेरे लिए असह्य है। अतः अब उसे तो तुम्हें सुखी करना ही पड़ेगा। मेरी इतनी मनुहार तो तुम स्वीकार कर ही लोगे।

उसके बादके सारे नेगचार, अत्यन्त प्रसन्नता सहित वीणा-भेरी बज-बजकर हुए। उस प्रीति-प्रतीति सगाईका बायना, वह पायस लेकर ही तो मेरी निश्छला स्यामा बहिन बिना ब्यारु किए, प्रातः होते ही चल पड़ी थी। हाय रे विधाता - तेरी बलिहारी है। अस्तु।

सुनो प्रियतम! जो होना था वह तो हो ही गया। परन्तु अब तुम मेरी विनती सुनकर मेरा लाड़ रख लो, चाहे यह मेरा स्वप्न ही हो परन्तु तुम मेरी बहिनको प्रत्यक्ष ऐसा ही कहकर उसे यह अमोघ वर देकर नित्य सुखिनी बना दो। "अरी श्यामे! मेरी प्राणसंजीवनी किशोरी मेरी नित्य प्रिया, हैं अवश्य, परन्तु वे तेरी सहोदरा बड़ी बहिन हैं। तू अविराम उनके हृत्तलमें बसी रहती है और देख, वहीं तो निवास करता हूँ मैं भी। अतः तेरी पीड़ा तो मेरी ही पीड़ा है। देख! तू, मैं और तेरी बहिन - हम तीनों एक ही सत्ता हैं, हममें कियदंश भेद नहीं, अपितु पूर्ण एकत्व है। साथ ही हम तीनों नित्य सत्य भी हैं - हमारा यह खेल केवल मन-वाणीका

अविषय ही नहीं अपितु अतर्क्य, आत्मप्रत्ययसार है। परन्तु इस सच्चिदानन्दमय परतत्त्वमें तेरी चित्तवृत्तिका सन्निवेश हो, यह आवश्यक नहीं। साथ ही तुझे इस धरातल-ध्वनिको सुननेकी आवश्यकता भी नहीं है री! देख तू नित्य संविद् रसमय इस मेरी लीलाका दर्शन तो अवश्य-अवश्य करेगी ही, अभी तप्तकांचनगौरांगी, सर्वलीला-मुकुटमणि, रस-रंगस्थली अपनी बहिनको निहारकर निहाल हो ले।

प्राणवल्लभ! नीलकान्तमणि-निर्मित पुत्तलिका-सी मेरी बहिन तुम्हारे मुखसे यह सुनकर आनन्द-सागरकी प्रेमोन्माद-ऊर्मियोंपर आरोहण-अवरोहण करती हुई सुखिनी हो, मुझे कह ही देगी – "बहिन री! तू ही तो कहती थी – "प्रियतम-सा रसिक असम्भव है" – तेरी यह उक्ति अक्षरशः सत्य है।" यह सुनकर मैं भी अवश्य-अवश्य सुखिनी हो जाऊँगी।

(घ) चित्रपटमें प्राकट्य

बाबाने मुझे नित्य अर्चनाके लिए तीन चित्र बनवा कर दिए। मुझे उन श्रीराधाजी, ललिताजी और कीर्तिदा मैयाके चित्रपट प्रदान करनेके पूर्व, बाबाने पं० लाधूरामजीके विद्वान पुत्र राधाकृष्णजीसे, उनकी १०० वर्षकी पूजा करवाई थी। बाबा-बाबूजी दोनों वहीं पूजामें उपस्थित थे और पं० राधाकृष्णजी बाबा द्वारा निर्दिष्ट स्तोत्रका भावसहित पाठ कर रहे थे। सहसा सम्पूर्ण कक्ष कोटि-कोटि शरच्चन्द्रकी कमनीय कान्तिसे परिपूरित हो उठा । प्रगट हो गईं नित्य वृन्दावनेश्वरी, नित्यकीर्तिकुमारी, माँ कीर्तिदा और बहिन ललिता। अवश्य ही उनका दर्शन कर सके केवल वे चार नेत्र, जो प्रक्षालित थे नील-पयोधिके जलसे, अनुरंजित थे कृष्ण-कज्जलसे, ज्ञाता थे प्रीतिकी रीतिके। मेरे बाबूजी-बाबाको, जिन चित्रपटोंको मुझे पूजाके लिए देना था, वहाँ मेरी बहिन स्वयं प्रकट हो, स्वयंको मुझे दें – इसमें आश्चर्य कैसे? इधर प्रत्यक्षमें देनेवाले निजस्वरूप भी तो स्वयं उस दानके लिए प्रस्तुत थे ही। वस्तुतः तो प्रस्तुत क्या, दे ही चुके थे। उधर भानुनृपदुहिता स्वयं अनुजासे मिलनेको आतुर, बहिन ललिताके प्राण सहचरीमें आबद्ध, मैया कीर्तिदा अपनी कनिष्ठाको क्रोड़में संस्थापित करनेको समुत्सुक। अतः उनका वहाँ प्राकट्य तो अवश्यम्भावी था। यह मेरी निर्भ्रान्त प्रतीति और संशयहीन विश्वास है। अवश्य ही मुझ मलिनाको दर्शन नहीं हुए, परन्तु मेरी बहिनने, मेरी मैयाने और मेरी प्राणसहचरी बहिन ललिताने तो मुझे देखा, अपनी चितिसे संस्पर्शित किया, प्यारसे स्नान कराया ही मुझको। मेरे लिए बाबूजी-बाबा द्वारा निर्धारित इस असमोर्ध्व सौभाग्यसे अधिक प्राप्तव्य क्या है?

अपनी चिन्मय संस्पर्शित शक्ति एवं रुचिसे अनुप्राणित हो, बाबाने मेरे और राधाके लिए दो लॉकेट और तीन अँगूठियाँ बनवाईं। स्वर्णपर मीनेसे अपने आराध्य नील-दम्पतिकी छवि

अंकित करवाई और उसे अपनी दिव्य आध्यात्मिक शक्तिसे अभिमंत्रित कर दिया। साथ ही अपना परम मंगलमय, अशेष चमत्कारी आशीर्वाद भी उसके साथ सन्नद्ध कर दिया – "जब भी तुम दोनों इसे धारण करोगी, मेरे प्राणनाथके अप्रतिम प्यारकी ही यह प्रतिष्ठा होगी कि तुम दोनोंको ही, मेरे और पोद्दार प्रभुके समीप ही वे स्वीकार कर लेंगे, देशगत व्यवधान चाहे कुछ भी क्यों न हो।"

एक बार राधाका वह लॉकेट और अँगूठी किसीने उसकी आलमारीमें से निकाल लिया। कहीं रहनेपर भी मेरे बाबूजी-बाबाकी सन्निधि स्वीकृत कर ली जाय, ऐसे "जादुई करिश्मे" का गायब हो जाना उसके लिए महान दुःखका विषय था। विशेष उत्सवों, पर्वों, तिथियोंपर उसकी यह पीड़ा घनीभूत हो उठती। प्रभु-कृपा – एक वर्ष बाद उसके ही आभूषण-विक्रेताके पास ये दोनों चीजें बिकने आईं। सुन्दर, कलात्मक वस्तु देखकर उसने राधासे सम्पर्क किया और राधाकी निधि उसे पुनः प्राप्त हो गई। पुनः मूल्य चुकानेसे यदि कहीं कोई अवांछित तत्त्व था, वह विनष्ट हो गया। राधाने बाबाको बताया, तब वे मुस्कुरा उठे। तरल नयनोंसे उसकी तरफ देखकर बोले – "बिटिया, मेरे पिचड़ियाके खेल वही जाने, तुझे तेरी वस्तु प्राप्त हो गई। दूसरेके लिए तो यह केवल स्वर्ण-खण्ड मात्र रहता।"

(ङ) गुणत्रय साक्षिता

वाटिकामें तीन लम्बे यूकेलिप्टसके पेड़ थे – पूजाघरसे राधाष्टमी पंडालके मध्यमें। बाबा कहा करते थे – "बहिनजी, ये तीनों वृक्ष सत्त्व, रज और तमके साक्षी-स्वरूप हैं। इनकी साक्षितामें सबकुछ घटित होता है, और ये मूक देखते रहते हैं उसे।" पंडाल निर्माणके समय वह एक वृक्ष पंडालके बीचमें आ रहा था। बाबाने कहा –"यह तो सत्त्वगुणान्वित पादप है, इसे काटना नहीं है। निर्माणमें इसको ज्यों-का-त्यों रखकर उसी हिसाबसे टिन काटकर लगानी चाहिए", और वही हुआ। बाबाने कहा – "यह कोई साधन-सिद्ध जीव है, जो श्रीराधाप्राकट्यकी पुण्यस्थलीमें खड़ा रहकर अपनी पत्रावलिसे इसकी अर्चना करता है। बस यही है इसकी आराधना-साधना। कालके प्रवाहमें यह सूखकर इसी भूमिके रज-कणमें मिल जाएगा।"

उस समय पूजाघर और रसोईके पीछे गुलैची, हरसिंगार, गुलाब, जामुनके पेड़ थे। पंडाल और पूजाघरके मध्य भागमें पीछेकी तरफ थी कल्याण-स्नातकोंकी निवास-स्थली। सम्पादन विभागके कई लोग वहाँ जीवन समर्पित करनेकी अभिलाषा लेकर निवास करते थे, वहीं उनके भोजनादिके लिए बासा भी था। श्रीराधाष्टमी महामहोत्सवके समय बासा उत्सवकी भोजन-व्यवस्थाका स्थान बन जाता। पोद्दार प्रभुके प्रति पूर्ण समर्पित रहकर, कल्याण-कार्यालयमें काम और शेष समय साधनामें व्यतीत करना ही था, उस कालके सम्पादकीय

विभागके अधिकांश व्यक्तियोंकी दिनचर्या।

ज्ञानकी इस पाठशालाका ही उच्चतम स्तर है प्रेम पाठशाला, जिसे क्रमशः विकसित करनेका प्रयास किया बाबाने।

श्रीराधाष्टमी पंडालके एक-एक स्तम्भ, बल्ली, टिन, रज-कणके सम्बन्धमें बाबा कभी-कभी भावोद्वेगकी स्थितिमें बताते थे – "बहिन, कैसे दिखलाऊँ तुम्हें... इस स्थानकी कैसी असमोर्ध्व महिमा है। पोद्दार प्रभु द्वारा पूजित यह श्रीराधा-प्राकट्य-स्थली, यह प्रसूतिगृह, सब चिन्मय स्वरूप ग्रहण कर चुके हैं। यह नव-वृन्दावन, जिसका निर्माण मैंने कराया है, यह हू-ब-हू उसी (नित्य) वृन्दावनकी अनुकृति है, और इसकी महत्ता उससे कियदंश न्यून नहीं। अपने अनन्त-ऐश्वर्य-निकेतन सहचरसे पूर्ण तादात्म्य-लाभ करनेके अनन्तर ही पोद्दारजी महाराजने यहाँ व्रजरसका उच्छलन किया है। यह राधाष्टमी महामहोत्सव कुंजी है भावके द्वारकी, जो उन्मुक्त रहता है इस दिन, और कृपाकी वह अजस्र धारा कब किसे आत्मसात कर ले, कोई नहीं जानता! इस मंचपर जो कुछ घटित होता है, उसका सीधा सम्बन्ध रहता है सच्चिन्मय धामकी लीलाओंसे। कोई इसका महत्त्व समझे न समझे, मेरी दृष्टिमें इसका कण-कण अर्चनीय है। इसमें भावका उद्गम-स्रोत छिपा पड़ा है। किसी परिस्थितिमें भी इसके स्वरूप-परिवर्तनकी कल्पना भावोंका विघटन ही करेगी। कोई मेरी इस बातको स्वीकार करे अथवा मनमानी करे – मेरे सत्य कथ्यमें कोई अन्तर कभी नहीं रहेगा।"

अपनी इहलीला संवरणके पश्चात, बाबूजी-बाबा दोनों ही अपनी निज रस-अनुलिप्त, इस भोवोद्गम-स्थली – जिसके समीपस्थ लता-पत्रोंसे स्फुरित होता था राग, सिद्धांजन-सी थी जिसकी रज-कणावलियाँ, सुवासित था जहाँसे प्रसरित पवनमें युगल-तत्त्व-रहस्य, प्रभाव-महिमा, ऐश्वर्य-प्रीतिका श्रीकृष्णांग-सौरभ, जो था आस्वाद्य-आस्वादक भावका संधिस्थल – के निकट आए ; मानो अपने भाव-प्रकाशनके महत् उत्तरदायित्वको उसके समर्थ कन्धोंपर डालकर, अपनी भावात्मक एकात्मतासे लक्षित अन्तिम मिलनके बिन्दुपर, चिर-विदाकी बेलामें, अपने प्राणसखाका आलिंगन कर, उसके समीप आकर ही अग्रसर हुए थे अपने चिर-विश्राम स्थलकी ओर।

आज सौन्दर्य-संवर्धनकी सुरुचि, नवीन वास्तुकलाका कौशल, अशेष-पुरुषार्थ-स्वरूप भावोत्कर्षकी परिपाटीके अन्तर्गत स्थानान्तरणकी अभिनव प्रक्रियाके अन्तरालसे बाबूजी-बाबाके इन भावोंके सम्पूर्ण अधिष्ठानकी भूमिका परिवर्तित हो चुकी है। अस्तु, जो उनके मुखसे सुना उतना ही जानती हूँ मैं तो, आगे वे जानें।

(च) नारायण-नारायण

बाबूजीसे पं० मदनमोहनजी मालवीयका आत्यन्तिक स्नेह था। पण्डितजीके कई संस्मरण बाबूजी सुनाते थे। उन्होंने ही एक बार बाबूजीसे कहा था कि "यात्रापर निकलते समय नारायण-नारायणका उच्चारण कर लेनेपर पथ सुगम-सुखद रहता है।" बाबूजी सदा कोई भी, किसी भी कार्यके लिए प्रस्थान करता, तो नारायण-नारायण स्वयं बोलते और उससे बुलवाते। अब तो बाबूजीकी इस परिपाटीका अनुसरण परिवारके अबोध शिशुओंका भी स्वभाव बन गया है। वे भी किसीको जाते देखकर अपनी तोतली बोलीमें ही सही, नारायणका स्मरण अवश्य कर लेते हैं।

इसी भाँति विदाकी बेलामें मंगल तिलक लगाकर, फल देकर जानेकी अनुमति प्रदान करना भी बन गया है, उसी क्रमकी कड़ी। माँ अपनी रुग्णावस्थामें भी सदा आगन्तुकोंको टीका लगाकर, फल प्रदानकर ही भेजती थीं। बाबूजी कहते थे – "फल देकर भेजनेसे पुनरागमन शीघ्र होता है।" आज भी वह प्रथा अक्षुण्ण है।

(छ) बाबाका काव्य-जगत

बाबा जैसे शारदाके वरद पुत्रके अनुभूति ग्रन्थ प्रियतम काव्यको मैंने ही लिपिबद्ध किया था। भावोन्मादकी दशामें वे बोलते जाते और मैं लिखती रहती। अन्यान्य भावमयी लीलाएँ तथा पदोंकी संरचना भी पर्याप्त है, जिसे समझना मानवीय विद्या-कौशलके बूतेकी बात नहीं।

बाबाका यह सारा रचना-संसार उनके मौनावधिकी प्रत्यक्ष अनुभूतिका जगत है, उन्हीं दृश्योंको यथावत चित्रित किया है उन्होंने। परन्तु इस अपनी जीवन-धाराको आत्यन्तिक सुगुप्त रखना अभिप्रेत था बाबाको, और तदनुरूप ही आदेश था मुझे। पानी पिलाने जब मैं जाती थी, उस समय वस्त्रोंमें छिपाकर छोटी पतली सी कॉपी साथ ले जाती, और वापस वैसे ही छिपाए ले आती। वर्षों तक मेरे परिवारमें भी किसीको यह भनक तक न लगी कि पानी पीते-पिलाते समय कैसी अनिर्वचनीय रस-चर्चा चल रही है, और उसे पंक्तिबद्ध करवाकर विश्व-मनीषा एवं अध्यात्म जगतको कैसा अप्रतिम उपहार दे रहे हैं बाबा। प्रतिभाके धनी बाबाकी भाषा-शैली, उसकी रसमयता, प्रभावोत्पादकता सब अनूठी थी। एकबार उस दिशामें उन्मुख हो आरम्भ करते ही, भावोंका अप्रतिम प्रवाह चल पड़ता और शब्दोंके चित्र सामने आकर खड़े हो जाते। मन्त्रमुग्धसा पाठक अनायास डूबता चला जाता उसमें। मैं तो स्वयं यन्त्रवत लिखती चली जाती। कैसे, क्या, कौन लिखवाता था – मुझे कुछ ज्ञान नहीं। अनेक बार तो ऐसा भी हुआ जब मेरी और बाबाकी हस्तलिपि-छविलिपि-सी प्रतीत होने लगी। बाबा और मैं – हम दोनों

ही भ्रमित हो जाते थे कि यह लिखावट किसकी है ? आनन्द और रसके आवर्तोंके मध्य सृजन होता रहता, इस रस-सृष्टिका।

उर्दू, हिन्दी, व्रजभाषा - तीनोंमें बाबाने रचनाकी, और प्रत्येक आलेख स्वयंमें पूर्णताको प्राप्त था, भावोंका कोश था। गद्यमें भी बाबाने पर्याप्त लीलाएँ लिखवाईं, परन्तु उन्हे प्रकाशमें लाना बाबाको वांछनीय नहीं था। अतः सारी चीजें एक साथ प्रकाशमें नहीं आईं। अन्य परिपत्रोंके साथ, प्रियतम काव्यके चार शतकोंके आधारपर भी बाबाने राधासे परिपत्र लिखवाए। बाबाकी भाषाका प्रभाव राधाकी लेखनीमें स्पष्ट है। बाबाके भावोंको ग्रहण करनेकी क्षमता उसे प्रभुने प्रदान की थी और अनेक बार बाबा उसे कहा करते थे - "बिटिया, जब बछड़ा गायके थनोंमें मुँह लगाता है, तब पिन्हाकर गाय दूध देने लगती है - अनायास उसके थनोंसे दूधकी धारा बह चलती है। ठीक वैसी ही दशा मेरी है, तेरी ग्राहकताके कारण मैं स्वयं उसी भावमें बहने लगता हूँ और चल पड़ता है रसका प्रवाह।"

(ज) वाङ्मय-स्वरूप श्रीकृष्णार्चन

मेरे बाबूजीके हमें छोड़कर जाते समयकी क्रन्दन-कथाको लिपिबद्ध कराया बाबाने राधाके द्वारा, अपने प्रतिष्ठित कुंज-स्थलमें एकाकी बैठाकर। वेदनाके पत्रक और क्रन्दनकी मसिसे लिखी इस गाथाका नामकरण किया बाबाने - "विखण्डित वीणा - रोता रव।" घंटों अश्रुकी दर-दर प्रवाहिणी प्रसरित होती रही थी बाबाकी आँखोंसे इसे सुनने पर, और उसी बहती अनुरागमयी धारामें, बाबूजीकी छविसे उद्भासित उनके हृदयके कोने-कोनेने इसे भागवतस्वरूप प्रदान कर दिया। अपने भावोंकी गरिमासे प्रतिष्ठा कर दी इसमें, श्रीकृष्णके वाङ्मय-स्वरूप श्रीमद्भागवतकी। उनकी दृष्टिमें कहाँ भेद था - श्रीकृष्णचन्द्रके स्वधाम-गमनकी स्थितिमें और इस बिछुड़नमें। बाबाकी आज्ञाके अनुसार उस भाव-प्रवाहको मैंने अपने हाथसे लिखकर बाबासे जुड़े विशेष लोगोंको उसकी छवि प्रतिलिपि करवाकर दिया। उसका नित्य पाठ बना दिया था बाबाने हम सबके लिए नियम। "प्रतिदिन, चाहे एक लाइन ही सही, जल पीनेके भी पूर्व उसका पाठ अवश्य कर लें। यह अन्तिम यात्रामें बड़ा सहायक होगा, किसी विशेष उद्देश्यसे कह रहा हूँ मैं। विश्वास रखना! इसका महत्त्व भागवतसे कम नहीं है।" हम सबको भी बाबाका यह आशीर्वाद प्राप्त हुआ और उसका नित्य पाठ है हमारे नित्यकर्मका अच्छेद्य अंग। बाबाका मेरे बाबूजीके प्रति कैसा अद्भुत प्यार था, कैसी आमूलचूल निमग्नता थी उनके स्वरूपमें, इसे वे ही समझा सकते हैं। यह अपूर्व भाव-वितरण भी था, हृत्तलमें अदर्शनकी आहको निरवधि संचित रखनेकी अभिनव उपासना-प्रणाली ही। राधाको भी बाबाने एक प्रति प्रदान कर यही कहा - "बिटिया, पोद्दार महाराजकी तुझपर बड़ी कृपा है। इसके

पाठसे तेरा अशेष मंगल होगा। तेरी यह अर्चना मेरे प्राणोंके अधिदेवता नीलसुन्दरदेवने स्वीकार कर ली है। उनके असीम अनुग्रहसे तुझे इसका अनुभव भी अवश्य-अवश्य होकर ही रहेगा।" जिस समय यह छवि प्रतिलिपि तैयार होकर आई, उस समय राधा कलकत्ते थी। बाबाने पत्र लिखवाकर पुस्तक वहाँ भेजी।

(झ) प्रेमदर्शनम् संस्कृत अनुवाद

बाबाने, देवर्षि नारद रचित भक्तिसूत्रोंकी बाबूजी द्वारा की गई हिन्दी-व्याख्याके गीताप्रेससे पुस्तक रूपमें प्रकाशित होते ही, प्रेमदर्शनके संस्कृत-अनुवादके सम्बन्धमें अपनी रुचि लिखवाकर मेरे पास रख दिया।

"खोपड़ी जिस तेजीसे छोड़ती जा रही है, इस कारण मैंने गोस्वामी प्रभु (पूज्य श्रीचिन्मनलालजी गोस्वामी) को यह बात कह दी है कि कदाचित मेरे द्वारा इसमें कोई परिवर्धन न किया जाय, तो उस परिस्थितिमें भी जैसे, जिस रूपमें यह छप गया है, उसी रूपमें इसे संस्कृतमें राधाके द्वारा पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्रीके सान्निध्यमें, अन्य किसी भी पण्डितके द्वारा नहीं, क्योंकि हमारे ध्यानमें व्रजरसका ज्ञाता तथा वेदान्ती दूसरा पण्डित नहीं है, अतः उनके सान्निध्यमें ही और राधाके द्वारा ही, राधाके द्वारा ही......।" और यह सत्यका सत्य मेरी दृष्टिमें है ही कि यह व्रजरसका अप्रतिम, व्रजरसका अप्रतिम, व्रजरसका अप्रतिम ग्रन्थ है।

देवर्षि नारदरचित नारद-भक्तिसूत्रोंकी मेरे बाबूजी द्वाराकी गई व्याख्या बाबाको बहुत प्रिय थी। वे प्रतिदिन ही उसका मनन करते थे। उसका संस्कृत अनुवाद करवाया बाबाने राधासे, यह भी उनकी कृष्णसुखैकतात्पर्यमयी किसी महती योजनाका ही अंग रहा होगा अवश्य। उसे धातु-पत्रोंपर उत्कीर्ण करवाया गया था, जिससे उसे सुरक्षित किया जा सके। नारदकृत भक्तिसूत्रोंकी बाबूजीकी व्याख्याका देवलिपिमें अनुवाद भी था बाबा द्वारा – बाबूजीका यश-स्तवन-गान, जिसे इस रूपमें ग्रहण कर सका कोई विरला ही।

(ञ) बाबा-आराध्या : त्रिभुवनत्रय जननी

थी त्रिपुरसन्दरीकी प्रतिमा प्रासाद कक्षमें ही प्रियतम।
अद्भुत सुवर्णसे विरचित थी, फिर था प्रभाव ऐसा प्रियतम।
हो जाता स्वतः नमित सबका सिर मन्दिर परिसरमें प्रियतम।

कृपामयी त्रिभुवनजननी भगवती त्रिपुरसुन्दरी हैं, भानुकुलकी कुलदेवी। दहर विद्याका द्वार उद्घाटित होता है इन्हीं महा महिमामयीकी अप्रतिम कृपासे। भावके विभिन्न स्तरोंपर

आरोहण करता हुआ साधक जब प्रवेश पाता है ललिताम्बाके मन्दिरमें, तब द्वार उन्मुक्त होता है महाभावका और –

हो कहीं चित्तकी वृत्ति किन्तु आते ही सीमामें प्रियतम।
चाहे कोई कैसा भी हो भावित होता सहसा प्रियतम॥

देवीकी स्वर्ण प्रतिमाके श्रीचरणोंमें शीश नवाकर, आब्रह्मकीटजननी आद्याशक्तिकी आज्ञासे ही प्रवेश पाता है जीव, उस चिन्मय राज्यमें। बाबाको भी निमग्न होना था उसी महाभाव रस-सागरमें। स्वयं रसराजने आज्ञा दी थी उन्हें उपासना करनेकी, ललिताम्बाकी। सम्पूर्ण व्रजधराका तन्त्र अनुशासित होता है, उन्हीं महिमामयीके द्वारा ही तो। स्वयं श्रीकृष्ण अपनी ही ऐश्वर्य शक्ति उन्मिषित करते हैं, उनके माध्यमसे। और वे ही नित्य प्रकट हैं, भानुराजनन्दिनी श्रीराधाके रूपमें –

जो महात्रिपुरसुन्दरी अघट-घटना-पटीयसी हैं प्रियतम।
चिन्मयी ज्योति उनकी ही कन्या बनकर आयी प्रियतम॥

शशांकशेखर, चन्द्रमौलि शिव द्वारा सुपूजित रहती हैं, ये जगदम्बा निरवधि। शिवकी सम्पूर्ण शक्ति इन शिवाका आधान हैं – शिव स्वयं। रसमार्गकी कुंजी प्राप्त होती है देवीके अनुग्रहसे ही, अपरिहार्य है यह उपासना-आराधना।

अर्जुनने एक बार श्रीकृष्णचन्द्रसे प्रार्थनाकी – "अच्युत, मुझे अपनी व्रजपुररामाओंके साथ संघटित केलि-विलासका दर्शन कराकर कृतकृत्य करो।" व्रजकुलचन्द्रमाने अस्वीकृतिकी मुद्रामें ग्रीवा संचालन कर कहा – "तुम्हें उसके लिए भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी कृपा प्राप्त करनी होगी, उनकी उपासना करनी पड़ेगी। यदि वे प्रसन्न होकर तुम्हें यह अधिकार प्रदान कर दें, तभी तुम्हें यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।" पद्मपुराणमें यह कथा विस्तारसे है –

अर्जुनने श्रीदेवीके चरणोंमें प्रणति निवेदन कर उनसे प्रार्थना की, निकुंज-लीलाके दर्शनकी कृपा चाही। देवीने उत्तर दिया – "कोई विरला ही तो होता है जिसपर श्रीकृष्णकी इस कृपाकी अभिव्यक्ति होती है। तुम धन्य हो, तुमपर व्रजराजदुलारेने यह कृपाकी है, और तुम्हें मेरे पास भेजा है।" इसके बाद अर्जुनने देवीकी आज्ञानुसार सम्पूर्ण साधनाएँ की और फिर जब उन्हें गोपी-देहकी प्राप्ति हो गई, तब श्रीराधाने स्वयं ले जाकर उन्हें अपने नित्य चिन्मय दिव्य लीला-राज्यमें प्रवेश प्रदान कर दिया ; जहाँ पहुँचना है कृतार्थताकी चरमावस्था।

यह भी प्रसिद्धि है कि श्रीकृष्ण अर्थात वासुदेवने दीर्घकाल तक भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी आराधना करके उन्हें प्रसन्न किया था। सुदीर्घ तपस्याके फलस्वरूप, पूर्णत्व लाभके लिए

आद्याशक्तिने श्रीकृष्णको उनकी स्वयंकी स्वरूप उपलब्धिका मार्ग दिखाया। इसके पश्चात भगवती त्रिपुरा अपनी कण्ठस्थित अपूर्व माला वासुदेवको अर्पित करती हैं, यह त्रिपुरातत्त्व माला ही कलावती माला कहलाती है।

श्रीकृष्ण-तत्त्व एवं श्रीराधा-तत्त्व – दोनों ही त्रिपुरसुन्दरी महाविद्याके साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं। वासुदेव भगवतीके रूपान्तर एवं कामकलाके प्रतीक रूप हैं। श्रीराधा भी वही हैं।

प्रसिद्धि है कि हरिनाम रूप महामन्त्रके ऋषि वासुदेव हैं, छन्द गायत्री एवं देवता स्वयं त्रिपुरा हैं। वासुदेव रहस्यमें उल्लेख है –

हरिनाम्नो हि मन्त्रस्य वासुदेव ऋषिः स्मृतः।
गायत्री छन्द इत्युक्तं त्रिपुरा देवता मता॥

बाबाको उपासनाका आदेश तो प्राप्त हो गया, परन्तु पद्धतिका प्रकाश नहीं मिला। बाबाने भगवतीके उच्च साधकोंसे जिज्ञासाकी, अनेक ग्रन्थोंका अध्ययन भी किया, शक्ति-उपासनाकी गहराइयोंमें उतरकर अपनी शंकाओंका समाधान करना चाहा। परन्तु सन्तुष्टि न हुई और न ही साधना-प्रणाली प्राप्त हो सकी। परन्तु उन्हें तो दिशाबोध होना ही था – स्वयं जगन्माताने प्रकट होकर बाबाको षोडशाक्षरी मंत्रकी दीक्षा दी। भगवतीका वांछित कृपा-प्रसाद प्राप्त कर बाबाकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा।

अब संपूर्ण तन्त्र-शक्तिकी गुह्यतम चेतना-उद्गम-स्थली, अनुत्तरा कलावतीका साधन बन गया उनके जीवनका दैनन्दिन क्रम। बाबा थे महान तन्त्र-साधक, कामेश्वरीके कृपापात्र। ललिताम्बाके सुललित भावोंके रस-प्रवाहपर नर्तन करता उनका मन, बन गया जगत्रय जननीका मधुमय, अनन्त सुखमय, ऐश्वर्य-प्रवण लीलास्थल। तन्त्र-साधनामें शीर्षस्थ स्थान प्राप्त कर लिया उन्होंने। दक्षिणा तन्त्रका कोई अंग अछूता नहीं रहा उनसे। कामेश्वर और कामेश्वरीकी अजस्र कृपाका स्रोत अभिषेक करता रहता था उनका निरवधि –

यह है त्रिकाल सच, जननि, इसे छूकर चाहो कुछ भी प्रियतम।
मिलती ही है वह वस्तु, परम मंगल एवं होगा प्रियतम॥

अपनी उस अमूल्य निधि, दुर्लभ अप्राप्य वस्तुसे आत्मस्वरूपिणी, भावजगतकी अपनी अनुजा मंजुश्यामाको वंचित कैसे रखते ? उसे अछूती कैसे छोड़ देते ? फिर दीक्षा दी भी जाती है योग्यको ही। स्वयं भगवतीके मनमें कहाँ पार्थक्य था दोनों बहनोंमें। आशुतोष शिवकी साक्षितामें, बाबूजीकी उपस्थितिमें, मुझे षोडशाक्षरीकी दीक्षा प्राप्त हुई बाबासे। जिस मंत्रको प्राप्त करनेके लिए इतनी दुरूह साधना करनी पड़ी थी बाबाको, वही मुझ अपनी लाडिली

बहिनको सहज भावसे करतलगत करवा दी बाबाने और अतुल बन गया था उसका प्रभाव बाबूजीके अनुमोदन-साक्षिताके कारण।

दक्षिण कर बहिन लाडिलीका धरकर साँवरी चली प्रियतम।
थी सदा साँवरीकी रुचि जो, थी वही लाडिलीकी प्रियतम॥

बाबाने उसी प्रकार साम्ब सदाशिवकी साक्षितामें, बाबूजीकी-सशरीर रसराजकी उपस्थितिमें, मेरे पतिदेव (परमेश्वरप्रसाद फोगला) को मुझसे "सौभाग्याष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र" की दीक्षा दिलवाई। इसके बाद तो यह क्रम चलता ही रहा, बाबाने स्वयं उपस्थित रहकर मुझसे अनेक साधकोंको दीक्षा दिलवाई। राधा भी रसराज-महाभावके दोनों तटों – बाबा-बाबूजीकी मध्यस्थता एवं त्रिपुरारि श्रीशंकरकी साक्षिता-सानिध्यमें बाबा द्वारा दीक्षित हुई। उन्हीं सम्पूर्ण विज्ञान-सिद्धिदात्री, करुणा-रससागरा जगन्माताके दर्शन हुए थे बाबाको, मेरी माँ (धर्मपत्नी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की इस पंचमहाभूतसमन्वित नारी-देहमें ही, जिसकी वन्दना भी की है उन्होंने अपने अनुभूति-प्रधान ग्रंथ "प्रियतम-काव्य" के आरम्भमें ही –

ललिताम्बामयीं ध्येयां रामदत्तापदाभिधाम्।
आत्मस्वरूपिणीं साध्वीं वन्देऽहं धर्ममातरम्॥

क्रमशः बाबाकी साधनात्मक स्थिति उच्च-उच्चतर होती हुई, उच्चतम शिखरपर आरूढ़ हो गई। अब उनका रोम-रोम बन चुका था भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरीका मन्त्र-प्रतीक।

कमलाक्षी कल्मषघ्नी करुणामृतसागरा।
कदम्बकाननावासा कमनीया कलावती॥

(ट) माँकी पति चरण-किंजल्क परिणति

बाबूजीके जानेके बाद, बाबूजी द्वारा प्रदत्त यह माँ की सँभालका भार ही तो शेष कर्तव्य रह गया था बाबाका। बाबूजीके स्मारक-निर्माणके समय भूमि-पूजाकी बेलामें, माँ के द्वारा बाबासे नींवमें मिट्टी डालने अथवा कुछ पुष्प चढ़ानेका अनुरोध करनेपर, अश्रुसिक्त नयनोंसे इतना ही उत्तर दे पाए थे वे – "मैं तो पोद्दार प्रभुके विदा होनेके दिन अपनी सम्पूर्ण अर्चना उनके साथ ही विसर्जित कर चुका हूँ, वे ही तो थे मेरे आराध्य, अब तो मेरे जीवनमें रिक्तताके अतिरिक्त कुछ नहीं।" फिर भी माँ के साथ वे उस स्थल तक गए अवश्य।

माँ के अन्तिम समयमें सांघातिक शारीरिक स्थितिके कारण बाबा, हमलोग सब घेरकर बैठे थे। बाबूजीके चरणोंमें विलीन होनेके एक दिन पूर्व अचानक माँ जोर-जोर से हँसने लगी,

उसका आनन्द समा नहीं रहा था। मैंने पूछा – "माँ, क्या बात है, तुम हँस क्यों रही हो।" माँ बोली – "अरे तुझे दीखता नहीं क्या, देख तो सही, तेरे बाबूजी आए है, मुझे अपने साथ ले जाएँगे। भगवान खड़े हैं – इससे अधिक प्रसन्नताकी और क्या बात हो सकती है?" मैं अचकचाई-सी देखती रह गई, उसके हँसते मुखमण्डलकी ओर। उस सौभाग्यकी मैं क्या सराहना करूँ? स्वयं व्रजेन्द्रनन्दनस्वरूप मेरे बाबूजीकी अर्धांगिनी थी वह, उसके कृतकर्मोंके भुगतानका आधा भार था उन सर्वसमर्थ कंधोंपर। उसे लेने वे स्वयं अपने प्रेष्ठके साथ आए, इसमें आश्चर्य ही क्या है? मेरी माँ-सी महासती, बाबाकी आँखोंमें जगदम्बाकी, भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी मूर्ति, लीलावपु – बाबूजीकी सहगामिनी-सहधर्मिणी। उसके ऊर्ध्वारोहणका दर्शन करनेको प्रस्तुत थे अमरवृन्द-मुनीन्द्र, जिसे देख रहे थे अश्रुपूरित नेत्रोंसे इस धरातलपर बाबा, रजोवीर्यसम्भूत पुद्गल उसका महत्त्व क्या जानें? हाँ, बाबाकी भेंट आज बाबूजीसे दूसरे वातावरणमें हुई थी। माँ मेरे बाबूजीके पास चली गई, अब बाबा भी मुक्त हो गए। बाबा-बाबूजीने परस्पर विचार-विनिमय किया और बाबाने स्वीकृति प्राप्त कर ली आज अपने जानेकी। साथ ही वहीं घोषणा भी कर दी – "अब मेरा काम समाप्त हो गया।" जिसके अन्तरालमें प्रतिध्वनित था चिर-विदाईका स्वर भी। बाबूजी बाबाके मन-प्राणोंमें कैसे निवास करते थे, इसका निदर्शन रहा बाबाका सम्पूर्ण जीवन, प्रत्येक आचरण। यह आख्या-व्याख्याका विषय नहीं। बाबूजीकी रुचि ही था उनका जीवन, उनका स्पन्दन।

पुत्रके नाते माँ की चिताको अग्नि प्रदानकी सर्वप्रथम बाबाने और दशगात्रादि सारे कार्योंमें अग्रणी रहे, और चले भी गए वे ललिताम्बास्वरूपिणी अपनी मैयाके शेष कर्मकी परिसमाप्तिके सत्रह दिन बाद ही। छमाही तक रुकना सम्भवतः उनकी रुचि थी। अतः उस दिन तक प्रतीक्षाकी उन्होंने। अवश्य ही बाबाकी भीषण शारीरिक कष्टकी स्थितिके कारण छमाहीका कार्यक्रम स्थगित कर दिया गया था, परन्तु बाबा इससे अनभिज्ञ थे। उन्होंने अपनी पूर्व जानकारीके अनुरूप ही विदा ली।

अखिलभुवनसमर्थके निजस्वरूप बाबूजीने स्वेच्छासे प्यारकी आशिखनिमग्नताके बिन्दुपर, माँ की पति-चरण-किंजल्क-परिणतिके साथ ही बाबाको सदा-सर्वदाके लिए गोवर्धन-गमनकी अपनी आज्ञा, अपना निर्णय प्रदान कर दिया और बाबाने संकेतसे उससे अवगत भी करा दिया; हाँ, हम समझ नहीं सके।

गिरिवर-भूमिसे एकात्म-लाभ कर लिया, पोद्दार-प्रीति-प्रासादकी आधारशिलासे लेकर अणु-अणु सन्निहित उत्तुंग शिखर बाबाने।

प्रगाढ़ अनुभूति जब तार्किकी बुद्धिकी द्वन्द्वमयी सीमाका सर्वथा अतिक्रमण कर जाती है, तभी सक्रियत्व-निष्क्रियत्व, साकारत्त्व-निराकारत्त्व एवं बहुरूपत्त्व और एकरूपत्त्वके एक ही

समय, एक ही साथ सर्वांगीण मिलनका रहस्य खुलता है, तभी इसका यथार्थ अनुभव प्राप्त होता है।

बाबूजीने अपने वसीयतनामे में सबका मार्ग-दर्शन किया है – चेतकर अन्तरसाम्यका साधन बताया है। कदाचित यह सम्भव हो सके! परन्तु एक बात है – "जैसे कोई थका हुआ प्राणी वृक्षकी शीतल छायामें आ जाय या प्यासा किसी शीतल मधुर जलके सरोवरपर आ जाय, फिर वह चाहे उस वृक्षको काटने या सरोवरको गंदा करने ही आया हो, एक बार तो उसे वृक्षकी सहज शीतल छायासे और सरोवरके मीठे ठंडे जलसे तृप्ति मिलेगी ही; क्योंकि वृक्ष तथा शीतल जलका यह स्वभाव है, और सम्भव है उस सुखसे उसका हृदय ही पलट जाय। इसी प्रकार जिन लोगोंने किसी भी नीयतसे मेरा सम्पर्क प्राप्त किया है, और कैसे भी मेरे साथ बर्ताव किया है, उन्होंने मेरा संग तो किया ही है। उस संगपर मेरे संगका असर अवश्य ही पड़ा है, इसीसे किसी अंशमें तो वे सभी कल्याणके भागी हैं ही। और यदि अब भी चेतकर ठीक "अन्तरसाम्य" कर सकें तो परम लाभ प्राप्त कर सकते हैं।"

(ठ) वन्द्य महाप्राण : मन्दिर-निर्माण

कामेश्वरीके सिद्ध साधक – बाबाकी देहपर भानुनृपकी कुलदेवी आद्याशक्ति भगवती त्रिपुरसुन्दरीके मन्दिर निर्माणका स्वप्न

बाबाके समस्त पूजन-समर्हणके विधिवेत्ता थे, मेरे बाबूजी स्वयं। वे सम्पूर्ण रस, तन्त्र, मन्त्र अनुष्ठानके ज्ञाता, मर्मज्ञ थे। बाबा कहते थे – "प्राण न रहनेपर मेरी इस टट्टी-मूतकी थैलीको गिरिराजमें घसीटते-घसीटते ले जाना और बूर देना कहीं भी उस स्थलपर, जहाँ मैं हूँ अधुना*।

बस, इतना ध्यान रखना – मेरी प्राणोंकी निधि, यह समाधि मेरे नेत्रोंसे ओझल न रहे। इसका दर्शन मेरी जमीनमें बूरी हुई मिट्टीको भी होता रहे। बस, इतना ही मुझे अभिप्रेत

---

* नानाजी की इहलीला संवरण के साथ ही बाबाने परित्याग कर दिया था अपने असन-वसनका, देहाध्यासका, कुटीरका, अपनी सम्पूर्ण सुख-सुविधाओंका। उस क्षणके बाद उन्होंने अपनी कुटियामें प्रवेश तक नहीं किया। समाधिके ठीक सामने चारों ओरसे खुले एक टिनशेडके नीचे बिताया, उन्होंने शेष सारा जीवन। समाधिकी ओर पीठ होनेके भयसे कभी करवट नहीं बदली, जब बदला सिरहाना बदला।

–श्रीमती राधा भालोटिया

है। रस-सागर स्वयं व्रजेन्द्रनन्दन प्रभुमें पर्यवसान ही तो लक्ष्य है मेरे जीवनका। ये पंचतत्त्व भी उन्हींकी सेवाके उपकरणमें विलीन हो जायँ, यही तो वांछित है नित्यवृन्दावनेश्वरी भानुराजनन्दिनीको। फिर मुझ नगण्यकी अलग पहचानका तो प्रश्न उठता ही नहीं। मेरा अणु-परमाणु सब उनमें ही समा जाय, यही तो है मेरी सम्पूर्ण साधनाका सार। जीवनमें भी मैं उनकी छाया ही हूँ, और इस मायिक स्वप्न भंगके अनन्तर भी मेरी कोई सत्ता यदि शेष रहे तो केवल उन्हींके रूपमें। पोद्दारीजीसे जुड़े प्रत्येक प्राणीके लिए यह अनिवार्य नियम है कि स्वतन्त्र सत्ता उसकी हो ही नहीं।"

मरणोपरान्त भी एक ही स्वर मुखर रहे -

एक तुम्हारे चरण कमलमें हुआ विसर्जित सब संसार।

"भैया, कैसे समझाऊँ? सरिता जब अपने प्राणधन सागरसे संगमित हो जाती है, तब उसका पृथक अस्तित्व रहता है क्या? खोजकर भी कोई गोताखोर क्या उस बिन्दुको अलग कर सकने में सक्षम होता है?

सागरकी पूजा - सरिताका आनन्द।
सागरकी उत्ताल तरंगें - सरिताका भावोद्दीपन॥
सागरका उच्छलन - सरिताकी थिरकन।
सागरकी शांति - सरिताकी निमग्नता॥
सागरकी नीलिमा - सरिताके प्राण।
सागरका सर्वग्रहण - सरिताकी संतुष्टि॥

क्या-क्या बताऊँ? किसे अनुप्राणित करूँ अपने इस हृदय-रसमें विलीनीकरणकी रस-प्रक्रियासे? यह "स्व" के अस्तित्वकी समाप्ति नहीं, अपितु अविच्छिन्न ऐक्य है, प्राणोंका सम्मेलन है, समाधिकी पूर्णावस्था है, तदाकारिताका निरुपम मौग्ध्य है।"

भगवतीकी कृपा-कणिकाका क्षरण जिसपर हो गया हो, वह महाप्राण बन जाता है साक्षात् उनका ही स्वरूप। एक बार दर्शनके बाद जब वह पूरित हो जाता है आँखोंके कृष्ण-गोलकोंमें, फिर उसका बाहर आना सम्भव नहीं। बाबाकी बलवती साधनाके प्रभावसे उनका प्रत्येक रोम हो चुका था मन्त्रमय। उस मान्त्रिक देहके प्राणशून्य होनेपर भी वह कलेवर रहता है, पूर्णतः अभिमन्त्रित ही। सदियोंमें ऐसा कोई वन्द्य आता है इस धरा-धामपर, और तब उदय होता है एक सर्वरसमुकुटमणि रसचन्द्रका। उपस्थित होता है एक दुर्लभ संयोग - उस परम पावन पुनीततम "शक्तिपात धारक" पंचत्व प्राप्त पंचतत्त्व स्थलपर, प्रतिष्ठापन भगवती त्रिपुरसुन्दरीका,

निर्माण ईश्वराके अर्चनागृहका। बाबाकी देह थी वही तत्त्व-रहस्य-प्रभाव-समन्वित आधारभूमि।

अनुकम्पा है जगदम्बाकी, साहस न किसीमें है प्रियतम।
जो करे अनिष्ट वहाँके लघु उन कीट-भृंगका भी प्रियतम॥

उन अशेषपुरुषार्थ स्वरूपाके गन्धोदक-परिमल अनुग्रहने ही, जाग्रत कर दी मुझमें यह मानसी वृत्ति। "कदाचित वृषभानुनरेशकी कुलदेवी, नित्यनिकुंजेश्वरी कीर्तिकुमारी स्वरूपिणी श्रीदेवी वज्रकुलचन्द्रमाकी संधिनी शक्तिरूपा श्रीविद्या, औढरदानी शिववन्द्या, समर्था शिवा, स्वयं त्रिभुवन-त्रय-जननी आ विराजें यहाँ - तो कैसे असमोर्ध्व सौभाग्यका वितान तन जायगा प्रपंचके इस धरातलपर। युगपत भोग एवं मोक्ष-दानकी विस्मयकारिणी स्थिति हो जाएगी प्रत्यक्ष। इस नवीन रस-मण्डलके बरसानेमें भी, आविर्भूत हो जाएँगी कामेश्वरप्रणयिनी त्रिभुवनवन्द्या।"

विभुताका हुआ प्रकाश सत्य अद्भुत उस नृपपुरमें प्रियतम।

अपनी ओरसे तात्कालिक अधिकारी-वर्गको प्रेरित करनेका, समझानेका पूर्ण प्रयास भी किया मैंने, विशुद्धतम सत्त्वका, आदिशक्तिके पादपंकरुहकी कृपाका आश्रय लेकर। इस विश्वासके साथ कि "हैं सदय जगन्माता मुझपर।"

उस क्षण मनके किसी कोनेमें बाबाके ये शब्द भी गूँज रहे थे - "मुझे बूर देना।" इस ध्वनिके अन्तरालमें निश्चित प्रतिध्वनित थी, यह महाध्वनि। "उस मिट्टी, उस सच्चिन्मय भूमिपर जिसे चाहो अवतरित कर सकते हो, यह तुमपर निर्भर करता है - तुम्हारी योग्यता, तुम्हारी पात्रतापर आधारित है।"

मेरा यह स्वप्न केवल निद्रावस्थाकी वस्तु न रहकर वाचिक भी हुआ, उसपर पर्याप्त विमर्श भी चला। परन्तु उसे मूर्तरूप नहीं दिया जा सका, कारण चाहे जो रहा हो। यह तो ध्रुव सत्य है ही - अवसर प्राप्त होना सम्भाव्य है, परन्तु अवसरोचित निर्णय लेना सम्भव है तभी जब त्रिभुवन-परावृता महामाया अपनी माया-यवनिका अपसारित कर दें। अन्यथा इस पराशक्तिके साथ सामरस्य सम्भव नहीं। अस्तु, यही मानकर सन्तोष करना उचित है कि अनन्ता, अनुत्तरा श्रीदेवीने ही स्वाविर्भावके उपयुक्त नहीं माना इस कालखण्डको, क्योंकि लक्षित रूपसे यहाँ शेष रह गयी थी, माया-विलसित मति ही। इस परिहासपूर्ण मानसिकताका शब्द-चित्र तो बाबाने अपने जीवनकालमें ही अपनी अक्षर तूलिकासे अंकित किया है -

दल तथाकथित राजाओंका, ऋषियोंका, मुनियोंका प्रियतम।
कुछ सिद्धोंका भी आता था, एवम् गन्धर्वोंका प्रियतम॥

पड़ती उसपर जो दृष्टि कहीं, उनकी पैनी-सी हे प्रियतम।
वह भवन वस्तु बनता विराग, अथवा विनोदकी ही प्रियतम॥
कुछ थे विहंग उसमें अवश्य, पर थे वे सब सोये प्रियतम।
थे नीड़ सभीके भिन्न-भिन्न, सहचरी साथमें थी प्रियतम॥
उनका था वह संसार अलग, वे थे भूले उसमें प्रियतम।
है कौन यहाँ बाला बसती, वे क्या कैसे जानें प्रियतम॥

वह पिपीलिका-पाँति तो अपनी परिपाटीसे ही चलेगी, उसमें परिवर्तन कहाँ –

वह रात नहीं थी चार पहर वाली, जो मिट जाती प्रियतम।

(ङ) बोधानन्द समुद्र : बुद्धि विशिष्ट

बाबा तो कृष्ण-कर संचालित काष्ठ-पुत्तलिका ही हमें बनाना चाहते थे। बाबूजीकी कृपाके अधिकारी हम बन सकें, यही तो उनका अविरत प्रयास था। हमारी भाग्यलिपिको बदल डालनेको वे स्वयं तो कृतप्रतिज्ञ थे ही; श्रीकृष्ण-गतप्राण, श्रीकृष्ण-रसभावित-मति, श्रीकृष्ण-स्वरूप मेरे बाबूजीसे भी स्व-ऐश्वर्य शक्तिका प्रकाश कर, सबको अपने उस नील-वितान-तले आश्रय देनेको बाध्य करनेकी अभिसंधि सदा रही उनकी। और अपना कण-कण, क्षण-क्षण लगा दिया उन्होंने इसके संस्थापनमें। परन्तु अन्तमें यही कहकर मौन हो गए वे –

अश्रु अजस्त्र अपार परिवृत है राधा नगर।
दुमुँहा गोखुरखार थल पर भी हैं बिछ रहे॥
निभ जाना आसान काम नहीं इस ओर है।
बहुत चले हैरान हो पर दहिने मुड़ गए॥
वहीं असीम गंभीर बोधानन्द-समुद्र है।
बुद्धि-विशिष्ट लकीर खींच उसीमें रम रहे॥
वहीं प्रतिष्ठा नील बालक, जो है ब्रह्मकी।
है आसीन करील भासक सम्विद् कुंजमें॥
कहीं उसीने डाल दी किंचित नीली छटा।
बुद्धि-लकीर निहाल हो तब बनती और है॥
छाए री, अतएव सावधान रहना सतत।
फँस मत जाना देवमाया-प्रज्ञाजालमें॥
तन पशु वृक्ष विहंग कीट पतंगोंका भले।

मिले अजस्र तरंग कृष्ण किन्तु दृगमें बहे॥
यह निष्ठा रस-सार कण-कणमें भर ले अरी।
छाँह तभी इस पार खेल मंगलाचरण हो॥

मेरा यह राधा-नगर अजस्र अश्रुधारसे घिरा हुआ है, क्योंकि –

हूँ आर्द्र किए रहती इसको, नयनोंकी बूँदोंसे प्रियतम।
मुरझा न उठे यह किंचित् भी, इस भय से भीत हुई प्रियतम॥

साथ ही दो मुँहवाले गोखरूके काँटे भी यहाँ बिछे हुए हैं, इसपर चल पाना सहज नहीं। कईने चलनेका प्रयास किया भी परन्तु भ्रमित-श्रमित होकर दाहिनी ओर अर्थात् दक्षिण दिशा, नरककी ओर मुड़ गए क्योंकि उन्हें ज्ञान ही नहीं इस सत्यका –

प्रीतम प्रीति ही तें पइए...

"पद-पद प्रकट होनेवाली अपार भगवत्कृपाका अनुभव क्यों नहीं होता ?"

इसका यही उत्तर है –

"इसमें पूर्व संचित पाप बाधक हैं। संचितका नाश पुरुषार्थसे होता है। पाप रूपी तमका नाश होते ही, हमारी दृष्टिको आच्छादित करनेवाले बादलोंके हट जानेसे, सूर्यके प्रकट हो जानेके समान भगवत्कृपा-रूपी सूर्य प्रकट हो जाता है। भगवत्कृपा-रूपी सूर्य तो है ही, पाप रूपी तमसे हमारी अन्तःकरण रूपी दृष्टि ढकी हुई है। इसीसे वह कृपा-सूर्य हमें दीखता नहीं। इसलिए निरन्तर ही भगवानकी पूर्ण कृपा मानते रहना चाहिए। मानते रहनेसे भी कभी साधन तेज होते ही, तम नष्ट होनेपर भगवत्कृपा प्रकट हो जाएगी।"

"निष्काम भजन, ध्यान, सेवा, सदाचार आदि असली सोना है। और काम, क्रोध, अज्ञान, संशय, विषयासक्ति, प्रमाद, अभिमान और आलस्य – ये आठ प्रकारके दोष दूसरी धातु हैं। संसारके चित्रोंका चिन्तन कूड़ा-कर्कट है। तत्त्वज्ञान अग्नि है, सत्संग उस अग्निको बढ़ानेवाली वायुकी फूँकनी है। शास्त्रोंका विचार सुहागा है।"

इतना ही नहीं यहाँ ज्ञानका गहरा महासमुद्र भी है – प्रज्ञावैशिष्ट्य-सम्पन्न व्यक्तित्व अपनी-अपनी आत्म-प्रदीप्तिकी सीमा-रेखामें आबद्ध हो, वहीं रम गए। निकट ही करीलकी कुंजोंमें छिपा है वह परब्रह्म-स्वरूप नील बालक भी। कदाचित किसी बड़भागीपर उसने अपनी उस नील-प्रभाका प्रकाश बिखेर दिया, तो बुद्धिका अध्यवसाय समाप्त हो, स्पर्श कर लेती है वह कृतार्थताकी लकीरका।

"अरी मृण्मयकी छायारूपी काया! तू इस माया और प्रज्ञा दोनोंके ही प्रलोभन-जालमें मत फँसना। यह देह चतुष्पद, तरु, लता, पत्र, कीट-पतंग-भृंग अथवा खगकुल – कहीं भी जन्म ग्रहण करे, पर मन श्रीकृष्ण रस-तरंगोंपर ही तरंगायित रहे, काजर-रेखसे केवल कृष्ण समाए रहें दृगों में।"

"अरी पंचत्वकी छाया! देख जब इस निष्ठासे तेरा कण-कण परिपूरित हो जायगा, तभी इस परम पावन खेलका शुभारम्भ हो सकेगा। तभी उपस्थित होगा मंगलाचरणका मुहूर्त।"

"भैया, मेरे पोद्दार प्रभुने न जाने कितनी बार अपने प्रवचनोंमें कहा है – श्रीराधाकी स्मृति तो वहाँसे आरम्भ होती है, जहाँसे सारे भौतिक जगतका अन्त होता है।"

कैसी दयनीय स्थिति यह है कि हम बनाना चाहते हैं इस प्रेममूर्तिकी स्मृतिको, हमारी जागतिक स्मृतिका पूरक। कैसे खरे उतर सकेंगे हम जगन्नियन्ताके निकष पर? जबकि निश्चित निर्देश है– "गोपी प्रेमके आधारपर भगवद्रसके प्रवाह में बहनेके लिए, सर्वत्यागका आदर्श सामने रखकर साधनामें प्रवृत्त होना चाहिए। किसी सर्वत्यागी, ऐसे गोपीरूप रसमय प्रेमीजनको ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाकर आगे बढ़ना चाहिये, और सदा यह देखते रहना चाहिये कि भगवत्प्रीति तथा भोगोंसे उपरति, भगवानकी आत्यन्तिक अखण्ड-स्मृति तथा जगत-प्रपंचकी विस्मृति, और उत्तरोत्तर भगवत्सेवामें प्रवृत्ति तथा स्वसुख-वासनाकी निवृत्ति होती जा रही है या नहीं। यही कसौटी है इस परम पवित्र प्रेमके साधनकी।"

(ढ) कृष्ण-कली परिमल

मेरे बाबूजीमें नख-शिख, सर्वत्र आप्लावन था महासिद्धिका ही, वे जानते थे नियति सबकी। साथ ही महासिद्ध नियतिके नियन्त्रणमें तब तक हस्तक्षेप नहीं करते, जब तक कृपा-बिन्दु न ढलक पड़े। बाबूजीके समीप तो अणिमादि सिद्धियाँ यों ही लोटा करती थीं, उनके लिए तो महत्त्व था केवल प्रेष्ठके प्रस्फुटित नील-जलज मुखका। वे जानते थे अनन्त जन्मोंकी सच्ची साध लेकर जब साधक चलता है कृष्ण-प्रीतिसुधा-सीकर प्राप्तिकी दिशामें, तब स्वयमेव अपसारित कर दिए जाते हैं मार्गके अवरोधक। यहाँ भी वही होगा, अतः प्रतीक्षा उचित प्रतीत होती रही उन्हें, जिससे खालिस-निखालिसका वर्गीकरण स्वयमेव हो जाय। हाँ! खरे सौदागर नन्दनन्दन और उनके आत्मस्वरूप बड़े सुपटु होते हैं, सौदा खरीदनेमें। नकली, मिलावटी वस्तु नहीं ग्रहण करते वे। साथ ही यदि बेचनेवाला अपना माल जगह-जगह दिखाता फिरता है, तब भी पेठके नगर सेठकी उस मालको खरीदनेमें रुचि नहीं रहती। कृत्रिमता, स्वाँगका अणु-परमाणु और पराश्रयकी गन्धकी गन्धको भी नहीं स्वीकार करते वे व्रजरसनिधि। फिर मेरे

बाबूजी इस अकाट्य नियमका खण्डन क्यों करते ?

बाबूजीकी साक्षात उपस्थिति थी हमारे लिए कल्प-पादपका आश्रय। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष - ये चारों पुरुषार्थ एक ओर, और पंचम सर्वोपरि पुरुषार्थ "प्रेम" - सब हस्तामलकवत प्राप्त थे हमें उनकी सन्निधिमें। भूत उनकी गोदमें बीता, उनकी उपस्थितिके वितान तले वर्तमानकी आनन्द-सुख-स्रोतस्विनीमें यथेच्छा अवगाहन करते ही रहे थे हम, और भविष्यमें इस सुख-स्वप्न भंगकी दुःखद किन्तु निश्चित स्थितिकी कल्पना भी, कभी उनके ऐश्वर्य-विमोहनमें हम कर सके नहीं। उन्होंने करने ही नहीं दी, और यह असंभव संघटित हो गया, बाबूजी चले गए। हम तो इठलाते फिरते थे अपने सौभाग्यपर, समर्पणका ही तो रूप था वह गर्व - "ये मेरे हैं, मैं इनकी।"

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

का ही तो रूप था वह मेरी दृष्टिमें। परन्तु अवश्य ही कहीं किसी बिन्दुपर इस वृत्तिमें समावेश रहा है प्रपंचका, और यही है हेतु इस व्यवधानका, इस दूरीका। अन्यथा पलक झपकते, न झपकते वे कृपामूर्ति आकर समेट लेते अपने अंकमें ठीक वैसे ही, जैसे प्रत्यक्ष उपस्थितिमें वे करते थे। आज उनकी मूर्त अनुपस्थिति कैसी पीड़ा-प्रदायिनी है, क्या बताऊँ ?

मेरा सम्पूर्ण जीवन सुवासित रहा इन अप्रतिम नील-पीत सरसिजद्वय (श्रीभाईजी तथा श्रीबाबा) के सौरभसे। मेरा हृदय-फलक धूसरित रहा इस स्नेह-पराग-परिमलसे। अन्तहीन है यह प्राणकथा। बस, यही है इस व्यवहार-जगतसे भिन्न वस्तुका कथ्य-तथ्य।

(ण) भाव-पंक्ति

"मेरे बाबूजी" - इन पाँच अक्षरोंमें अनुपम स्नेहका ऐसा अप्रतिम-निदर्शन निहित है, अनाविल प्यारकी ऐसी उन्मुक्त धारा प्रसरित है कि उनकी मूर्त अनुपस्थितिकी स्मृति-मात्रसे हृत्तन्त्रीके सम्पूर्ण तार झनझना उठते हैं। अवश्य ही उनके स्नेहसे अभिभूत हृदय इसका अनुभव करता है। केवल हम ही नहीं, जीवनमें जो भी व्यक्ति बाबूजीसे एक बार भी मिला, उसके प्राण उनके स्नेह-दानसे ऐसे रससिक्त हो उठे कि आज प्रत्येक ही अपने परम स्वजनके रूपमें उनके अभावसे पीड़ित है। जो भी उनके पास आया, उनके प्यारमें अवगाहन कर, सदाके लिए उनका अपना हो गया। उसका दुःख उनका अपना दुःख हो जाता था, उसकी पीड़ा-कष्टसे बाबूजीका नवनीत-हृदय करुणासे द्रवित हो उठता और विदेह जनककी-सी स्थितिमें स्थित मेरे बाबूजीके नेत्र भी भर आते। सहज स्नेहवश वे उसे कष्टसे मुक्त करनेको

प्रयत्नशील हो उठते। साथ ही किसीके जीवनका तनिक-सा भी उत्कर्ष देखकर, बाबूजीके स्नेहिल मुख-सरोजकी सहज मुस्कान अधिक गहरी हो उठती। आनेवाला मंत्रमुग्ध-सा उस स्नेह-प्रतिमाका दर्शन करता, एक अमिट छाप उसके हृदय-पटलपर सदाके लिए अंकित हो जाती। बाबूजीके लिए जागतिक कोई भी वस्तु, स्थिति कुछ भी अर्थ नहीं रखती थी। वे तो इस यान्त्रिक प्रपंचसे अत्यन्त दूर – अपने भावमें निरन्तर भावित रहते थे, परन्तु दूसरेके सुख-संयोजनकी वृत्ति, उनके पर-दुःख-कातर हृदयमें अनायास ही उत्थित होती रहती; और स्वाभाविक ही उनकी क्रिया इसी धरातलपर होती।

भारतके विभिन्न नगरोंके बहुसंख्यक परिवारोंके साथ उनका घरका-सा सम्बन्ध था। सभी अपनी गम्भीर परिस्थितिमें दौड़कर उनके पास आते, और आप्यायित होकर लौटते। प्रत्येककी समस्याका समाधान उनके पास था। और अपने व्यस्त कार्यक्रममें से समय निकालकर वे पूर्ण मनोयोगके साथ सबकी बात सुनते, अपने निर्हेतुक स्नेहका दान कर उन्हें सन्तोष करवाते। किसीकी अस्वस्थताका कोई समाचार मिलते ही वे चिन्तित हो उठते। आवश्यक प्रतीत होनेपर अपनी अस्वस्थता-निर्बलताको सर्वथा गौण कर, स्वयं जाकर उसे, उसके परिवारको सान्त्वना देते। सबके लिए ही सहज स्नेहकी पूर्ण स्थापना उनके मनमें थी। सभी उनके अपने थे। वास्तवमें विश्व बन्धुत्वका मूर्तिमान उदाहरण थे मेरे बाबूजी।

हिन्दू-धर्मके कट्टर पृष्ठ-पोषक होनेपर भी बाबूजीके जीवनमें असमानता न थी। जाति-पातिके रूढ़िवादसे वे परे थे। मुसलमान, अँग्रेज, ब्राह्मण, चाण्डाल – सबमें समान रूपसे विश्वरूपमें विराजित प्रभुका दर्शन ही उन्हें होता था। प्रत्येकके गुणको ही उनकी अदोषदर्शी आँखें देखती थीं।

जगन्नियन्ताने अपने निस्सीम अनुग्रहसे हमें स्नेहका वह निर्झर प्रदान किया था, जिसमें हम नित्य-निरन्तर अवगाहन करते रहते। उसका अमृतोपम जल पान करते, उसमें उन्मुक्त हो खेलते। उसके शैत्यका स्पर्श पाकर अपना सम्पूर्ण परिताप भूल बैठते। उस परिधिमें ही मानो जीवनमें प्राप्त होनेवाले प्रत्येक सुखको हमारे लिए सँजो दिया गया था। उसके बाहर कितना भीषण तापमान है, कैसी धक्-धक् जलती ज्वाला है, हम अनुमान नहीं कर सके, सर्वथा उसे भूल बैठे। बाबूजीकी शीतल वरद भुजाएँ, हम अभागोंके ऊपर एक अमर बोधिवृक्षकी शंतम छाया थीं, जिसके नीचे रहकर हम दिनकरकी प्रखर किरणोंसे झुलसनेके कष्टका अनुमान ही न लगा सके। उनकी अनुपम स्नेह-पूरित गोदने हमारे जीवनको ऐसा सुधासिक्त कर दिया कि हम वैपरीत्यकी आशंका तक न कर सके। उनका संरक्षण हमारे जीवनमें ऐसा अमृत उड़ेल चुका था कि अन्य बातोंकी परवाह हमारी कल्पनामें ही न आती थी। उनकी सन्निधिके अप्रतिम सुखमें हम अन्य सबको विस्मृत कर बैठते थे, उनके अमोघ आशीर्वादने हमें ऐसा ही मस्त

कर रखा था।

पर आज वे बाबूजी हमको छोड़कर हमारे नयन-पथसे दूर, अत्यन्त दूर चले गए हैं। और जब वे ही चले गए, तब जीवनमें शेष रहा ही क्या? घरमें काम करनेवाले वेतनभोगी कर्मचारी, मित्रगण भी उनके अपने परिवारके सदस्य थे। प्रत्येकके साथ वैसा ही आत्मीयता-पूर्ण व्यवहार उनका जीवनभर रहा। अपने घरमें विवाह आदिके शुभ अवसरपर वे नौकरोंको भी अपने निकट बैठाकर तिलक करवाते, वर-वधूको उनका चरण-स्पर्श कर आशीर्वाद दिलवाते। ऐसा स्नेह आजके जगतमें कहाँ?

"कल्याण" पत्रके माध्यमसे बाबूजीने देश-विदेशमें, जो धर्मकी ध्वजा फहराई है, उसका भी दूसरा उदाहरण अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। वर्तमान युगके स्वार्थरत संकुचित "स्व" को लेकर ही चलनेवाले जन-मानसके सम्मुख, बाबूजीने परहित-सुख-सम्पादनका जो आदर्श रखा है, यह उनकी अपनी गरिमा थी, अपना स्वरूप था। उनके कण-कणसे प्रतिध्वनित होता था -

निज इन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम काम।
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम प्रेम॥

उनका जीवन पूरा-पूरा इसी साँचेमें ढला हुआ था, वास्तवमें उनके पास कृष्णतत्त्वके अतिरिक्त कुछ था ही नहीं। अपने जीवनमें उनकी यह निःस्वार्थ स्नेहदानकी, अपना बुरा करनेवालेके साथ भी सच्ची प्रीति निभानेकी प्रच्छन्न शैली, अन्ततक अक्षुण्ण रही।

वे आधुनिक युगके परम भागवत, परमात्म-पुरुष थे, सब कालमें सबके लिए वंदनीय थे। सबके भाईजी थे, सबके मार्गदर्शक थे, परम दिव्य भगवदीय स्वरूप थे। वे चले गए - एक आभा धराधामसे उठ गयी, दीन-हीन मानवताका सहारा था, जो छिन गया। गन्तव्य तक निरापद पहुँचानेवाली जलती मशाल थी, जो बुझ गयी। आध्यात्मिकताकी एक विजय पताका थी, जो धराशायी हो गयी। इतिहासमें ऐसे उदाहरण ढूँढ़नेपर नहीं मिलेगे, जब "अकेले एक व्यक्तिने लाखों विविध समुदायोंमें बँटे मनुष्योंकी अपने आत्मबलसे कायापलट कर दी हो, आस्तिकताका पाठ पढ़ा दिया हो, अपनी मंत्रपूत वाणीसे अभिनव जागरण ला दिया हो, अपनी लेखनीसे विश्वके कोने-कोनेमें अध्यात्मकी ज्योति जगा दी हो।" आज अलक्षित रूपसे भी उनका अनुपम-अनाविल स्नेह उसी रूपमें हमारे साथ है, हमारा मार्गदर्शक है। उनके महान आदर्श, ठोस रचनात्मक कार्य एवं विरल व्यक्तित्व तो युगोंतक मानवको सत-संकल्पोंकी ओर प्रेरित करते रहेंगे और वह प्रेरणा भावी पीढ़ियोंके जीवनका सम्बल बनेगी।

बाबूजी अपनी दिव्य भावदशाके निरुपम सुख-समुद्रमें अविराम डूबते-उतराते रहते थे। उनका यह पांचभौतिक कलेवर दिखनेके लिए स्थूल शरीरका ढाँचा रह गया था, वस्तुतः वहाँ

कृष्णतत्त्वके अतिरिक्त कुछ था ही नहीं। हमने भगवानको तो देखा नहीं, उनसे हमारा परिचय नहीं, हमने तो देखा है इन स्नेहमूर्तिको, अनुभूत किया है इनका ही अनाविल स्नेह। रसतत्त्व क्या है – श्रीराधारानी।

श्रीकृष्णचन्द्र क्या है? हम क्या जानें। वे हाथ पकड़कर, बरबस खींचकर जहाँ ले जायँ, जिससे मिला दें, जहाँ डाल दें – उनकी इच्छा, उनका अधिकार। हमारी अपनी अहंताका अर्थ क्या? उसको स्थान कहाँ? हमारी तो अभिलाषा इतनी ही है कि जीवनका अणु-परमाणु, स्थूल-सूक्ष्म सब समर्पित हो जाए अपने बाबूजीके प्रति, सदा-सर्वदाके लिए मिट जाय अन्यथा भाव।

बाबाके शब्दोंमें – "पोद्दारजी महाराजके पांचभौतिक शरीरका चिन्तन प्रत्यक्ष लीला-चिंतन ही है, इसमें सन्देहको स्थान नहीं।"

इससे बड़ा आश्वासन, इससे अधिक सुरक्षा और क्या हो सकती है? कैसे महाभाग्यवान हैं हम सभी जिन्होंने प्रत्यक्ष वह अनुभूत किया है, उसका दर्शन किया है, जिसका फल प्रत्यक्ष लीला-चिंतनके समकक्ष है। क्यों न हम भी अपनी चित्तवृत्तिको तदाकार बनाकर केवल और केवल उनका ही चित्र अंकित करें हृदयपटलपर, एकनिष्ठ भावनाकी तूलिकासे।

अवश्य ही व्रजजनजीवन-सर्वस्व और उनकी प्राणप्रियाको प्रत्यक्ष देख लेनेपर भी, क्या हम उन्हें पहचान पाएँगे? हमारी इस असमंजसकी स्थितिको सर्वथा-सर्वांशमें समाप्त कर दिया वृन्दाविपिनविहारीने। अपने निज-स्वरूप संतोंके रूपमें, प्रत्यक्ष स्वयंके दर्शन-स्पर्श-संलालनको अनुभूत करनेकी निर्विवाद विधा प्रदान कर दी हमें। स्पष्ट दिखा दिया – संतके अवगुण्ठनमें ही श्रीहरिका निरावरण दर्शन सम्भव है।

सृष्टिके लम्बे इतिहासमें महापुरुषोंकी कमी नहीं। एक-से-एक महान आत्माओंने इस धरा-धामपर अवतीर्ण होकर एक-से-एक लोकोत्तर कार्य किए हैं, और उच्च आदर्शोंकी स्थापनाकी है। परन्तु "भवदीय यन्त्र मेरे बाबूजी" की यह अपनी विशेषता थी कि उन्होंने सदैव आदर्श आध्यात्मिक जीवन बिताया। लाखों-लाखों लोगोंको उस राहपर ले गए, जिसपर चलकर सुर-मुनि-दुर्लभ आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्रके नित्य-सत्य सच्चिदानन्दघन मंगल-विग्रहका साक्षात्कार कर, जीवन कृतकृत्यताको प्राप्त हो जाता है, जीवन धारणके वास्तविक लक्ष्यपर पहुँच जाता है। पर इतना होनेपर भी उन्होंने न तो कभी स्वयंको अवतार कहा, और न ही अपना अलग धर्म प्रवर्तित किया। उनका व्यक्तित्व ही हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्मका सच्चा प्रतिनिधित्व करता था। उनका व्यक्तित्व गंगाकी भाँति निर्मल, हिमाचलकी भाँति अडिग और दिनकरकी भाँति चमकता हुआ था। सुमनों-सी सुगन्ध, शिशु-सी सरलता, जल-सी तरलता और वृक्षों-सी

सहिष्णुता उनमें कूट-कूटकर भरी हुई थी।

वस्तुतः तो सत्य, संयम, सदाचार, त्याग, पर-दुःखकातरता, सहिष्णुता, सेवापरायणता, सादगी, रस और महाभावके युगपत शान्त और उच्छलित समुद्रमें निरन्तर गोते लगानेवाले, उन महामानवके अलौकिक व्यक्तित्वके गाम्भीर्यकी कोई थाह नहीं, कोई मापदण्ड नहीं। जिस संतने जन-सेवाके लिए अपना सर्वस्व होम कर दिया हो, जिसके मानसमें असत् अंकुरित ही न होता हो, जो पूर्ण जागतिक बाना धारण करके भी उससे सर्वथा-सर्वांशमें दूर, अत्यंत दूर हो, कृष्णप्रेमके अतिरिक्त अन्य कोई अस्तित्वकी गन्ध भी जहाँ न रह सके, उसके "एकमेवाद्वितीयम्" जीवनका विश्लेषण कर ही कौन सकता है ?

आज विचार करनेपर ही जब उनके कृत्य मनुष्यकी सामर्थ्यसे परे जान पड़ते हैं, तब कल भावी पीढ़ी तो सम्भवतः इसपर विश्वास ही न कर सकेगी कि ऐसा भी कोई लोकोत्तर मानव था, जो देवताओंकी सामर्थ्यको भी लाँघ गया। वास्तवमें ऐसा ही अप्रतिम व्यक्तित्व था उनका।

विश्वरूपमें विराजित अपने प्रेष्ठके दर्शन उनको सहज होते थे। पर-हित-सुख-सम्पादन उनका नित्य स्वभाव था। अपने प्रति अपकार करनेवालेके लिए भी, उनके हृदयमें विशुद्ध स्नेहका निर्झर ही प्रसरित होता था। निःस्वार्थ कर्मयोग उनकी नीति थी और प्रभु-प्रेम ही उनकी पूँजी थी। उन्होंने स्वयं कहा है –

"मुझे जो कुछ लाभ हुआ है, उसमें संत-कृपाके साथ-साथ तीन चीजोंकी प्रधानता है -

१. सबमें भगवानको देखना,

२. भगवत्कृपापर अटूट विश्वास और

३. भगवन्नामका अनन्य आश्रय।

यही मेरी अतुल सम्पत्ति है, और यह इतनी विशाल है कि असंख्य लोगोंके द्वारा इसके ग्रहण किए जानेपर भी यह कम नहीं होगी। जो कोई मेरी इस सम्पत्तिके उत्तराधिकारी बनना चाहें, सबमें भगवान देखकर सबका हित-सुख-सम्पादन करें। निरन्तर बरसनेवाली भगवत्कृपाकी, अहैतुकी, अनन्त सुधा-धारामें सराबोर रहें और अनन्य निष्ठा, विश्वासके साथ भगवन्नाम-जप-कीर्तन करते रहें। ये तीनो करेंगे तो अवश्य ही पारमार्थिक लाभ होगा।

मैंने किसी भी मत-सम्प्रदायके महात्माओंका और उनकी दैवी-सम्पदायुक्त साधन-पद्धतिका कभी विरोध नहीं किया। मुझे ऐसा लगता है कि एक ही सत्य विभिन्न रूपोंमें अभिव्यक्त है। मैं यह चाहता हूँ कि मेरी इस मान्यता तथा उपलब्धिके भी लोग उत्तराधिकारी बनें और जो सच्चे मनसे बनना चाहते हैं, उन्हींको मैं यह उत्तराधिकार देता हूँ।"

अपने बाबूजीकी जितनी चर्चा करूँ, कम है। साथ ही यह है "मूकास्वादनवत्" -

डूबै सो बोलै नहीं, बोलै सो अनजान।
गहरौ प्रेम समुद्र, कोउ डूबै चतुर सुजान॥



बिछुरे पितु कें जग सूनौ भयौ

(पूज्या अ० सौ० श्रीमती सावित्रीदेवी फोगला)

व्यथासे फटते प्राणोंकी लेखनीको, हृदयके हाहाकारकी कृष्ण मसिमें डूबोकर जो दो शब्द लिखनेका प्रयास करती हूँ, अनायास दर-दर बहती अश्रुकी प्रवाहिणी उसे भी धो दे रही है। पर... आज... आज कौन पोंछेगा इन आँसुओंको... अब मैं अनाथ जो हो चुकी हूँ। मेरे सुखके लिये सतत प्रयत्नशील रहनेवाले, मेरे इस लहलहाते हँसते उपवनको स्नेह-सुधासे सींचनेवाले, इसकी रक्षा करनेवाले मेरे बाबूजी तो मुझे छोड़कर चले गये... अब मेरे पास रहा ही क्या? उनकी उपस्थितिमें राज-पुत्री-सी रहनेवाली मैं आज तो सर्वथा भाग्यहीना हूँ। मेरे पास तो निधि वे थे... बल उनका था... और वह अनमोल निधि ही मुझसे छिन गयी।

बाबूजी चले गये... मुझे छोड़कर मेरे बाबूजी चले गये। वे बाबूजी, जो मुझे कभी उदासतक नहीं देखना चाहते थे... आज जब वे ही मुझे फूट-फूटकर रोते देखकर भी मुझपर सदय नहीं होते, कण्ठसे लगाकर नहीं पुचकारते... अपना अमोघ वरद हस्त मेरे सिरपर नहीं रखते... तब रोऊँ भी किसके सामने... मेरी रुचिका आदर करनेवाले, मेरी सुननेवाले तो थे मेरे बाबूजी... अब तो यह अरण्य-रोदन ही है।

जगत्‌में आँख खोलनेके क्षणसे लेकर अबतक मैं अपने बाबूजीके स्नेहके ऐसे चक्रव्यूहमें रही, जहाँसे बाहर मैं निकल ही न सकी... इस दुःखालयके स्वरूपको मैं ठीक-ठीक समझ ही न सकी... इस परिधिमें निश्चिन्तता मेरी सहचरी थी और मैं इठलाती फिरती थी। उनका निरुपम स्नेह सर्वाङ्गपूर्ण था। मुझे अन्य किसीकी आवश्यकता ही नहीं थी। पर हाय रे, आज मेरा यह चक्रव्यूह टूट गया है... मेरा रक्षा-कवच लुट गया है... मेरी चिरसखी निश्चिन्तता मुझ अभागिनका साथ छोड़कर भाग चुकी है... अवश्य ही व्यथा और आँसू आजीवन मेरा साथ निभानेको दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं।

बाबूजीके अनुपम अनाविल विशुद्ध स्नेहके स्थानपर आज मेरे पास हैं आँसू और टीस... जो मेरे मन-प्राणको मथे डालते हैं... मेरा सर्वस्व लुट गया। जिनके प्राणोंसे मैं अनुप्राणित हुई... जिनकी स्नेहमयी छत्रछायामें मैं अबतक फली फूली, उनके निस्पन्द हो जानेपर भी मैं निष्प्राण न हो सकी... मेरे निर्लज्ज प्राण इस शरीरका परित्याग न कर सके। मेरा वज्रनिर्मित हृदय नहीं फट सका। मैं प्रस्तर-प्रतिमा-सी देखती रही और बाबूजी मुझे छोड़कर चले गये।

बाबूजी,

आप-सा पिता और मेरी स्नेहमयी जननी-सी माँ... इन्हें प्राप्तकर मैं धन्य हो उठी थी। परंतु उस स्नेहशीला जननीके स्नेहपूर्ण नयनोंसे भी बह रही है आँसुओंकी धारा... उसका गरिमामण्डित मुख म्लान हो रहा है, पर आज मेरी राजरानी माँ की अन्तर्व्यथाको कौन समझे? उसके जीवनमें सुखकी सरिता प्रवाहित करनेवाले तो थे आप और केवल आप... आज वह किसे कहे? बाबूजी, मेरी माँ को छोड़कर आप क्यों चले गये...?

बाबूजी,

किसके सहारे अपनी लाड़ली बेटीको छोड़कर आप चले गये? इतना लाड़ लड़ाकर, अब रोनेके लिये मुझे आपने क्यों छोड़ दिया? अब किसकी गोदमें मुँह छिपाकर अपना सब दुःख भुलाऊँ मैं?

बाबूजी,

जीवनमें मैं तो कभी अभावकी कल्पना ही नहीं कर सकी... आपमें मुझे तो सब कुछ मिल जाता था, पर आज... आज आपकी राजकुमारी बेटी सर्वथा अभागिन दीना है। सब कुछ खो चुका है उसका।

बाबूजी,

राखीका त्यौहार आता... मुझे स्वप्न में भी कभी कल्पना नहीं होती... मैं किसके राखी बाँधूं। आपकी वरद भुजापर कच्चा धागा लपेटकर, जब आपके चरणोंमें मैं सिर रख आपका अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करती... तो गर्वसे मैं फूल जाती... मेरे तो ऐसे बाबूजी हैं... मुझे अन्य किसीकी क्या आवश्यकता... पर आज मैं किसके पास जाऊँ? आपके बिना यह प्रसङ्ग मेरे जीवनसे उठ गया। भातके समय अपने स्नेहके तानों-बानोंमें बुनी हुई सुरंग चुनरी जब आप मेरे सिरपर रखते, और श्रीराधामाधवकी नित्य क्रीड़ा-स्थली अपने समर्थ पिताके हृद्देशको चुनरीसे मैं नापती... मनुष्योंकी कौन कहे... देवता भी उस क्षण मेरे भाग्यसे ईर्ष्या करने लगते। मैं कृतकृत्य हो उठती... मुझे मेरा मनचाहा मिल जाता, पर आज मुझ-सी अभागिन दूसरी कौन है... अब तो यह आयोजन ही मेरे जीवनसे सदा-सर्वदाके लिये लुप्त हो चुका है।

बाबूजी,

जीवनमें ऐसा कोई प्रसङ्ग नहीं... जहाँ आप मेरे सुख-संयोजनके लिये आतुर न रहे हों। पर... अब मेरा अपना कौन है? ऐसा समर्थ दूसरा है ही कौन? किसे सँभलाकर आप चले गये?

बाबूजी,

आपने संसार बसाया था मेरे लिये, इसे सींचा था मेरे लिये... और आप ही उसे उजाड़कर चले गये... मुझे अनाथ बनाकर इस अकरुण जगत्‌में अकेली छोड़कर चले गये...।

बाबूजी,

मेरा तो सब कुछ लुट गया... अवश्य ही मेरे निर्लज्ज प्राण शरीरका मोह नहीं त्याग सके...।

बाबूजी,

आपकी संन्निधि ही मेरे जीवनका सर्वोपरि सुख था... मुझे तो वही चाहिये, बाबूजी बाबूजी बाबूजी...।



पूज्य श्रीराधाबाबाके उद्‌गार

पूज्य श्रीभाईजीके प्रति पूज्य श्रीराधाबाबाके उत्सर्गमय जीवनके उद्‌गार

(क) महाभावका दान

पहली ही भेंटमें श्रीपोद्दार महाराजने मुझमें रसराज श्रीकृष्णको प्रतिष्ठित कर दिया। रसस्वरूप श्रीकृष्ण और महाभावस्वरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी वैसे तो एक ही हैं; परन्तु उन रसस्वरूप संतने पहली ही भेंटमें मुझे महाभावका दान कर दिया। इस दानकी प्रक्रिया भी अति विचित्र थी।

जगत्‌में दाताका हाथ और दाताका मस्तक सदा ऊँचा रहता है, पर इन रसस्वरूप श्रीपोद्दार महाराजने स्वयं झुककर दान दिया। मेरे चरणोंको छूकर दान दिया और अपने मस्तकको झुकाकर दान दिया।

साकारोपासनाकी तो बात ही क्या! वस्तुतः ऐसी बात तो अतिसाधारण स्तरकी ही होती। साकारोपासनाकी अन्तरंगतम हृदयवस्तु, उस प्रथम स्पर्शके द्वारा, श्रीपोद्दारजी महाराजने मुझे प्रदान कर दी। न जाने कितनी-कितनी उपासना-साधनाके उपरान्त भी जो वस्तु प्राप्त नहीं होती, वह लवमात्रमें मुझे कैसे प्राप्त हो गयी, यह रहस्य बुद्धिगम्य है ही नहीं। यह सब अनुमानसे अति अतीत है। बस, इतना ही कह सकता हूँ कि साकारोपासनाकी हृदयवस्तु, जो व्रजभाव है, वह श्रीपोद्दार महाराजके उस अद्भुत स्पर्शसे, लवमात्रमें मेरे अन्तरमें सुस्थापित हो गया।

ब्राह्मी स्थितिकी मस्तीमें मैं चतुर्थाश्रमी संन्यासी, न तो झुका और न ही मैंने हाथ पसारे। जब वस्तुके महत्वसे भी अपरिचित था, तो याचना होती भी कैसे। अतः मनमें भी याचनाका भाव नहीं था। परन्तु ज्ञानोत्तर भावराज्यकी रसमयतामें सतत निमग्न श्रीपोद्दार महाराजको वस्तुका दान करते समय, झुकनेके लिये सोचना भी नहीं पड़ा। सहज भावसे वे झुके और अति विनम्र होकर उन्होंने अपने जीवनकी निधि मुझे सौंप दी। वस्तुतः रसामृतके दानकी यह प्रक्रिया ही अति अद्भुत है। गागर आयी अवश्य सागरके पास, परन्तु गागर झुकी नहीं, सागर पूर्णतः झुक गया। रसामृतका पान करानेके लिये झुक पड़ा सागर। सागर बह पड़ा और रससे सिक्त हो उठा पात्र। ("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, प्रथम खण्ड" से उद्धृत)

(ख) श्रीभाईजी और श्रीकृष्ण

ये सभी बातें भगवान् श्रीकृष्णने प्रकट होकर श्रीराधाबाबाको कही थीं –

"हनुमानप्रसाद पोद्दारमें और मुझमें कहीं कोई अन्तर कदापि नहीं मानना चाहिये। इसकी कृपा और मङ्गलमयताका दान मुझसे भी अधिक है। यह विलक्षण प्रेमी है। "पूर्ण" कहकर कोई ब्रह्मतत्वका निर्वचन भले ही कर पाये, परन्तु इसके प्रेमका निर्वचन मैं सर्वलोकमहेश्वर स्वयं परमात्मा भी करना चाहूँ, तो नहीं कर सकता। क्योंकि इसका प्रेम नित्य नव-नवायमान है और क्षण-क्षण वेगपूर्वक अभिवर्धनशील है। मैं तो इसके प्रेमास्वादनमें गूंगा एवं बहरा हुआ डूबा रहता हूँ। मैं तो अपने स्वादको भी नहीं कह सकता। बस कभी अथाह रुदन और कभी अनन्त महान् आनन्दकी लहरोंमें लहराते रहना ही मेरी नियति है। आश्रयालम्बन-प्रधान इसका भाव होनेसे, यह क्षण-क्षण मेरा भोग्य हुआ, मुझे अनन्त रसोर्मियोंके रूपमें सदासे सुख-ही-सुख दान करता रहता है और मुझसे कुछ भी बदलेमें नहीं चाहता। मात्र देते रहना ही इसका स्वभाव है। इसके स्पर्श, रसालाप और मिलन-आलिङ्गन-सुखके लिये मैं तरसता रहता हूँ। हमारा परस्परका प्रेम सर्वथा अनिर्वचनीय और अचिन्त्य है।

यह कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता सकता कि पोद्दार महाराज-रूप जीव क्या है। यदि इसके सम्बन्धमें कुछ भी निर्वचन किया जा सकता है, तो मात्र इतना ही कि यह है केवल मेरा सुख, पूर्णतया शत-प्रतिशत मात्र मेरी रुचिमें ढली मूर्ति। यह मूर्तिमान मेरी रुचि-पूर्तिका विरल यंत्र है। जीव होते हुए भी यह इतना विशुद्ध हो गया है कि मलिन कामोपभोगकी कल्पनाका लेश भी इसके चित्तमें प्रवेश नहीं पा सकता। यह खाता-पीता है, देखता-सुनता है ; परन्तु इसके सभी इन्द्रिय-व्यापार मुझसे एकमेव घुले-मिले होकर ही होते हैं। अतः यह कदापि नहीं कहा जा सकता कि इसके शरीर और इन्द्रियोंका संचालन इसके द्वारा हो रहा है। यह मुझमें इतना घुला मिला है कि इसके शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों एवं प्राणोंका भी यथायोग्य संचालन मैं स्वयं ही करता हूँ।

यह ऐसी परम सुन्दर महाकल्याण-वर्षिणी नदी है, जो अनवरत प्रवाहित हो रही है, मेरी शुभेच्छा-पूर्तिके लिये। इसके इन्द्रिय-समूह, इसका शरीर, इसका मन, इसकी बुद्धि, इसके प्राण, इसका अहं – ये सभी यन्त्रचालित-से मुझ यन्त्री द्वारा ही संचालित होते हैं ; क्योंकि यह सदा-सर्वदा स्वरूपसे मुझसे एकमेक है।

इसका जीवन परम एवं चरम त्यागमय है, और सर्वसमर्पणमय है। परम एवं चरम त्यागका वास्तविक स्वरूप क्या होता है ? सर्वसमर्पणमय उज्ज्वलतम प्रेमका क्या आदर्श है ? स्वसुखवाञ्छाविरहित प्रियतम-सुखेच्छामय स्वभाव किसे कहते हैं ? अहंकी चिन्ता और

मङ्गलकामनाकी तो बात ही छोड़ें, अहंकी स्मृतिसे भी शून्य प्रियतम-स्मृतिमय जीवन कैसा होता है? - पोद्दार महाराजने अपने प्रत्यक्ष जीवनसे इसका एक नित्य चेतन, क्रियाशील, मूर्तिमान उदाहरण प्रस्तुत करके जगत्के इतिहासमें एक अभूतपूर्व दान किया है। ऐसा दान भूतकालमें भी विरला ही हुआ है, और इस कलिकालमें तो असम्भव है।

ठीक समझ लो, पोद्दार महाराज मेरा ही स्वरूप है, मेरी दूसरी प्रतिमूर्ति है। मेरी ही भाँति इसमें मेरे समस्त भगवदीय गुणोंका भी प्राकट्य है, परन्तु इसके स्वभावकी यही विलक्षणता है कि यह अपनेमें इन सर्वोच्च गुणोंका अभाव देखता है। यह अपनेको सर्वथा सब विधि कुरूप, कुत्सित, शील-गुणरहित एवं दोषोंसे भरा ही अनुभव करता है, परन्तु यथार्थमें है मुझे रिझाने वाले समस्त गुण-गणोंका अगाध, अपरिसीम, अनन्त भण्डार। यह अपनेको कभी मेरे योग्य नहीं समझता, सदा सकुचाता रहता है, यह अपनेको दोषागार मानकर सदा मेरे सम्मुख अतिशय लज्जा और धिक्कारका भाजन अनुभव करता है। परन्तु न तो इसका यह दैन्य और अपनेको हीन देखना, केवल अभिनय एवं दम्भाचरण है और न ही इससे इसके गुणोंकी महानतामें कहीं कोई न्यूनता ही आती है। यह कुछ भी समझे, कुछ भी बोले, है यह मुझे रिझाने वाले समस्त गुण-गणोंका अगाध, अनन्त, असीम भण्डार। इसका वास्तविक स्वरूप शिव, ब्रह्मादि देवगणोंके समान स्तुत्य; नारद, सनत्कुमारादिके समान भक्तिमान् एवं श्लाघ्य; वशिष्ठ, व्यासादि महापुरुषोंके समान वन्दनीय; याज्ञवल्क्य, शुकदेवादि ज्ञानियों जैसा सेवनीय, निर्मल, परम गौरवमय और महामहिमामय है। फिर भी इसमें अपने गुणोंका सर्वथा अभिमान नहीं है, इसका यह वास्तविक दैन्य, मुझे सर्वाधिक प्रिय है।

तुझे विश्वास करना चाहिए - इस पोद्दार महाराज जीवके हृदयसे मैं एक क्षणके लिये भी नहीं हटता। मेरी ध्यानमूर्ति नहीं, मैं स्वयं इसके हृदयमें परम विश्राम पाता हूँ। इसका अन्तःकरण मेरा साक्षात् धाम है। जब भी यह नेत्र मूँदता है, उस समय इसकी पलकोंके भीतर मुझे निज-मुस्कान बिखेरनी ही पड़ती है। यह स्वप्न देखता है, तब भी मैं इसके स्वप्नोंमें भी रहता हूँ। इसके जीव-शरीरके ढाँचेके भीतर अहंता, ममता, देहाध्यास, जगत्का अध्यास, लोक-वेदकी भावना, भोग-मोक्षकी स्पृहा कुछ भी नहीं है। मेरे विरहकी अग्निमें सब जलकर खाक हो गयीं। फिर मेरे मिलनानन्दकी अजस्र धारामें उसकी राख भी बह गयी। तत्पश्चात् मेरे प्रेमकी प्रबल रसधाराने उसकी गन्धका लेश भी नहीं छोड़ा। अब वहाँ मात्र मेरा प्रेम ही लहरा रहा है। तरङ्गों-पर-तरङ्गे उठ रही हैं। वे तरङ्गे भी मेरा ही रूप धारण किये मुझे ही नहला रही हैं।

मेरे इस सगुण-साकार स्वरूपके जो तुझे दर्शन हुए हैं, वह किसी भी साधनाका सर्वथा फल नहीं है। अद्वैत-तत्व-निष्ठासे करोड़ों कल्पोंपर्यन्त साधना करनेपर भी, तुझे मेरे इस स्वरूपके दर्शन कदापि-कदापि नहीं होते। परन्तु तेरे जीवनमें व्रजभावका वपन किया पोद्दार

महाराजने। यह व्रजभाव-सम्पन्न इतने उच्चकोटिका सिद्ध-भक्त है कि इसके कृपा-प्रसादसे ही तुझ निराकारवादी अद्वैत-तत्वनिष्ठके जीवनमें मधुरभावापन्न रसोपासनाकी सुधामयी धारा प्रवाहित हुई।

पोद्दार महाराजके देहको मैंने पूरा अपना यन्त्र बना रखा है। अतः कभी तो इस देहका नियन्ता, मैं गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण हो जाता हूँ। कभी गीतातत्वोपदेशक चतुर्भुज नारायणके रूपमें, इस देह से अपनी संकल्प-पूर्ति कराता हूँ। इस प्रकार इसमेंसे भिन्न स्वर बजते हैं। कभी इस देह-यन्त्रसे असीम कृपा-माधुर्य, परम सुकोमल दयाभरे स्वर बजते हैं, कभी कठोर गरजते स्वर भी बज उठते हैं। जिस समय जैसे पात्रसे जो भी लीला मुझे करनी होती है, उस समय इस पोद्दार महाराजरूप यन्त्रके अन्तरालसे मैं वैसी लीला मुखरित कर बैठता हूँ। इसमें इसका स्वभाव-वैचित्र्य सर्वथा नहीं है। यह स्वयं तो कुछ है ही नहीं। जो कुछ भी कभी था, पूरा मुझसे अभिन्न हो गया। अतः यह कभी महामोही गृहस्थ-सा आचरण करता दृष्टिगोचर होता है, कहीं महात्यागी तपस्वी - विरक्त दिखता है, कहीं रागी, कहीं भोगी, कहीं महाज्ञानी समझमें आता है। वास्तवमें यह स्वयंमें कुछ भी नहीं है। यह तो मात्र यन्त्र है, और मैं यन्त्री इसमेंसे जैसे स्वर बजाता हूँ, वे ही स्वर इसमेंसे निकलते हैं। इसकी यही विलक्षण चरित्र-शोभा है। इसमें स्वयंका कहीं कोई आग्रह ही नहीं है कि यन्त्रको अमुक प्रकारसे ही बजाया जाय। यह तो मेरे सुख एवं मेरी रुचिका संकेत पाते ही, जैसा मैं चाहता हूँ, सांगोपांग वैसा ही नाटक कर जाता है, और मैं "वाह" कर बैठता हूँ। मेरा सुख ही इसकी कृतकृत्यता है।

अन्तमें बस इतना ही जान ले कि इस महासिद्ध प्रेमीसन्तके रोम-रोमसे दिव्य, विशुद्ध महा-महामङ्गलमयी, विश्वपावनी प्रेम-तरङ्गे निस्सृत होती रहती हैं, जो सबको (बिना अधिकार-भेदके) निस्संकोच सतत मेरा दान करती रहती हैं। मेरा दान करनेमें समर्थ ऐसे दिव्यप्रेमी महासिद्ध संत युग-युगमें कभी बिरले ही सृष्टिमें प्रकट होते हैं।"

(पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीसे उद्धृत)

(ग) दिव्य प्रेमरससारविग्रह - श्रीभाईजी

श्रीभाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) में मात्र प्रेम-ही-प्रेम, आनन्द-ही-आनन्द प्रवाहित हो रहा है। उनके समस्त अङ्ग मात्र प्रियतम श्रीकृष्णका ही अनुभव कर रहे हैं। भाईजीकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ मात्र अपने प्राण-प्रियतम श्यामसुन्दरको ही विषय कर रही हैं। उनकी आँखें अहर्निश कोटि-कोटि शशधरोंकी कान्ति बिखेरनेवाले लावण्य-सिन्धु श्यामसुन्दरको सर्वत्र देखती हैं। कान सदा उन्हींकी मधुरातिमधुर, ब्रह्ममयी वेणुध्वनि सुनते रहते हैं।

भाईजीकी नासिका नित्य-निरन्तर उसी नटवरकी अङ्ग-सौरभको सूँघती रहती है, उनकी जिह्वा अविच्छिन्नरूपसे उसी प्रेम-सुधाका आस्वादन करती है और उनका रोम-रोम सर्वदा उसी अखिल सौन्दर्य-माधुर्यरसाम्बुधि रसराजका परम सुखस्पर्श ही अनुभव करता है।

भाईजी जैसा सन्त कहीं देखने-सुननेमें नहीं मिलेगा, जिसके आकाशमें अन्य कोई शब्द है ही नहीं, मात्र एक ही शब्द है, वह है अपने प्राण-सार-सर्वस्व प्रियतम नीलमणिका "श्रीकृष्ण" नाम। भाईजीकी प्राणवायुमें मात्र एक ही परम रसमय, परम पावन स्पर्श भरा है और वह शिव-संस्पर्श है श्रीकृष्णके परमपूत अङ्गोंका। भाईजीके शरीरमें जो भी तेज-तत्त्व है, वह है एकमेव श्यामतेज नीलमणिदेवका – जो परम निर्मल, निरामय, सर्वशिव है, जिसकी संतुलना विश्व-सृष्टिमें कहीं हो ही नहीं सकती। भाईजीके शरीरका जलतत्त्व और उनके प्रियतम नीलसुन्दरका अधर-सुधारस एकमेक हो चुके हैं, उनमें अभिन्नता नहीं, अभेदावस्था व्यक्त है। भाईजीका सर्वस्व उनका प्रियतम नीलमणि है – जो उनके सबमें ओत-प्रोत हो गया है। भाईजीकी पत्नी श्रीकृष्ण हैं, पुत्री श्रीकृष्ण हैं, भाईजीका घर, उनके सम्बन्धी, जामाता, उनके नौकर, उनकी बहिनें, उनका परिवार, वंश, उनके पिता-पितामह-प्रपितामह, माता-मातामही, प्रमातामही, सब श्रीकृष्ण हैं। भाईजीका घर, मकान, निवास, हवेली, नोहरा, सब श्रीकृष्ण हैं। भाईजीकी गौ, नौकर, उनका श्वान-सूकर श्रीकृष्ण हैं। उनके चतुर्दिक ऊपर-नीचे, दाहिने-बायें, बाहर-भीतर, सर्वत्र मात्र श्रीकृष्णका ही निवास है। उनके चतुर्दिक सर्वत्र प्रेम-ही-प्रेम, आनन्द-ही-आनन्द, श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं।

उनके कानमें जो कुछ भी शब्दावली आती है, वह प्रेममय प्रियतम श्यामसुन्दरके प्रेम-संगीतकी स्वरलहरी ही होती है। वे अपने प्रियतम नीलसुन्दरका गुण गाते-गाते कभी थकते ही नहीं। क्षण-क्षणमें उन्हें प्रियतम श्यामसुन्दरके प्रेमरसामृतका अनुपम स्वाद मिलता रहता है। वे अपनी अतृप्त रसनासे उसी अमृत-रसपानमें मत्त रहते हैं। उनके चित्तमें उनके प्रियतमके सिवा अन्य किसीका स्थान ही नहीं रह गया है। उनके सम्पूर्ण अन्तःकरणमें एकमात्र उनके प्रियतमका ही अखण्ड साम्राज्य और पूर्ण अधिकार है। ऐसा जरा-सा भी स्थान नहीं, जहाँ किसी दूसरेकी कल्पना छायारूपसे भी आ सके। उनका चित्त साक्षात् प्रियतमके प्रेमका स्वरूप ही बन गया है। उनके समस्त अङ्ग, उनके प्रियतम श्रीकृष्णका ही अनुभव कर रहे हैं। उनकी इन्द्रियाँ केवल भगवान्‌को ही अपना विषय करती हैं। भाईजीका समस्त विश्व प्रेममय, आनन्दमय, रसमय या श्रीकृष्णमय है। उनकी दृष्टि जहाँ भी जाती है, आनन्द, प्रेम, सौन्दर्य, माधुर्य – वहाँ लबालब भर जाता है। उनके दृश्य, दृष्टा सभी मधुर हैं, हम-तुम सभी मधुर हैं। भाईजी परमानन्द रससुधा-सिन्धु हैं और उनमें उनका सब कुछ मधुरातिमधुर है। भाईजी जिस नित्य महान् दिव्य प्रेमामृत-रससागरमें निमग्न रहते हैं, वह सर्वथा अनिर्वचनीय है। वे

पराप्रेमाभक्तिके मूर्त्तिमान् विग्रह हैं।

जो अपने प्रियतमके अतिरिक्त दूसरेको नहीं देखता, दूसरेको नहीं सुनता, दूसरेको नहीं जानता, दूसरेका संस्पर्श नहीं करता, वही अविनाशी, सनातन, सत्य प्रेमी है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्धृत)

(घ) नीलिमा-संश्लिष्ट प्राण

भाईजीके विच्छेद-रहित प्रेमकी सतत वृद्धिका क्रम कभी टूटता ही नहीं। परम प्रेमके दिव्य-रसमें डूबे हुए भाईजी, अपने प्रेममय, रसमय प्रियतम (भगवान्) को सर्वत्र देखते हैं। उन्हें कोई दूसरी वस्तु दीखती ही नहीं। कोई भी वस्तु, चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन हो, उनके सम्मुख भगवान् बनकर ही आती है। वे किसी साधकको ही - सच्चरित्र, सदाचारीको ही - भगवान् देखें, सो बात नहीं है। उनका प्राणिमात्रके प्रति सहज प्रेम है। यह उनका प्रेम उनकी हृदय-गुहामें अति सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम-मात्र अनुभवमें आनेवाला है। यह प्रेम प्राणिमात्रको भगवान्‌से मिला देनेवाला है। जैसे एक छिपकली, एक फतिंगा भी यदि भाईजी (पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) के सम्मुख आता है, एक ग्राम-सूकर जो पूर्णतया मलिन मलसे सना है, भाईजीको दृष्टिगोचर होता है, तो वह भगवान् श्रीकृष्ण बनकर ही उनके सम्मुख आता है, त्रिगुणात्मक जीव बनकर नहीं। अब इस पावनतम प्रेममय दृष्टिका ही, सुदूर भविष्यमें यह अमोघ फल होगा कि वह फतिंगा निश्चय ही भगवान् श्रीकृष्णको अपने स्वरूपतत्त्वके रूपमें प्राप्त कर लेगा। भगवान् अपने निराविल प्रेमी-भक्तकी दृष्टिकी सत्यता, कालके किसी अंशमें अवश्य-अवश्य प्रतिफलित कर देंगे। जब भक्त-सम्राट प्रह्लादजीकी दृष्टिको सत्य प्रतिपादित करनेके लिये भगवान् खम्भेमेंसे प्रकट हो गये, तो भाईजी जैसे परम प्रेममें डूबे सन्तकी दृष्टि भी एक दिवस निश्चय ही उनके देखे सत्यको हेतुरहित रूपसे प्रकट करनेवाली होगी ही।

भाईजीके कानमें जो कुछ भी शब्द-ध्वनि आती है, वह केवल प्रेममय भगवान्‌की स्वरलहरी ही होती है। अतः वे नित्य-निरन्तर भगवान्‌की मुरलीकी मीठी तानमें ही मस्त रहते हैं। इसी प्रकार उनके मुखसे भी प्रेममय शब्दराशि ही झरती है। उनकी वाणी अपने प्रियतम भगवान् से प्रेम-वार्तालापके अतिरिक्त कुछ करती ही नहीं। वे जो कुछ बोलते हैं, वह उनके प्रियतमका गुणगान ही होता है।

भाईजी जो कुछ भी बोलें, वह हमें चाहे क्रोधमें भरी गरज सुनायी पड़े, परन्तु इसे निश्चय ही मान लीजिये, इस क्रोध भरी गरजका स्रोत परम एवं चरम रस-वारिधि है। भाईजीका

तिरस्कार, भाईजीकी उपेक्षा और घृणा भी शिवोदधि है, महा-महाकल्याणकी निर्झरिणी ही उसे मान लेना चाहिये। जिस महाकृपापात्रपर भाईजी क्रुद्ध होंगे, वह निश्चय ही उनके महाप्रेमामृत-सिन्धुमें डूबेगा ही ; एक बार मात्र अल्पकालके लिये वह भले ही उस क्रोधसे घबड़ाकर व्यथित हो उठे। भाईजीकी दृष्टि भी जिस-जिस महाभाग्यवान् जीवपर पड़ती है, वहाँ भले ही आज नहीं, निकट अथवा सुदूर भविष्यमें ही सही, परमानन्द रस-सुधामय श्रीकृष्णको प्रकट होना ही पड़ेगा।

श्रीभाईजीके साथ प्राकृत जगत्‌का सम्बन्ध सत्यांशमें लेशमात्र भी नहीं है, वे नित्य ही अपने भावराज्यमें है ; परन्तु अब उनके रूपमें साक्षात सर्वलोकमहेश्वर, सर्वमायाधिपति श्रीकृष्ण ही सब लोक-व्यवहारका सांगोपांग निर्वाह कर रहे हैं। अतः उनके सम्पर्कमें आनेवाले माया-जगतके सभी जीव, चाहे वे मक्खी, मच्छर, पशु-पक्षी, मनुष्य, पितर, देवगण – कोई भी हों, एक-न-एक दिन तर जावेंगे। उनके प्राकृत शरीरका अस्तित्व त्रिभुवनके लिये परम पवित्र और मङ्गल-निधान है।

* * *

भाईजीकी दृष्टि इतनी पवित्र एवं सम है कि उन्हें तो चाहे कोई नारकीय कीड़ा हो, कोई अतिसूक्ष्मदर्शी तत्वज्ञ सन्त हो, सभी समान भगवद्‌रूप ही दृष्टिगोचर होते हैं। भाईजी सब जीवोंको गुण-निरपेक्ष, ज्ञान-निरपेक्ष और भक्ति-निरपेक्ष प्रेम करते हैं।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्धृत)

(ङ) श्रीकृष्ण-प्रेमकी जीवंत मूर्त्ति

श्रीभाईजी अनवरत श्रीकृष्णको ही देखते हैं, उन्हें ही सुनते हैं, उनमें ही जागते-सोते, निवास करते हैं। भाईजी एक अविच्छिन्न अखण्ड भगवत्प्रेमके महान् अप्राकृत चिन्मय समुद्रमें डूबकर तन्मय हो गये हैं। उनका जीवन अखण्ड घन श्रीकृष्ण-प्रेमरस ही है। वे श्रीकृष्ण-सुख-तात्पर्यैक प्रीतिकी जीती-जागती मूर्ति हैं।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्धृत)

(च) श्रीकृष्णरसपूरित सत्ता

श्रीपोद्दार महाराजका "मैं" मङ्गल-अमङ्गलके भावाकाशसे बहुत ऊपर है। स्वरूपतः सब मङ्गलोंका मङ्गल वह स्वयं है। सूर्यकी भाँति वह मङ्गल-प्रकाश ही देता है। वह श्रीकृष्णके

आगे-पीछे, उनका परम मङ्गलमय अपना आपा है। आश्रयतत्व और विषयतत्व – एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। पोद्दार महाराजका "मैं" वह आश्रयतत्व है, जिसमें श्रीकृष्ण-रूप प्रकाशित होता है। अतः वह मङ्गलमय श्रीकृष्णका भी परम मङ्गलमय स्वरूप है। उसमें जीवत्वजनित अहंकी लेशगंध भी नहीं है। वही श्रीकृष्णका प्रकाशक है और वही स्वयं श्रीकृष्ण भी है।

(स्वामी श्रीकृष्णप्रेमजीके प्रवचनसे उद्धृत)

(छ) "तत्" तंत्रके प्रणेता

श्रीपोद्दार महाराजकी क्या स्थिति है, उसे शब्द देनेमें मैं लाचार हूँ। अनिर्वचनीय स्थितिका आखिर निर्वचन हो भी कैसे? परन्तु यदि कुछ कहा जा सकता है, तो इतना ही कि उनमें न मनकी सत्ता शेष रही है, न बुद्धिकी एवं न ही अहंकी सत्ता। उनके सर्वपर भगवत्सत्ता भर गयी है, वह कुछ भी करा ले। चाहे जगत्का कार्य करावे, चाहे उन्हें अपनेमें डूबा ले। उनकी "स्व" की कहीं कोई अपनेपर पकड़ नहीं है। उनमें "मत्" है ही नहीं, "तत्" ही "तत्" है, अतः तद्रुचि, तत्सुख – जो मधुर प्रेमका मूलमंत्र है, वे इस भगवत्प्रीतिमंत्रके ऋषि हैं।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, चतुर्थ खण्ड" से उद्धृत)

(ज) अभिनव चैतन्य

जिस दिन श्रीभाईजीको जसीडीह में भगवत्प्राप्ति हुई थी, उस प्राप्तिमें और आजकी उनकी स्थितिमें धरती-आसमानका अन्तर है। वह दर्शन तो त्रिदेवोंमें एक देव श्रीविष्णु भगवान्का दर्शन था। परन्तु पश्चात् इन्हें श्रीकृष्णके दर्शन हुए। फिर और भी उच्च अवस्था हुई और युगल-सरकारके दर्शन हुए, फिर तो और भी अति उच्च अवस्था कि श्रीराधारानीमें सर्वथा इनका अहंकार, सदा-सदाके लिये विलीन हो गया। यद्यपि यह अवस्था वाणी, मन, बुद्धिसे परेकी अति अनिर्वचनीय है, परन्तु जहाँतक विवेचन किया जा सकता है शाखा-चन्द्र-न्यायसे, उतनी ही बात कही जा रही है। सचमुच ही श्रीपोद्दार महाराज (श्रीभाईजी) की कृपासे, जिस दिन भी कोई गोपीभावकी साधना करता हुआ गोपी बन जायेगा, उसी दिन वह ठीक-ठीक यथार्थतः समझ सकेगा कि राधारानीसे एकात्म होना, उनमें लीन हो जाना, क्या बात होती है। उस समय वह भी गूंगेका-गुड़-स्वादकी तरह अन्यको नहीं ही समझा सकेगा।

मेरी यह धारणा है कि श्रीराधारानीके साथ अभेदावस्था किसी-किसी विरले महापुरुषकी ही होती है, जिसका उदाहरण एकमात्र अबतक केवल श्रीचैतन्य महाप्रभु ही हैं। इनके

अतिरिक्त आधुनिक सन्तोंमें तो कोई नहीं है। श्रीराधारानीमें अभेदावस्थाकी प्राप्ति तो अति दूरकी बात है, श्रीराधारानीके इस रूपका दर्शन ही ब्रह्माजी एवं शंकरजी तकको दुर्लभ है। पद्मपुराणमें यह कथा आती है कि श्रीनारदजीको इनके दर्शन होनेपर, श्रीगोपीजनोंने कहा है कि इस रूपका दर्शन जो तुम्हें हुआ है, त्रिदेवोंको भी दुर्लभ है। ऐसी श्रीराधारानीका दर्शन पू० पोद्दार महाराज (श्रीभाईजी) को हुआ और वे उसमें लीन हो गये। पू० पोद्दार महाराज दासीका, मंजरीका, नर्म-सखियोंका, सबका उल्लंघन करते हुए सीधे श्रीराधारानीमें सायुज्य-लाभ करके कृतार्थ, कृतकृत्य हो गये। जो जीव हनुमानप्रसाद नाम एवं कलेवरका आश्रय करके, पचास वर्ष पूर्व पैदा हुआ था, वह "मैं" हूँ – इस अहंकारको "मैं राधा हूँ" – इस भावमें सर्वथा-सर्वांशमें लीन करके उन्हींके भावमें तन्मय हो गया। इसके पश्चात् जो अन्तःकरण इस पाञ्चभौतिक कलेवरके आश्रित है, वह तो अब उस सच्चिदानन्दमय राज्यकी सर्वसमर्था शक्तिके द्वारा प्रकाशित हो रहा है।

स्वयं भगवान्‌के अवतारमें और यहाँकी स्थितिमें, अन्तर इतना ही है कि अवतार-कालमें जो अवतरण होता है, वह पाञ्चभौतिक ढाँचेका आधार लेकर नहीं होता। वह होता है – सर्वथा आत्म-मायाकृत, जहाँ पाञ्चभौतिकताका सम्बन्ध ही नहीं है। पाञ्चभौतिक पर्दा तो जड़ अविद्याका पर्दा है, यह योगमायाका पर्दा नहीं है। अतः पू० श्रीपोद्दार महाराज (श्रीभाईजी) में साक्षात् परात्पर-परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधाके साथ आवेशावतारके रूपमें अवतरित हुए हैं। ये आजसे पाँच-सात वर्ष पूर्व अवतरित हुए हैं और पाञ्चभौतिक ढाँचेके प्रारब्ध रहनेतक यह अवतार रहेगा। श्रीराधाकृष्णके सम्बन्धमें जो-जो बातें शास्त्रोंमें कही गयी हैं, और भविष्यमें भी कही जा सकती हैं, वे सभी यहाँ प्रकट हैं। यदि कोई सच्चा श्रद्धालु होनेकी चेष्टा अथवा चाह करे, तो उसे थोड़ा-बहुत परिचय तो निश्चय ही मिल सकता है ; क्योंकि छिपाना तो उसीके लिये है जो अश्रद्धालु है। श्रद्धालुके लिये छिपाना तो है नहीं।

यह मैं स्वयं अनुभव करता हूँ – मानो इनके अन्तरालसे राधारानी सर्वथा एक हलका-सा आवरण डाले लीला कर रही हैं ; सर्वथा एक विलक्षण स्त्रीकी अनुभूति होती है, अभूतपूर्व। इस तथ्यपर विश्वास कराना मेरे वशकी बात नहीं है। यह तो भगवान् श्रीराधाकृष्णके ही वशकी बात है।

इस सम्बन्धमें पू० श्रीपोद्दार महाराज स्वयं ऐसी-ऐसी बातें दो-तीन बार कुछ प्रच्छन्न शब्दोंमें मुझे कह गये, जिससे मेरा विश्वास पुष्ट हो गया कि जो स्थिति मैंने बतलायी वह स्थिति उन्हें प्राप्त है। दूसरे शब्दोंमें, मुझे तो स्वयं ही राधारानीने दया करके यह बतला दिया कि "जिसके चरणोंकी कृपाकी तुम खोज कर रहे हो, वह मैं इसी ढाँचेमें आयी हुई हूँ। हनुमानप्रसाद पोद्दाररूप जीवगत अहंता तो मुझमें विलीन हो गयी है और उसके स्थानपर

अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ मैं ही हूँ। तुम राधारानीको प्राप्त करना चाहते हो, तो तुम तीन वर्षोंसे उसीके पास हो, केवल पाञ्चभौतिक देहका जो आवरण है, वह समय पर उठ जायेगा।"

भाईजीकी दृष्टि इस जगत्, इस जगत् के किसी भी जीवपर पड़कर कैसी कृपावर्षा करती है, इसका उत्तर यही है कि स्वयं भगवान् श्रीराधाकृष्ण जिस कृपामयी दृष्टिसे इस जगत्को, जगत्के प्राणियोंको निहारते हैं, ठीक उसी दृष्टिसे श्रीभाईजीके नेत्र-गोलक भी देखते हैं। इसमें तनिक भी, कहीं कुछ भी न्यूनाधिकता सर्वथा-सर्वांशमें नहीं है। अब यह दृष्टि कैसी अभूतपूर्व कृपावर्षी है, यह बुद्धिसे परेकी बात है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, प्रथम खण्ड" से उद्धृत)

(झ) सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र

भाईजीके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, कोई परिस्थिति इनकी इच्छामें बाधा नहीं डाल सकती। जिस प्रकार श्रीराधाकृष्णपर कोई नियम लागू नहीं, वे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र हैं, वैसे ही इनपर भी कोई नियम लागू नहीं, रत्तीभर भी किसी प्रकारका बन्धन नहीं है। ये जो चाहें सो कर सकते हैं। अतः इनके लिये एक क्षणमें किसीको बहुत ऊँचा अधिकारी बना देना हँसी-खेल है।

ये जिसे चाहें, जब चाहें हाथ पकड़कर भगवान्का दर्शन करा सकते हैं। सर्वथा अनधिकारीको भी नित्यधाममें प्रवेशका अधिकार प्रदान कर सकते हैं – नित्यलीलामें स्थापित कर सकते हैं।

(पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीसे उद्धृत)

(ञ) ऐसो को उदार जग माहीं

श्रीपोद्दार महाराजके समान महान् उदारता मैंने कहीं नहीं देखी। लोगोंकी तो उनसे माँग ही भगवान्की नहीं है, संसारकी ही है। किन्तु यदि किसीकी माँग वृन्दावनके पावन प्रेमदेशकी हो जाय, तो वे इतने उदार हैं कि सर्वथा अनधिकारी होनेपर भी उसकी कामना अवश्य पूरी कर देंगे। वे ऐसे परमोदार सन्त हैं कि किसीकी भी आशा आजतक उन्होंने खण्डित नहीं की है। उनकी कृपापर निर्भर हो जाओ, वे निश्चय-निश्चय आशा-पूर्ति कर ही देंगे।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, चतुर्थ खण्ड" से उद्धृत)

(ट) व्रजरज उड़ि मस्तक लगै, मुक्ति मुक्त ह्वै जाय

श्रीभाईजीकी चरणरज व्रजरजसे तनिक भी न्यून नहीं है। पू० श्रीभाईजीके पास रहना व्रजवास ही है, अपितु उससे भी कुछ अधिक महत्वपूर्ण है। व्रजका महत्व जिन कारणों से है, उससे प्रबल कारण इस कलेवरमें अभिव्यक्त हैं।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, प्रथम खण्ड" से उद्धृत)

(ठ) महत्सङ्गऽस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च

यह सत्य, सत्य, परम सत्य है कि भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का संग भगवान्‌के संगकी अपेक्षा भी अनेक अंशोंमें बढ़कर है। यह भावुकताकी सर्वथा बात नहीं है। वस्तुतः ही भगवानकी प्राप्तिकी अपेक्षा, सच्चे सन्तकी प्राप्ति बड़ी दुर्लभ है। सन्तोंकी भी अनेक श्रेणी होती हैं – जो भगवान् के सगुण-साकार रूपके प्रेमी भक्त हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, सेवाकी तो बात ही क्या, उनसे स्पर्श पायी हुई वायु भी यदि किसीको संस्पर्शित होती है, तो भी वह महा-महाभाग्यवान् है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, तृतीय खण्ड" से उद्धृत)

(ड) यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि संन्यस्यति ततो निर्द्वन्द्वो भवति

मेरे ध्यानमें युगों-युगोंमें ऐसी उच्च आध्यात्मिक स्थितिका कोई सिद्ध भगवत्कृपा-पात्र आया ही नहीं है। मेरा ऐसा कहना नहीं है कि युगोंमें ऐसा महापुरुष हुआ नहीं है, परन्तु हुआ होगा तो मेरी जानकारीमें नहीं है, मैंने कहीं उल्लेख नहीं पाया है। नारद-भक्ति-सूत्रोंमें महासिद्ध प्रेमी-भक्त नारदजीने सिद्धान्तोंमें ऐसी स्थितिका उल्लेख अवश्य किया है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्धृत)

(ढ) निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः

श्रीभाईजीकी विलक्षण निर्द्वन्द्व अवस्था है। उनके शरीरगत मैं-तू, मेरे-तेरे, सुख-दुख, हानि-लाभ, जन्म-मृत्यु, दिन-रात आदि द्वन्द्वोंका आत्यंतिक विस्मरण हो गया है। उनका इस प्राकृत मायाराज्यसे प्रयोजन ही अब नहीं रहा है। भाईजी एक अविच्छिन्न अखण्ड भगवत्प्रेमके महान् अप्राकृत चिन्मय समुद्रमें डूबकर तन्मय हो गये हैं। उनसे लोक-वेदका सब आश्रय स्वयमेव उसी प्रकार छूट गया है, जैसे सर्पके शरीरसे उसकी केंचुल छूट जाती है। उनका

लोक-वेदका त्याग तिरस्कार-मूलक द्वेषात्मक नहीं, अपितु तृप्ति, कृतकृत्यता और विस्मृतिमूलक है। भाईजी (पू० श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने वेदोंका त्याग नहीं किया है, अपितु वेदोंने ही उन्हें पूर्णकाम, अपनी परिधि एवं पहुँचके परे मानकर, उनपरसे अपना अधिकार उठा लिया है। श्रीभाईजी विधि-निषेधकी सब मर्यादासे परे पहुँच गये हैं। वे वेदोंको लाँघकर एक अनिर्वचनीय भगवत्प्रेममें मतवाले हैं।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्धृत)

(ण) उन्मुक्तहस्त श्रीकृष्ण-वितरण

मनुष्य धनसे सुखकी आशा करता है, राज्याधिकारसे युक्त किसी पदको प्राप्त कर अपनेको सुखी समझता है, योगीजन दीर्घावधियोंका तप करके उत्तम सिद्धियाँ प्राप्त करना चाहते हैं, कोई ज्ञानी होकर मुक्तिकी कामना करते हैं, परन्तु किसी सच्चे सन्तको पहचानकर मात्र आत्मीयतावश निस्साधन, उससे भगवान् के दर्शनकी जीवनभर आशा रखना, बिरले व्यक्तिकी ही बात है। फिर सन्तोंकी अतिशय कृपालुता है कि वे जो भी उनसे आशा रखता है, उसकी आशा-पूर्ति करते हैं। भाईजी तो इससे भी विलक्षण हैं। उनसे कोई किसी भी भावसे जुड़ जाय, वे तो उसे चाहे-अनचाहे भगवान्का ही दान करते हैं। बिना माँगे मात्र अपनेसे किसी भी प्रकार जुड़े व्यक्तिको भगवान्के दर्शन करा देना, इनकी बड़ी उदारता है, जिसका कहीं उल्लेख ही शास्त्रोंमें नहीं है। अग्निसे कोई बिना आशा किये ही स्पर्शित हो जाता है, तो जैसे अग्नि उसे जला देती ही है, इसी प्रकार श्रीभाईजीका अतिशय सौहार्द-सना वस्तुगुण भगवान् जैसी अनमोल एवं दुर्लभतम वस्तुकी प्राप्ति, किसीको चाहने-न-चाहने पर भी, उनके सम्पर्कमें आने मात्रसे ही करा देता है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्धृत)

(त) पृथक् व्यक्तित्वका तटबन्ध ही हमें चिन्मय रस-सम्प्लावनसे अस्पृश्य रखे है

भाईजीके विषयमें शास्त्रीय आधारपर चाहे जो भी सुन लें, कह लें, पर भाईजीकी पारमार्थिक स्थिति इतनी विलक्षण है कि सारे विवेचन - वस्तुस्थितिकी छायाको भी स्पर्श नहीं कर सकते।

कहना यही है कि जहाँतक आपकी ऊँची-से-ऊँची कल्पना पहुँचे, वहाँतक कल्पना करके भाईजीके चरणोंमें उत्सर्ग हो जाइये।

(पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामीकी डायरीसे उद्‌धृत)

(थ) श्रीभाईजीके व्यक्तित्वकी विलक्षणता

धर्मग्लानि और उसके ह्रासको दूर करनेके लिये धर्मप्रचारका जो कार्य श्रीआदिशंकराचार्य, श्रीरामानुजाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा हुआ; जन-जनके आचार-विचार-व्यवहारको नियन्त्रित-सुसंस्कृत करनेके लिये, समाज-जीवन-सम्बन्धी प्रश्नोंपर व्यवस्था देनेका जो कार्य मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ; हृदयकी सुकोमल भक्तिभावनाओंके तरङ्गित हो उठनेपर, भक्तिकाव्यकी रचनाका जो कार्य तुलसीदास, सूरदास जैसे भक्त कवियों द्वारा हुआ; और श्रीराधामाधवके लीला-रस-सिन्धुमें नित्य-निरन्तर निमग्न रहनेके आदर्शकी प्रतिष्ठाका जो कार्य मीराबाई, श्रीचैतन्य महाप्रभु जैसे रसिकजनों द्वारा हुआ, इन चारों कार्य-धाराओंके अद्भुत सङ्गमका प्लावन श्रीपोद्दार महाराजके विशाल व्यक्तित्वमें प्राप्त होता है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, पंचम खण्ड" से उद्‌धृत)

(द) प्रेम-सूर्य

भाईजी! आप प्रेम-सूर्य हैं। मैं तो आपकी मात्र एक अल्प-सी लघुतम किरण हूँ। आप प्रेम-वारिधि हैं, मैं तो आपकी एक शीतल फुहार-भर हूँ। आप अनन्त लीलामय, अनन्त रस-विलास हैं। आप प्रेमके पारसमणि हैं, आपके स्पर्श मात्र से मैं, लोह-खण्ड, कुन्दन हो गया। आपने मुझे बहुत ही विलक्षण निधि प्रदान कर दी। आत्मज्ञानीको सच्ची आत्मीयता आपके द्वारा प्राप्त हुई। आपने सर्वात्मा प्रियतम श्रीकृष्णसे मेरा अपनत्व करा दिया। अब तो मैं सचमुच, सर्वथा निरपेक्ष मस्त कलंदर हो गया हूँ।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, द्वितीय खण्ड" से उद्‌धृत)

(ध) प्राणिक उक्ति

श्रीपोद्दार महाराज यदि गुलाबके पौधे हैं, तो उस पौधेकी एक शाखापर खिलनेवाला मैं एक छोटा-सा गुलाबका फूल हूँ, और सदा हँसता रहता हूँ। उस गुलाबमें तो काँटा भी होता है, गुलाबका यह पौधा तो कण्टकरहित है। मुझसे भी अधिक सुन्दरतर और अधिक श्रेष्ठतर पुष्प, एक नहीं, अनेकानेक पाटल पुष्प खिला देनेकी क्षमता इस पौधे में है।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, चतुर्थ खण्ड" से उद्‌धृत)

(न) जीवनको भगवत्-स्मृतिमय बनावें

भाईजी जैसे भगवत्प्रेमी महापुरुषकी महिमाके साथ भी, हम मात्र मनोविनोद ही कर रहे हैं। भाईजीके पवित्र साधनामय जीवनको, उनके विश्वासोंको हम अपने आचरणोंका आधारस्तंभ कहाँ बना रहे हैं ?

विषयोंसे मन हटानेपर और उसे भगवन्मुखी करनेपर ही, हमें वह प्रेममयी स्थिति प्राप्त होगी, जहाँसे हम श्रीभाईजीके सच्चे स्वरूपको ताक सकेंगे।

("महाभाव-दिनमणि श्रीराधाबाबा, तृतीय खण्ड" से उद्धृत)

(प) सच्चिन्मय भस्मकण

पोद्दार महाराजके इस प्राकृत शरीर, इस पञ्चभूत-निर्मित कायाने अब सर्वथा-सर्वांशमें रूप ग्रहण कर लिया है, व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णका। यह मरणधर्मा नश्वरता धारक बन चुकी है चिन्मयांशकी। स्वरूप परिवर्तित कर इसने रूप ग्रहण कर लिया है भस्मावशेषका, परन्तु वहाँ भी उसके प्रत्येक कणमें वह अप्रतिम नीलिमा ही परिव्याप्त है। मेरी यह संशयहीन मान्यता है कि यह भूमि भी उस संविन्मय संस्पर्श से संस्पर्शित होकर प्राप्त कर चुकी है वही दिव्यता। इतना ही नहीं, आज परिपूरित है धरित्रिका यह खण्ड उन कणोंसे, जो नित्य रङ्गस्थली है नील-दम्पत्तिके आत्मरमणकी। इन भस्म कणावलियोंमें भी अभिव्यक्त है अवतार कालका व्रजप्रदेश, उसमें अनवरत चलनेवाला नित्य नवीन मधुरातिमधुर लीलाविलास। सत्य कहूँ तो इसके प्रत्येक लघुतम अस्तित्वमें नर्तन कर रहे हैं, मेरे आराध्य युगल।

व्रजेन्द्रनन्दन प्रभु श्रीपोद्दारजी महाराजके पाञ्चभौतिक कलेवरकी भस्मीभूत कणावलियाँ, चिताकी राख नहीं, अपितु प्रत्यक्ष चित वृन्दावन है। इसके अणु-अणु, परमाणु-परमाणुमें झलमल कर रही है - व्रजकुलचन्द्रमा एवं भानुनृपदुहिताकी नील-पीत-द्युति। मेरा अखण्ड विश्वास है, कदाचित अचिन्त्य-सौभाग्यवश कोई अधिकारी दर्शन प्राप्त कर लेगा इन चिन्मय अवशेषोंके, तो उसे अविलम्ब प्राप्ति हो जायगी व्रजभावकी ! अपनी-अपनी भावभूमिके अनुसार ही उपलब्धिकी गरिमा रहेगी अवश्य, परन्तु इसके अमोघ वस्तुगुणके समक्ष रीता तो कोई रह ही नहीं सकता। योग्य-अयोग्यका पार्थक्य नहीं है, बीजवपनकी इस अहैतुकी कृपामें ! अतः भूमिके न रहनेपर भावमसृण भूमिका निर्माण हो जायगा, भावभूमि होनेपर अंकुर प्रस्फुटित हो उठेंगे, अंकुर होंगे तो द्रुमका रूप ग्रहण करने लगेंगे, द्रुम क्रमशः पल्लवित-पुष्पित हो जायँगे ! ! और अन्तमें उन्मीलित होकर ही रहेगा - नित्य चिन्मय भाव-साम्राज्यका द्वार ! ! !

मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ इन भस्मकणोंके दर्शनमात्रसे, इस समाधिकी सच्चिन्मयी सत्ताके भावबहुल क्षेत्रमें प्रवेशमात्रसे, कालके प्रवाहमें एक दिन उस श्यामल अनुरक्तिमें पर्यवसान परम सुनिश्चित सत्य है।

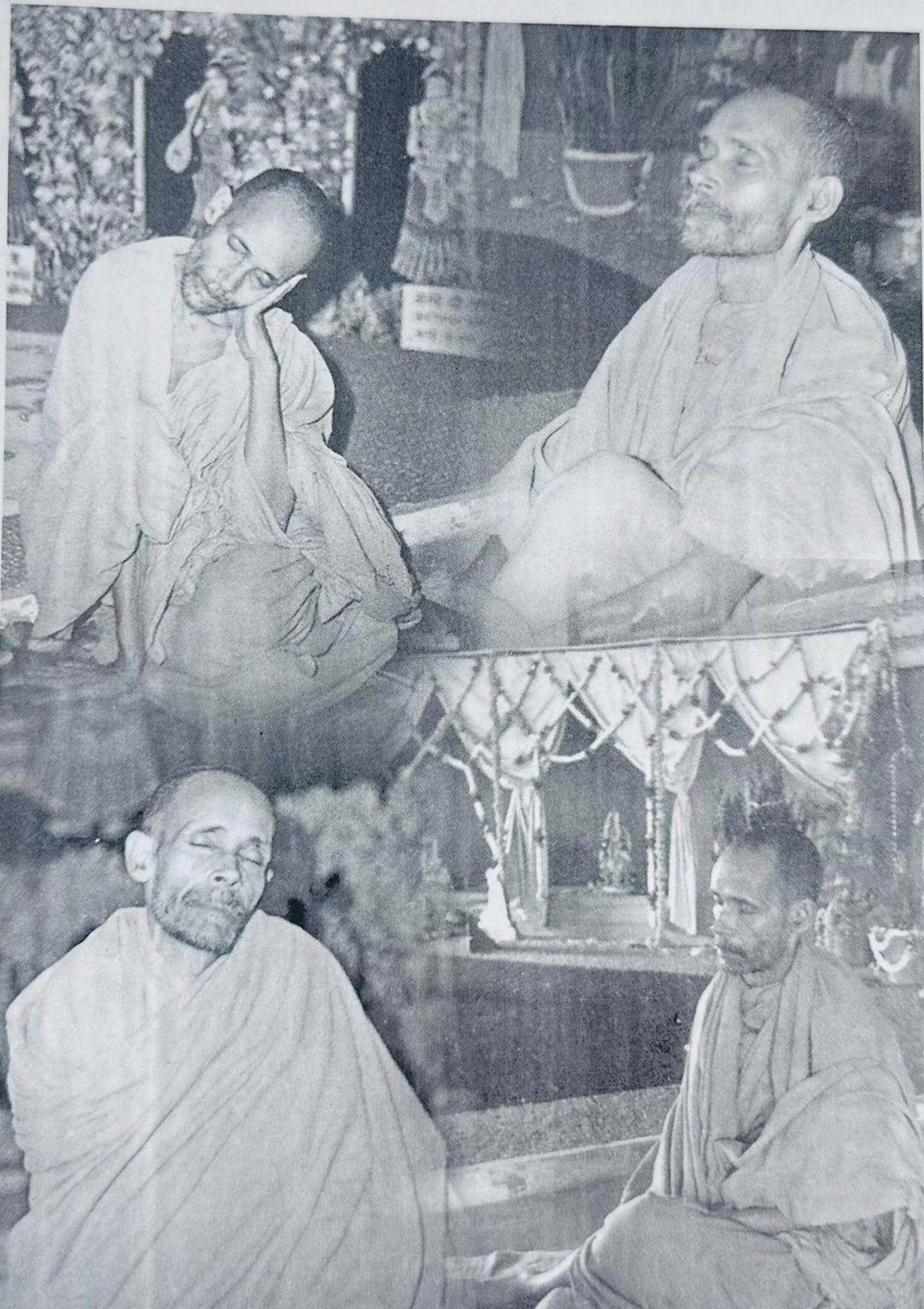
("कहौं तो को पतियाय" से उद्धृत)

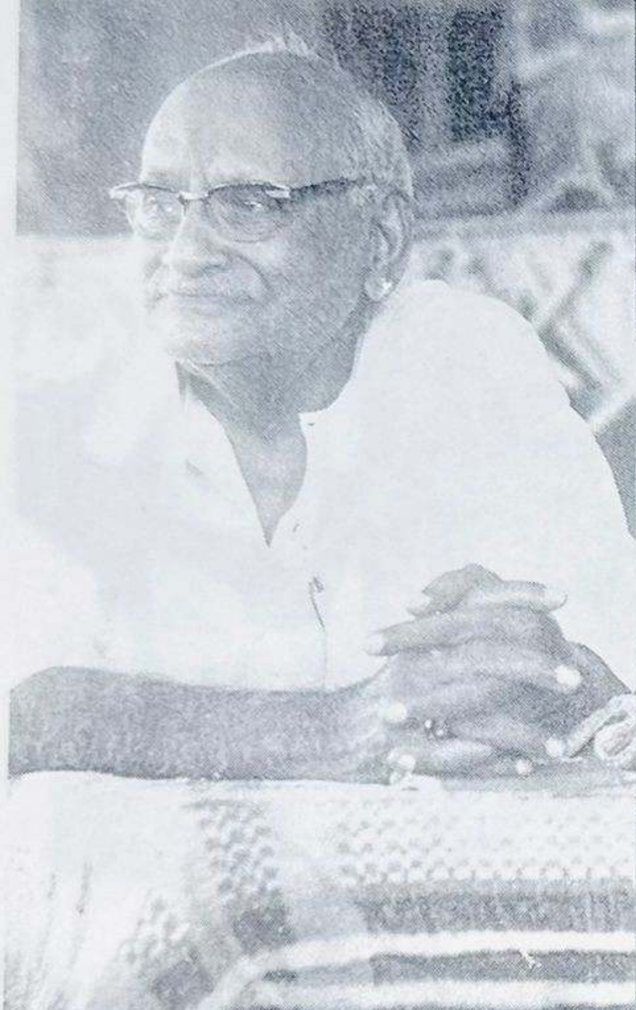








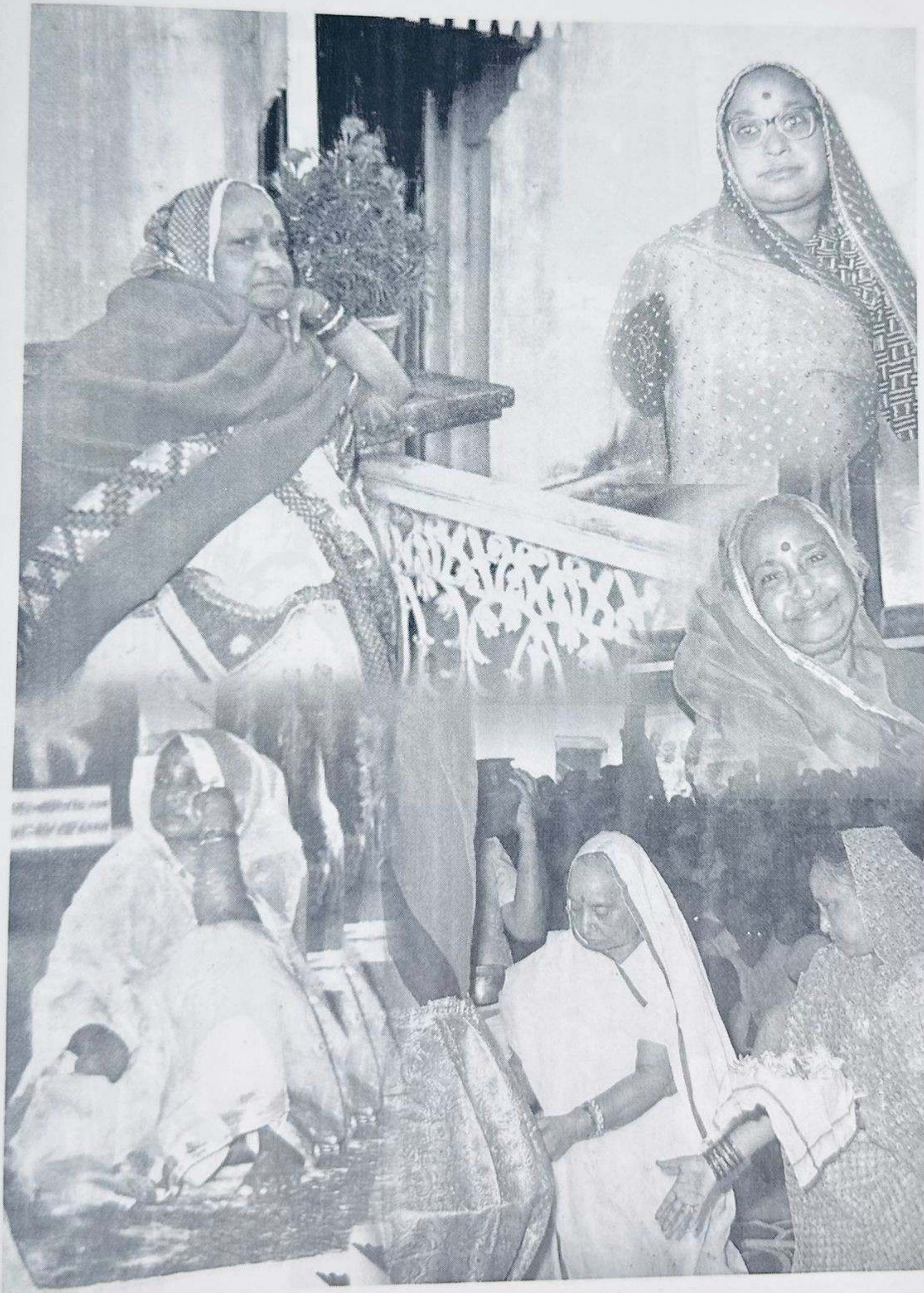









1969







❖ थोड़े होते हैं सुखके दिन, है नियम सदाका ही, प्रियतम!
है बीज दुःख उस सुखका ही, जो नित्य सनातन है, प्रियतम ॥

❖ अपना ही साथ न देता है प्रतिबिम्ब अँधेरेमें, प्रियतम ॥

❖ सम्बन्ध टूटता है क्या, जो प्राणोंका होता है, प्रियतम ॥

❖ मौखिक शरणागतिसे भी वे साँवर ढर जाते हैं, प्रियतम ॥

❖ है नहीं कभी उसने देखा मेरा मिलना तुमसे, प्रियतम!
होता है निरावरण कैसा राकाकी रजनीमें, प्रियतम ॥

❖ कोई भी हो, कैसी भी हो, जो जुड़ी तनिक-सी है, प्रियतम!
आशा उसकी मैं क्यों तोड़ूँ, साँवर तो हैं मेरे, प्रियतम ॥

❖ यह 'मैं' प्रतिबिम्बित है प्रतिमा राधाकी मायामें, प्रियतम!
है किन्तु बिम्बसे भिन्न कहाँ सत्ता छायाकी, हे प्रियतम ॥